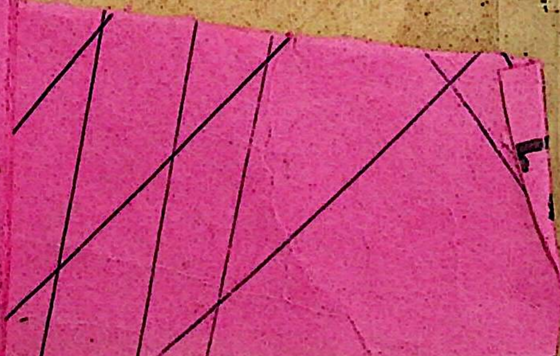
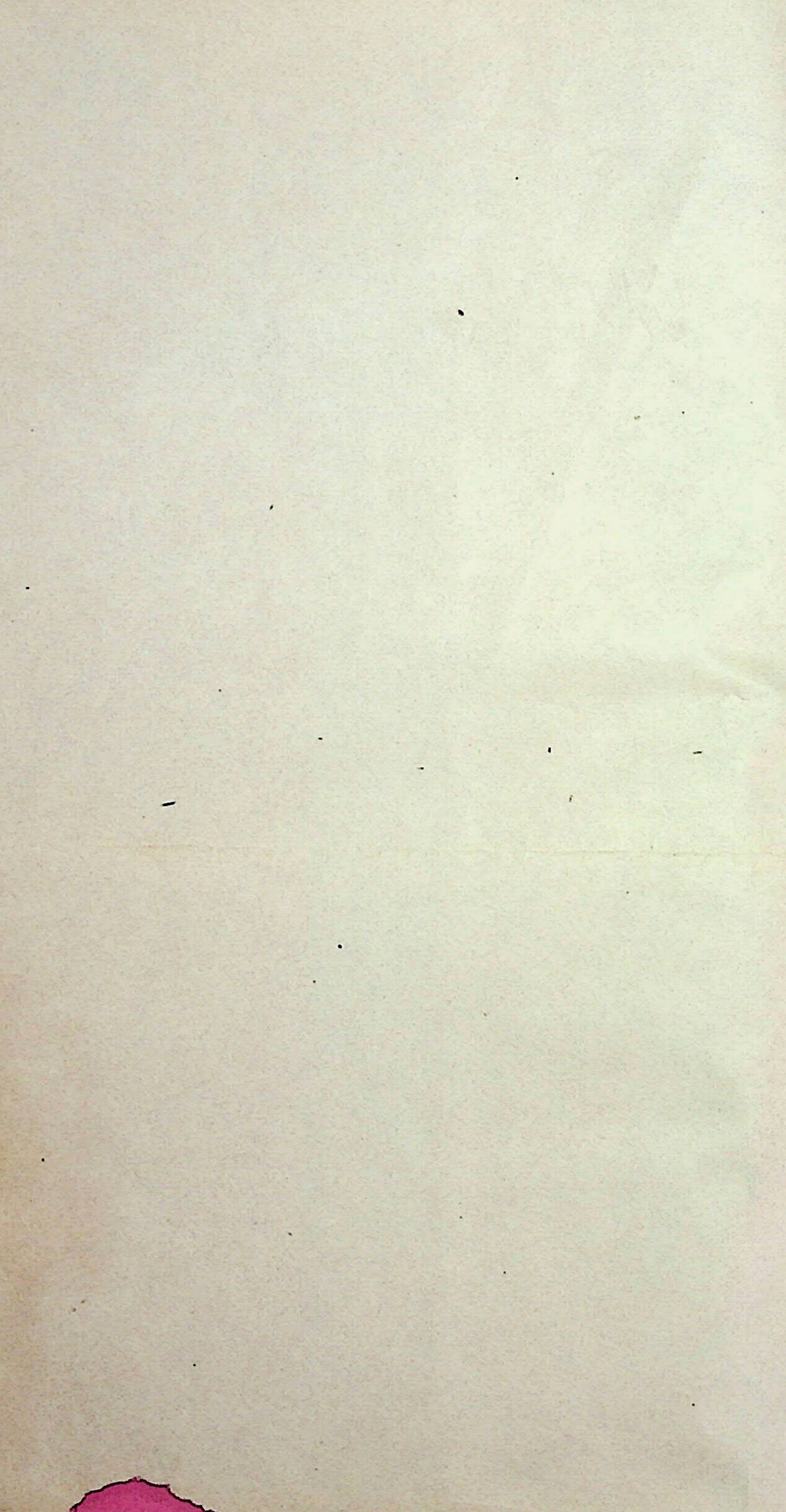










व पावै । जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिर
पै आवै ।

आध्यात्मिक सदाचार

रिक सदाचार व मानसिक सदाचार का
से पालन करने से शरीर शुद्ध हो जाता है
स सीमा तक ये दोनों आचरण पालन किये
उसी सीमा में हमारे अन्दर सत का भाव
ोता है । हम प्रभु के पास उसी सीमा से
ते हैं । यह शरीर भी उसी सीमा में प्रभु
स पाता है । उनका आसन बनता है । हम
पने को समा पाते हैं ।

यात्मिक सदाचार का मतलब ही है,
से ऊपर उठकर इष्ट को माथे में धरकर
मक चेतना को इष्ट में लय करना और
रणों में एकीभाव से पूर्ण समर्पण कर देना ।
और मानसिक सदाचार के बाद मन का
ही प्रभु के चरणों में, उनकी खोज में
है ।

तु हमें देखना है कि यदि हम किसी के घर
परिचय करते हैं तो हमें घर के नोंकरों,
अन्य सदस्यों को छोड़कर हम सीधे घर
क से बात करें । घर के मालिक से परिचय
सबसे अपने आप परिचय हो जाता है ।
ो दफ्तर में काम के लिए जाते हैं तो हम
र के मुख्य अधिकारी से यदि सीधी वात
हैं तो हमारा सारा काम ही आसानी से
है । दफ्तर के सम्बन्धित कर्मचारी उस
विना किसो टीका टिप्पणी के करने को
जाते हैं । यदि कर्मचारियों से ही मिलते
मारा काम भी नहीं होगा और हमें वे लोग
कारी से भी नहीं मिलने देंगे । फलस्वरूप
मय भी वर्बाद होगा और हमारा उद्देश्य
नही होगा ।

प्रकार हमारे प्रभु के दरबार में करोड़ों
ता हैं । हम यदि उनके पास जाकर प्रभु के
तता करेंगे तो न हम प्रभु को ही पा सकेंगे
और उनसे हमारा काम हल होने वाला नहीं है । हमारा काम केवल वे ही कर सकते हैं । अतः हम जब तक उनसे सीधे नहीं मिलेंगे जव तक हमारा काम होने वाला नहीं है । तथा हम व्यर्थ ही अपना समय व जीवन वर्बाद कर लेंगे ।

कहने का भाव है कि हम एक के होकर ही रहना है । अनेकों के नहों । नहीं तो हमारा कोई केन्द्र नहीं होगा और जव हमारा केन्द्र ही नहीं होगा तो हम पहुँचेगें कहाँ । यह आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं । इसलिए हमें सर्व प्रथम एक निष्ठ होना पड़ेगा । उसके साथ में चाहिए अटूट विश्वास, असीमित प्रेम ।

मीरा ने कहा है—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा ना कोई ।
जाके सिर मोर मुकुट विराजे मेरो पति सोई ।।

किसी विद्वान ने कहा है—
एकै साधे सब सधे सब साधे सब जाय ।

और कहा है—
एकही अक्षर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय ।।

जब हनुमान जी श्री कृष्ण से मिले हैं तो उन्होंने भगवान श्री कृष्ण को प्रणाम नहीं किया है— क्योंकि वे इष्टनिष्ट थे । क्योंकि तुलसी मस्तक जब नवै धनुष वाण हों हाथ । अन्त में भगवान श्रीकृष्ण को उसी रूप में हनुमान के सामने आना पड़ा है ।

गोस्वामी तुलसी दास जी ने लिखा है—
एक भरोसे एक बल एक आस विश्वास ।
एक राम घनश्याम प्रति चातक तुलसीदास ।।

वाईविल में लिखा है—

I am the wory, the goal, none can reasch to supreme Father but by one.

(ii) who is not with me is against me.

(iii) I am the salt of life.

भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है—जो पुरुष एकी भाव से स्थित होकर सम्पूर्ण भूतों में आत्मरूप से स्थित मुझ सच्चिदानन्द धन वासुदेव

को भजता है। वह योगी सब प्रकार से वरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।

हे अर्जुन स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि चांडाल आदि कोई भी हो, वे भी मेरे शरण होकर परमसिद्धि को प्राप्त होते हैं।

तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्मा को मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।

श्री श्री ठाकुरजी ने भाववाणी में कहा है—

"मैं मैं मैं मेरा अपना मैं जगत को प्रेम के सूत्र में बांधने निमित्त हूँ। नवीन, पुरातन नहीं। वहु बार आया। पुनः आया हूँ। मेरा स्थूल रूप ही प्रेम है। शिरा, शिरा, तन्तु-तन्तु में प्रत्येक केन्द्र में जिस कम्पन का अनुभव किया जाता है वह प्रेम ही मेरा स्वरूप है। शान्ति राज्य के उस विराट सिंह द्वार की कुंजी मेरे पास है, वह कंजी प्रेम है।"

"मुझको जो एकवार स्पर्श कर लेता है उसको मैं स्वर्गराज में उठा देता हूँ। उसके उपरान्त मेरा स्वरूप लाभ करता है।"

"I am supreme soul".

"आदि में मैं एकाकी था, कुछ भी दूसरा न था। तदुपराँत हुआ विकार ,पुनः निर्विकार होने की इच्छा होती है, इसी से कल्कि अवतार हुआ हूँ। अपने को मैं बटोरकर पूर्णत्व को प्राप्त करूँगा। देखो तुम लोगों के लिए कितना भाग, महाभाग बना हूँ। यह हुआ हूँ बटोरने के लिए।"

"जब तू ब्रजलीला के नित्य रास में मतवाला होता है उस समय मैं प्रति घर-घर में श्रीकृष्ण बना रहता हूँ और जब तू नदिया के पथ घाट पर हरि-बोल-हरिबोल करता हुआ उन्मादग्रस्त होकर नृत्य करता है उस समय सर्वघट मैं से चैतन्य के रूप में चैतन्यदास करता हूँ। मैं नित्य साक्षी स्वरूप हूँ। मैं ही कृष्ण हूँ, मैं ही चैतन्य, मैं ही रामकृष्ण हूँ। मैं ही सब हूँ। मैं ही सब हूँ।"

जब मैं जीसस था उस समय मैं त्रिकुटी पर ध्यान किया करता था। इस बात का अ
होली बुक में पा सकते हो। बच्चों, हि
शक्ति धारा प्रवाहित हो रही है उस प
यह वहिर्गामी शक्ति धारा है। मैं अ
सत्यपुरुष की धारा हूँ, मैं शब्द हूँ, मैं
मैं ज्योति हूँ, से ही ऋष्टि हूँ।

उन्होंने ये भी कहा है—

जो एक को भजता है वह सबको भ
जो सबको भजता है वह एक को भी
है।

रसूल साहब ने कहा है—

तुम यदि हज न करो, नमाज न
न निकालो कमला न पढ़ो तो मेरे सा
सकता है।

इस प्रकार प्रभु ने अनेक बार हमें
है कि हम जब तक एक निष्ठ होकर ईष्
मन, वचन, कर्म से अपना अस्तित्व भू
श्रद्धा से अटूट भक्ति के साथ जब तक
में फूल बनकर अर्पण नहीं कर देते हैं
केवल झाँकीवाजी के शिकार है। हम
त्मिक सदाचार जाग्रत नहीं होगा।

हमारा परम कर्तव्य है, उनको
इच्छा उनका मंगल अपना मंगल उनका
कष्ट, उनकी व्यथा अपनी व्यथा, उनका
काम समझकर, संसार की परवाह किये
लज्जा, भय को प्रशयः न देते हुए नि
साहसी होकर रंग विहीन आंखों से (
eyes)पूर्ण आवेग शक्ति के साथ उनका अ
पर रखकर बड़े विश्वास के साथ क्रमा
जस्यस थापित करते हुए उनके बताये
बिना एक तिलभर इधर-उधर हटकर
आगे वढ़ते रहना, और यही है असल
प्राप्त करने का रास्ता, उनसे मिलने
असली आध्यात्मिक सदाचार पालन।

अन्त में गीता में कही हुई भगवा
बातों को ध्यान से पढ़ें और जी

壽

निराशिकाः। नैवधर्म्मी न चाधर्म्मी न चापीह शुभाशुभी ॥
भैक्षाशी सर्व्ववर्णेषु तुल्यनिन्दास्तुतिःक्षमी ॥ १६ ॥
निस्तरङ्गवदम्भोधिस्थिरधीसर्वदात्मवान् ॥
समः सर्व्वेषु भूतेषु परहंसः स उच्यते ॥ १६ ॥
कात्यायनः ॥ अत्र परमहंसो नाम ॥ एकदण्ड
धरामुण्डाः कन्थाकौपीनवाससः ॥ अव्यक्तलिङ्गाव्यक्त
चारा अनुन्मत्ता उन्मत्तवदाचरन्तः शिखा यज्ञोपवीत त्रिदण्ड
कमण्डलु कपालानाञ्च त्यागिनः ॥ शून्यागार देव
गृहवासिनो न तेषां धर्म्मो नाधर्म्मो न सत्यंनापि चानृतं ॥
सर्व्व सहाः सर्व्व समाः समलोष्ठाश्मकाञ्चना ॥ उपपन्न-
मात्राहाराः चातुर्वर्ण्यं भैक्षयाचर्य्यं चरन्तः ॥ आत्मानं
मोक्षयन्त इति॥ अयाचितं यथा लाभं भोजनाच्छादनं भवेत्॥
परेच्छया च दिग्वासाः स्नानं कुर्य्यात् परेच्छया ॥ १ ॥
अथ ब्राह्मणलक्षणमाह ॥ भारते व्यासः। अनुत्तरीयवसन-
मनुपस्तीर्ण शायिनम् ॥
बाह्वौपधायिनं शान्तं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ २ ॥
येन केन चिदाच्छन्नो येन केन चिदाश्रितः ॥
यत्र क्वचन शायी स्यात्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ३ ॥
कन्था कौपीन वासा यो दण्डधृक् ध्यानतत्परः ॥
एकाकी रमते नित्यं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ४ ॥
निराशिष्यमनारम्भं निर्नमस्कारमस्तुतिम् ॥
अक्षीणं क्षीणकर्म्माणं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ५ ॥
जन्मना यस्तु निर्व्वाणो मरणेन तथैवच ॥

आधिभिर्व्याधिभिश्चैव तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ६ ॥
अहेरिवगणाद्भीतः सम्मानान् मरणादिव ॥
कुणपादिव यः स्त्रीभ्यः तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ७ ॥
येन पूर्ण मिवाकाशं भवत्येकेन सर्व्वदा ॥
शून्यं यस्य जनाकीर्णं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ८ ॥
श्रद्धाध्यानं तपः शौचं चित्तं यस्य चतुष्टयम् ॥
रमणं चाद्वितीयस्य तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ६ ॥
न जातिः कारणं तात गुणाः कल्याण कारणम् ॥
सद्वृत्तमपि चाण्डालं तं देवा ब्राह्मणं विदुः । इति ॥ १० ॥

परिब्राजकलक्षणमाह ॥ परिवोधात् परिच्छेदात् परिपूर्णावलोकनात् पारिपूर्णफलत्वाच्च परिब्राजक उच्यते ११ ॥
परं वा ब्राज ते नित्यं परंचोत्सृजते पुनः ॥
हित्वा चैव परंजन्म परिब्राजक उच्यते ॥ १२ ॥
अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं यो न पश्यति ॥
ब्रह्मीभूतः स एवेह दक्षपक्ष उदाहृत; ॥ १३ ॥
घटाकाशो घटेभग्ने यथेयात् परमं नभः ॥
एवमेवं विधो भिक्षुः प्रयाति परमं पदम् ॥ १४ ॥
वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि ॥
एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्यते ॥ १५ ॥
परं ब्रह्मेति यो वेत्ति न तीर्थं तस्य किंचन ॥
जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तेषु ब्रह्मण्येव स वर्त्तते ॥ १६ ॥
सर्व्वमन्यत् परित्यज्य बुध्यान्निष्ठतां गतः ॥
उपविष्टो ब्रजंस्तिष्ठं स्तं न पश्येत् समाहितः ॥ १७ ॥

यो वा नित्यः सर्व्वसह श्चित्स्वरूपो निरञ्जनः ॥
देहेन्द्रिय मनो बुद्धि व्यतिरिक्तोऽहमेव सः ॥ १८ ॥
देश वन्धु सुहृन्मित्र पिण्डप्राण मनो धियाम् ॥
पूर्व्वं पूर्व्वं त्यजेत् पश्चात् परमानन्दमाविशेत् ॥
आत्मनिष्ठः सदायुक्तस्त्यक्तसर्व्वपरिग्रहः ॥ १९ ॥
चतुर्थोऽयन्तु विज्ञेयो ध्यानभिक्षु रुदाहृतः ॥
ब्रह्मनिष्ठो भवेन्नित्यं यःपरिव्राड़तन्द्रितः ॥ २० ॥
स ब्रह्म परमभ्येति न वेद्री जायते पुनः ॥ २० ॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रत्याहृत्य मनश्चलम् ॥
प्रत्यगात्मनि संस्थाप्य ध्यानं कुर्य्यात् यतिःसदा ॥ २१ ॥
एतावतैव पर्य्याप्तं भिक्षोरेकान्तशीलिनः ॥
न तस्य म्रियते कश्चिन्म्रियते स न कस्यचित् ॥ २२ ॥
कोऽहं कस्य कुतो वेत्ति कः कथंवा भवेदिति ॥
प्रयोजकमति र्नित्यमेवं मोक्षाश्रमी भवेत् ॥ २३ ॥
नैतादृशंब्राह्मणस्यास्तिवित्तं यथैकता समता सत्यताच ॥
शीलंस्थितिर्दण्डनिधानमार्ज्जवं॥ततस्ततश्चोपरमःक्रियाभ्यः२४
अथ सन्न्यासिनां प्राणायामविधिनियममाह ॥ कूर्म्मपुराणे
शिवगीतासु। प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा ॥
समाधिश्च मुनिश्रेष्ठायमो नियम आसनम् ॥ २५ ॥
मय्येकचित्ततायोगो वृत्त्यन्तरविरोधतः ॥
तत् साधनान्यष्टधा तु युष्माकं कथितानि तु ॥ २६ ॥
वसिष्ठः ॥ प्रणवेनैव कुर्य्याच्च प्राणायामान् यतिर्मुहुः ॥
सर्व्वेषामेव पापानां संघाते समुपस्थिते ॥

अभ्यसेद्दशसाहस्त्रं प्रणवं शोधनंहि तत् ॥ २७ ॥
आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं पद्मवद्रासनं तथा ॥
साधनानाञ्च सर्व्वेषामेतत् साधनमुत्तमम् ॥ २८ ॥
ऊर्व्वोरुपरिविन्यस्ते कृत्वा पदतले शुभे ॥
समासीनात्मनः पद्ममेतदासन मुत्तममिति ॥ २९ ॥
भगवत्गीतासुशुचौदेशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासन-
मात्मनः ॥ नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिन कुशोत्तरम्॥३०
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ॥
उपविश्यासने युञ्जात् योगमात्मविशुद्धये ॥ ३१ ॥
समंकाय शिरोग्रीवं धारयन्नचलंश्थिरः ॥
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रंस्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ ३२ ॥
प्रशान्तात्मा विगतभी र्व्रह्मचारीव्रते स्थितः ॥
मनः संयम्य मच्चित्तोयुक्त आसीत मत्परः ॥ ३३ ॥
युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ॥
शान्तिंनिर्व्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छतीति ॥३४॥
पूरकं वाम मार्गेण रेचकं दक्षिणेनतु ॥
कुम्भकन्तु तयोर्हीनं मध्यमे हृदि तिष्ठति ॥३५॥
निरोधाज्जायते वायुर्वायो रग्निःप्रजायते ॥
तस्मादापोभिजायन्ते ततोऽन्तः शुध्यते त्रिभिः ॥३६॥
मार्कण्डेय पुराणे ॥ लघुर्द्दादशमात्रस्तु द्विगुणस्यतु मध्यमः
त्रिगुणाभिश्च मात्राभि रुत्तमोऽयमुदाहृतः ॥ ३७ ॥
मात्राप्रणवोच्चारः स च मनस्येव ॥ तथाच वैवस्वतः ॥
द्वादशावर्त्तनं यस्तु प्रणवस्य मनोहृदि ॥

प्राणायामो यतेः प्रोक्तः प्राणानायम्य चोमिति ॥ १ ॥
प्राणायामकाले ॐ इत्युच्चारो मनसैव कर्त्तव्यः ॥
इतितुर्य्यपदार्थः ॥ एवमुक्त प्रकारेण सर्व्वमुषः-
कालकृत्यमिति ॥ शिवगीतासु ॥
सर्व्वं कर्म्माणि सन्न्यस्य भिक्षाशी निष्परिग्रहः ॥
प्राप्नोति मम सायुज्यं गुह्यमेतन्मयोदितम् ॥ १ ॥
प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ॥
विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति सनातनम् ॥ २ ॥

॥ योगोनाम मुख्यो जीवस्य ब्रह्मणैक्यं ॥

कुतो यतः वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि ॥
एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्यते ॥ १ ॥
मनुः ॥ प्राणायामैर्द्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषं ॥
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥ इति ॥२॥
यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान-
समाधयो धर्म्म शास्त्रेण सम्यक् दर्शिताः साधनत्वेन
विहिताश्च । अतएव समाधिं वर्ज्जयित्वानेन श्लोकेनोच्यते ॥
सम्यग्दर्शनत्वेनैव तावत् संक्षेपत उदाहरिष्यामः । इति ॥
अहिंसा सत्य मस्तेयं ब्रह्मचर्य्यमसंग्रहः ॥
यमास्तु कथिताश्चैते नियमानपि मे शृणु ॥ १ ॥
सन्तोषशौच स्वाध्याया स्तपश्चेश्वरभावना ॥
नियमाः कौरवश्रेष्ठ फलसंसिद्धि हेतवः ॥ २ ॥
मध्यप्रमाणमचलं सुखदायि शुभं शुचिः ॥
योगसंशुद्धये भूप योगिनामासनं स्मृतम् ॥ ३ ॥

प्राणायाम स्तथा वायोः प्राणस्यः वृद्धिधारणं ॥
कुम्भरेचकपूराख्या स्तस्य भेदास्त्रयो नृप ॥ ४ ॥
इन्द्रियाणां स्वविषया बुद्धे प्रत्येकशस्तु यत् ॥
करोत्याहार संक्षेपः प्रत्याहारः स पण्डितैः ॥ ५ ॥
शुभेह्येकत्र विषये चेतसो यत्र धारणम् ॥
निश्चलतवा तु सा सद्भिर्धारणेत्यभिधीयते ॥ ६ ॥
पौनः पुन्येन तत्रवै विषये सैवधारणा ॥
ध्यानाख्या लभते राजन् समाधिमपि मे शृणु ॥ ७ ॥
अर्थमात्रन्तु यद्ग्राह्ये चित्तमादाय पार्थिव ॥
अर्थस्वरुपवद्भाति समाधिः सो भिधीयते ॥ इति ॥ ८ ॥

इत्यादि प्राणायाम प्रत्याहारधारणात्मध्यानानां रागद्वेषादिविषय संस्पर्शपापपरतन्त्रत्वादि गुणहानिस्त्व वान्तरफलं प्रधानफलं तु सम्यग्दर्शनमेव समगूद शर्न फलञ्च श्रुतिस्मृतिप्रसिद्धं। तरति शोकमात्मवित् स यो हवै तत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहा-ग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥ इति कैवल्योपनिषदि

भिद्यते हृदय ग्रन्थि च्छिद्यन्ते सर्व्वे संशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्म्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ १ ॥
अभयं वै बूह्माभयं हिवै बूह्म भवति ॥
य एवं वेद नैनं कृताकृते तपतः तं विदित्वा न लिप्यते॥१॥
कर्म्मणापापकेन इत्याद्या श्रुतयः ॥ मनुः ॥
सम्यग् दर्शन सम्पन्नः कर्म्मणा न स वध्यते ॥
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ २ ॥

बीजान्यन्युपदग्धानि नरोहन्तियथा पुनः ॥
ज्ञानदग्धैस्तथा क्लेशै र्नात्मा संपद्यते तथा ॥ २ ॥
पिप्पलाद श्रुतिः ॥ ज्ञानाग्निःशुभाशुभं दहतीति ॥
गीतासु ॥ यथैधांसि समिद्धोग्नि र्भस्मसात् कुरुतेऽर्ज्जुन
ज्ञानाग्निः सर्व्वं कर्म्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥ ३ ॥
एको वशी सर्व्व भूतान्तरात्मा एकं रूपं वहुधा यःकरोति
तमात्मस्थं येन पश्यन्ति धीरा स्तेषां सुखं शाश्वतं
नेतरेषां ॥ १ ॥

॥ कठोपनिषदि ॥

॥ सामवेदे तलवकारोप निषदि ॥

यद्वाचान भ्युदितं येन वागभ्युद्यते
तदेव व्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतं तदेव
ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिद मुपासते ॥ २ ॥
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति तदेव व्रह्म त्वं
विद्धि नेदं यदिद मुपासते ॥ ३ ॥ यच्छ्रोत्रेण न शृणोति
येन श्रोत्रमिदं श्रुतं तदेव व्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिद-
मुपासते ॥ ४ ॥ यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः
प्रणीयते तदेव व्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ५ ॥
॥ बृहदारण्यके ॥ प्राणस्य प्राणमुत चक्षुष श्चक्षु
रुत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो ये मनो विदुः ते
निचिक्यु र्व्रह्म पुराणमग्र्यं मनसैवा नुद्रष्टव्यं नेह
नानास्ति किञ्चन मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव

पश्यति॥ मनसैवानु द्रष्टव्य मेतद प्रमेयंध्रुवं विरजः पर आका शादज आत्मामहान् ध्रुवः। तमेव धीरोविज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः॥ नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान्वाचोविग्लापनं हितत् आत्मानं चेद्वि जानीयाद यमस्मीति पुरुषः किमिच्छन् कस्य कामाय शरीर मनु सञ्जरेत्॥ यदैत मनुपश्यत्यात्मानं देव-मञ्जसा ईशानं भूत भव्यस्य न ततो विजुगुप्सते यदा सर्व्वे प्रमुच्यन्ते कामा येस्य हृदि श्रिताः॥ अथ मर्त्यो मृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥८॥ विज्ञानमानन्दं ब्रह्म रातेर्दातुः परायणं। सत्यस्य सत्य मिति॥ महद्भुत-मनन्तमपारं विज्ञानघन एव॥ तदेव ब्रह्मापूर्व्वमनपरम-नन्तरमवाह्यमयमात्मा ब्रह्म स वा एष महानजः॥ आत्माऽजरो मरोऽभयोऽमृतो ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं हि वै ब्रह्म भवति॥ य एवं वेद यत् साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म य आत्मा सर्व्वान्तर स्तमेवव्याच क्ष्वेत्येषत आत्मा सर्व्वान्तरः कतमो याज्ञवल्क्यः सर्व्वान्तरो योऽशनाया पिपासे शोकं मोहं जरां मृत्यु मत्येति॥ अथर्व्वणोपनिषदि॥ यत्तद दृश्य मग्राह्य मगोत्र मवर्ण मचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्व्व गतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परि-पश्यन्ति धीराः॥ ब्रह्मैवेद ममृतं पुरस्तात् ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणात श्चोतरेण अध श्चोर्द्धं प्रसृतं च ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठं॥ एतद् यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सौम्य तैत्तिरीयके ब्रह्म विदाप्नोति परं सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्मयो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्

सोऽश्नुते सर्व्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति ॥इति कठोपनिषदि ॥

नित्योऽनित्यानां चेतन श्चेतनाना मेकोवहूनां यो विदधाति कामान् तमात्मस्थं ये नुपश्यन्ति धीरा स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषां ॥ अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्व-वस्थितं महान्तं विभु मात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ स्वप्नान्तं जागरितं तश्चोभौ येनानुपश्यति । अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः । तं स्वा च्छरीरात् प्रवृहेत् मुञ्जादिवेषीकां धैर्य्येण तं विद्याच्छुक्र ममृतं तं विद्याच्छुक्र ममृत मिति ॥ उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबो-धत अशव्द मस्पर्श मरूप मव्ययं तथा रसं नित्य मगन्ध-वच्चयत् ॥ अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ॥ इति ॥ सन्न्यासोपनिषदि ॥ जगत्तावदिदं नाहं सवृक्षतृणपर्व्वतम् ॥ यद्वाह्य जड-मत्यन्तं तत्स्यां कथ महं विभुः ॥ कालेनाल्पेन विलयी देहो नाहमचेतनः ॥ जड़या कर्णशष्कुल्या कल्पमान-क्षणस्थया ॥ २ ॥ शून्याकृतिः शून्यभवः शव्दो नाहम-चेतनः । त्वचा क्षणविनाशिन्या प्राप्या प्राप्योऽयमन्यथा ॥३॥

चित्प्रसादोपलध्वात्मा स्पर्शो नाहमचेतनः ॥

लध्वात्मा जिह्वया तुच्छ लोलया लोलसत्तया ॥ ४ ॥

स्वल्पस्यन्दो द्रव्यनिष्ठो रसो नाहमचेतनः ॥

दृश्यदर्शनयो र्लीनं क्षयिक्षणविनाशिनोः ॥ ५ ॥

केवले द्रष्टरि क्षीणं रूपं नाहमचेतनम् ॥

नासया गन्धजडया त्वयिराया परिकल्पितः ॥ ६ ॥
पेलवो नियताकारो गन्धो नाहमचेतनः ॥
निर्म्ममो मननः शान्तो गतपञ्चेन्द्रियभ्रमः ॥ ७ ॥
शुद्धचेतन एवाहं कलाकलनवर्ज्जितः ॥
चैत्यवर्ज्जितचिन्मात्रमहमेषोऽवभासकः ॥ ८ ॥
सवाह्याभ्यन्तरव्यापी निष्कलोऽहं निरञ्जनः ॥
निर्व्विकल्पचिदाभास एकआत्माऽस्मि सर्व्वगः ॥ ९ ॥
मयैव चेतनेनेमे सर्व्वे घटपटादयः ॥
सूर्य्यान्ताअवभास्यन्ते दीपेनेवात्मतेजसा ॥ १० ॥
मयैवैताः स्फुरन्तीह विचित्रेन्द्रियवृत्तयः ॥
तेजसान्तःप्रकाशेन यथाऽग्निकणपङ्क्तयः ॥ ११ ॥
अनन्तानन्दसम्भोगा परोपशमशालिनी ॥
शुद्धेयं चिन्मयी दृष्टि जयत्यखिलदृष्टिषु ॥ १२ ॥
सर्व्वभावान्तरस्थाय चैत्यमुक्तचिदात्मने ॥
प्रत्यक् चैतन्य रूपाय मह्यमेव नमोनमः ॥ १३ ॥
विचित्राः शक्तयः स्वच्छाः समाया निर्व्विकारया ॥
चिता क्रियन्ते समया कला कलन मुक्तया ॥ १४ ॥
कालत्रय मपेक्षित्र्या हीनाया श्चैत्यवन्धनैः ॥
चितश्चैत्यमुपेक्षित्र्या समतैवावशिष्यते ॥ १५ ॥
साहिवाचामगम्यत्वादसत्तामिह शाश्वतीम् ॥
नैरात्मसिद्धात्मदशामुपयातैव शिष्यते ॥ १६ ॥
इहानीहामयैरन्तर्य्याचिदावलिता मलैः ॥
सा चिन्नोतूपादितुं शक्ता पाशवद्धेव पक्षिणी ॥ १७ ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन जन्तवः ॥
धराविवरमग्नानां कीटानां समतां गताः ॥ १८ ॥
आत्मनेऽस्तु नमो मह्यमविच्छिन्नाचिदात्मने ॥
परामृष्टोऽस्मि लब्धोऽस्मि प्रोदितोऽस्म्य चिरादहं ॥१९॥
उद्धृतोऽस्मि विकल्पेभ्यो योऽस्मि सोऽस्मि नमो-स्तुते ॥
तुभ्य मह्यमनन्ताय मह्यं तुभ्यं चिदात्मने ॥ २० ॥
नमस्तुभ्यं परेशाय नमो मह्यं शिवाय च ॥
तिष्ठन्नपि हि नासीनो गच्छन्नपि न गच्छति ॥ २१ ॥
शान्तोऽपि व्यवहारस्थः कुर्व्वन्नपि न लिप्यते ॥
सुलभश्चाय मत्यन्तं सुज्ञेयश्चाप्तवन्धुवत् ॥ २२ ॥
शरीरपद्मकुहरे सर्व्वेषामेव षट्पदः ॥
न मे भोगस्थितौ वांछा न मे भोगविसर्ज्जने ॥
यदायाति तदायातु यत् प्रयाति प्रयातुतत् ॥
मनसा मनसि च्छिन्ने निरहंकारतां गते ॥ २३ ॥
भावेन गलिते भावे स्वस्थस्तिष्ठामि केवलः ॥
निर्भावं निरहंकारं निर्म्मनस्कमनीहितं ॥ २४ ॥
केवलास्पदशुद्धात्मन्येव तिष्ठति मे रिपुः ॥
तृष्णारज्जुगुणांच्छित्त्वा मच्छरीरकपञ्जरात् ॥ २५ ॥
न जाने क्वगतोड्डीय निरहंकारपक्षिणी ॥
यस्य नाऽहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ॥ २६ ॥
यः समः सर्व्वभूतेषु जीवितं तस्य शोभते ॥
योऽन्तः शीतलया बुद्ध्या रागद्वेषविमुक्तया ॥ २७ ॥
साक्षिवत् पश्यतीदं हि जीवितं तस्य शोभते ॥

येन सम्यक् परिज्ञाय हेयोपादेयमुज्झता ॥ २८ ॥
चित्तस्यान्तेऽर्पितं चित्तं जीवितं तस्य शोभते ॥
ग्राह्य ग्राहक सम्बन्धे क्षीणे शान्ति रुदेत्यलं ॥ २९ ॥
स्थितिमभ्यागता शान्ति र्म्मोक्ष नाम्ना भिधीयते ॥
भ्रष्टबीजोपमा भूयो जन्मांकुरविवर्ज्जिता ॥
हृदि जीवाद्विमुक्तानां शुद्धा भवति वासना ॥ ३० ॥
पावनी परमोदारा शुद्धसत्त्वानुपातिनी ॥
आत्मध्यानमयी नित्या सुषुप्तिस्थेव तिष्ठति ॥ ३१ ॥
चेतनं चित्तरिक्तं हि प्रत्यक् चेतन मुच्यते ॥
निर्म्मनस्कस्वभावत्वान्न तत्र कलनामलम् ॥ ३२ ॥
सा सत्यता साशिवता सा वस्था परमात्मकी ॥
सर्व्व ज्ञाता सा सन्तृप्ति र्न्नतु यत्र मनः क्षतम् ॥ ३३ ॥
मलं संवेद्यमुत्सृज्य मनो निर्म्मूलयन् परम् ॥
आशा पाशाऽनलं च्छित्त्वा संविन्मात्रपरोऽस्म्यहं ॥ ३४ ॥
अशुभाऽ शुभसंकल्प सं शान्तोऽस्मि निरामयः ॥
नष्टेष्टानिष्टकलनः सं विन्मात्र परोऽस्म्यहं ॥ ३५ ॥
आत्मतापरते त्यक्त्वा निर्व्विभागो जगत्स्थितौ ॥
वज्रस्तम्भवदात्मान मवलम्ब्य स्थिरोऽ स्म्यहं ॥ ३६ ॥
निर्म्मलायां निराशायां स्व संवित्तौ स्थितोऽस्म्यहं ॥
ईहितानीहितै र्मुक्तो हेयोपादेयवर्ज्जितः ॥ ३७ ॥
कदान्तस्तोषमेष्यामि स्वप्रकाशपदे स्थितः ॥
कदोपशान्तमननो धरणीधरकन्दरे ॥ ३८ ॥
समेष्यामि शिलासाम्यं निर्विकल्प समाधिना ॥

निरंशध्यान विश्रान्ति वृक्षस्य मम मस्तके ॥ ३६ ॥
कदाताश्च करिष्यन्ति कुलायं वनपुत्रिकाः ॥
संकल्प पादपं तृष्णालतं च्छित्त्वा मनोवनं ॥ ४० ॥
विततां भुवमासाद्य विहरामि यथासुखम् ॥
पदं तदनुयातोऽस्मि केवलोऽस्मि जयाम्यहं ॥ ४१ ॥
निर्व्वाणोऽस्मि निरीहोऽस्मि निरंशोऽस्मि निरीप्सितः ॥
स्वच्छतोर्जिततता सत्ता हृद्यता सत्यताज्ञता ॥ ४२ ॥
आनन्दितोपशमता सदाप्रमुदितोदिता ॥
पूर्णतोदारता सत्या कान्तिसत्ता सदैकता ॥ ४३ ॥
इत्येवं चिन्तयन् भिक्षुः स्वरूपस्थितिमञ्जसा ॥
निर्व्विकल्पस्वरूपज्ञो निर्व्विकल्पो वभूवह ॥ इति ॥४४॥

॥ नारदपरिब्राजकोपनिषदि ॥

अथ नारदः पितामहमुवाच ॥ भगवन् तदभ्यासवशात् ॥ भ्रमरकीटन्यायवत्तदभ्यासः कथमिति ॥ तमाह पितामहः। सत्य वाग् ज्ञान वैराग्याभ्यां विशिष्ट देहावशिष्टो वसेत् ॥ ज्ञानं शरीरं वैराग्यं जीवनं विद्धि शान्ति दान्ती नेत्रे मनो मुखं बुद्धिः कला पञ्चविंशतितत्त्वान्यवयवा अवस्था पञ्चमहाभूतानि कर्म्म भक्ति ज्ञान वैराग्यंशाखा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीयाश्चतुर्दशकरणानि पङ्क स्तम्भाकाराणीति ॥

एवमपि नावमपि पङ्कंकर्णधार इव यन्तेव गजंस्वबुद्धया स्ववशीकृत्य स्वव्यतिरिक्तं सर्व्वं कृतकं नश्वरमिति मत्वा विरक्तः पुरुषः सर्व्वदा ब्रह्माहमिति व्यवहरेत् नान्यत् किञ्चि

द्वेदितव्यं स्वव्यतिरेकेण जीवन्मुक्तो वसेत् कृत कृत्यो भवति॥ नोनाहं ब्रह्मेति व्यवहरेत् किन्तु ब्रह्माहमस्मीत्यजस्रं जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिषु ॥ तुरीयावस्थां प्राप्य तुरीयातीतत्वं व्रजेद्दिवाजाग्रत् नक्तं स्वप्नं सुषुप्तमर्द्धरात्रं गतमित्ये का-वस्थायां चतस्रोऽवस्था स्त्वेकैक करणाधीनानां चतुर्दश-करणानां व्यापाराश्चक्षुरादीनां चक्षुषो रूपग्रहणं श्रोत्रयोःशब्द ग्रहणंजिह्वाया रसास्वादनं घ्राणस्य गन्ध ग्रहणं वचसो वाग् व्यापारः ॥ पाणे रादानं पादयोः संचारः पायोरुत्सर्ग उपस्थस्यानन्द ग्रहणं त्वचः स्पर्शग्रहणं ॥

तदधीना च विषय ग्रहणा बुद्धिः बुद्ध्या बुद्ध्यति ॥ चित्तेन चेतयत्य हङ्कारेणाहङ्करोति विसृज्य जीव एतान् देहाभिमानेन जीवो भवति ॥ गृहाभिमानेन गृहस्थ इव शरीरे जीवः सञ्चरति ॥ प्राग् दलेपुण्यावृत्ति राग्नेय्यां निन्द्रा-लस्यौ दक्षिणायां क्रौर्य्य बुद्धिः नैऋत्यां पापबुद्धिःपश्चिमे क्रीड़ारति र्वायव्यां गमने बुद्धि रुत्तरे शान्ति रीशाने ज्ञानं कर्णिकायां वैराग्यं केसरेष्वात्मचिन्ता इत्येवं वक्त्रं ज्ञात्वा जीवदवस्थां प्रथमं जाग्रद्द्वितीयं स्वप्नं तृतीयं सुषुप्तं चतुर्थं तुरीयं चतुर्भि र्विरहितं तुरीयातीतं विश्व तैजस प्राज्ञ तटस्थ-भेदैरेक एव एकोदेवः साक्षी निर्गुण श्च तद् ब्रह्माह मिति व्याहरेत् ॥ नोचेज्जाग्रदवस्थायां जाग्रदादि चतस्रो ऽवस्थाः स्वप्ने स्वप्नादि चतस्रोऽवस्थाः तुरीये तुरीयादि चतस्रोऽवस्थाः न त्वेताः तुरीयातीतस्य निर्गुणस्य ॥ स्थूल-सूक्ष्मकारण रूपै र्विश्व तैजसप्राज्ञेश्वरैः सर्व्वावस्थासु

साक्षीत्वेक एवावतिष्ठते ॥ उत तटस्थो द्रष्टा तटस्थो न द्रष्टा द्रष्टृत्वान्न द्रष्टैव कर्तृत्व भोक्तृत्वा हंकारादिभिः स्पृष्टो जीवो जीवेतरो न स्पृष्टः॥ जीवोऽपि न स्पृष्टः॥ शरीराभिमानेन जीवत्वं ॥ जीवत्व घटाकाश महाकाश वद्व्यवधानेऽस्ति व्यवधानवशादेव हंसः सोऽहमिति मन्त्रेणोच्छ्वास-निश्वास व्यपदेशेनानुसन्धानं करोति एवं विज्ञाय शरीरा-भिमानं त्यजेत्। न शरीराभिमानी भवति ॥ स एवं ब्रह्मेत्युच्यते ॥इति॥ आत्म वोधोपायमाह ॥ नारदीयपरिव्राजके ॥

त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥
पिधायवुद्ध्या द्वाराणि मनो ध्याने निवेशयत् ॥ १ ॥
शून्येष्वेवावकाशेषु गृहस्य च वनेषु च ॥
नित्ययुक्तःसदा योगी ध्यानं सम्यगुपक्रमेत् ॥ २ ॥
आतिथ्यश्राद्धयज्ञेषु देवयात्रोत्सवेषु च ॥
महाजनेषु सिद्ध्यर्थी न गच्छेद् योगवित् क्वचित् ॥ ३ ॥
यथैनमवमन्यन्ते जनाः परिभवन्ति च ॥
तथा युक्तश्चरेद्योगी सतां वर्त्म न दूषयेत् ॥४॥
वाग् दण्डः काय दण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः ॥
यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी महायतिः ॥ ५ ॥
विधूमे च प्रशान्तेऽग्नौयस्तुमाधूकरीं चरेत् ॥
गृहे च विप्रमुख्यानां यतिः सर्व्वोत्तमः स्मृतः ॥ ६ ॥
दण्डभिक्षाञ्च यः कुर्य्यात् स्वधर्म्मे व्यसनं विना ॥
य स्तिष्ठति न वैराग्यं याति नीचयतिर्हिसः ॥ ७ ॥
यस्मिन् गृहे विशेषेण लभेद्भिक्षां च वासनात् ॥

तत्र नो याति नो भूयः स यति र्नेतरः स्मृतः ॥ १० ॥
यः शरीरेन्द्रियादिभ्यो विहीनं सर्व्वसाक्षिणम् ॥
पारमार्थिक विज्ञानं सुखात्मानं स्वयं प्रभम् ॥ ११ ॥
परतत्त्वं विजानाति सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत् ॥
वर्णाश्रमादयो देहे मायया परिकल्पिताः ॥ १२ ॥
नात्मनो बोधरूपस्य मम ते सन्ति सर्व्वदा ॥
इति यो वेद वेदान्तैः सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत् ॥ १३ ॥
यस्य वर्णाश्रमाचारो गलितः स्वात्मदर्शनात् ॥
स वर्णानाश्रमान् सर्व्वानतीत्य स्वात्मनि स्थितः ॥१४॥
योऽतीत्य स्वाश्रमान् वर्णानात्मन्येव स्थितः पुमान् ॥
सोऽतिवर्णाश्रमी प्रोक्तः सर्व्व वेदार्थ वेदिभिः ॥ १५ ॥
तस्मादन्यगतावर्णा आश्रमा अपि नारद ॥
आत्मन्यारोपिताः सर्व्वे भ्रान्त्या ते नात्मवेदिना ॥ १६ ॥
॥ न विधिर्ननिषेधश्च न वर्ज्यावर्ज्यकल्पना ॥
ब्रह्मविज्ञानिनामस्ति तथा नान्यच्च नारद ॥ १७ ॥
विरज्य सर्व्वभूतेभ्य आविरिञ्चि पदादपि ॥
घृणां विपाट्य सर्व्वस्मिन् पुत्र मित्रादि केष्वपि ॥ १८ ॥
श्रद्धालुर्मुक्ति मार्गेषु वेदान्त ज्ञान लिप्सया ॥
उपायनकरो भूत्वा गुरुं ब्रह्मविदं ब्रजेत् ॥ १९ ॥
सेवाभिः परितोष्यैवं चिरकालं समाचितः ॥ सदा वेदान्त
वाक्यार्थं शृणुयात् सुसमाहितः॥२०॥ निर्म्ममो निरहङ्कार
सर्व्वसङ्ग विवर्जितः॥सदा शान्त्यादि युक्तः सन्नात्मन्यात्मान
मीक्षते ॥ २१ ॥ संसारदोषदृष्ट्यैव विरक्तिर्जायते सदा ॥

विरक्तस्य तु संसारात् सन्न्यासः स्यान्न संशयः ॥ २२ ॥
मुमुक्षुः परहंसाख्यसाक्षान्मोक्षैकसाधनं ॥
अभ्यसेद्ब्रह्मविज्ञानं वेदान्तश्रवणादिना ॥ २३ ॥
ब्रह्मविज्ञानलाभाय परहंससमाह्वयः ॥
शान्तिदान्त्यादिभिः सर्व्वैः साधनैः सहितो भवेत् ॥२४॥
वेदान्ताभ्यासनिरतःशान्तो दान्तो जितेन्द्रियः ॥
निर्भयो निर्म्ममो नित्यो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥ २५ ॥
जीर्णकौपीनबासाः स्यात् मुण्डी नग्नो ऽथवा भवेत् ॥
प्राज्ञो वेदान्तविद्‍योगी निर्म्ममो निरहंकृतिः ॥ २६ ॥
मित्रादिषु समोमैत्रः समस्तेष्वेवजन्तुषु ॥
एको ज्ञानीप्रशान्तात्मा स सन्तरति नेतरः ॥ २७ ॥
गुरूणां च हिते युक्त स्तत्र सम्वत्सरं वसेत् ॥ ॥
नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदाभवेत् ॥ २८ ॥
प्राप्य चान्ते ततश्चैव ज्ञानयोगमनुत्तमम् ॥
अविरोधेन धर्म्मस्य संचरेत् पृथिवीमिमाम् ॥ २९ ॥
ततः सम्वत्सरस्यान्ते ज्ञानयोगमनुत्तमम् ॥
आश्रमत्रयमुत्सृज्य प्राप्तश्च परमाश्रमम् ॥ ३० ॥
अनुज्ञाप्य गुरुं श्चैव चरेद्धि पृथिवीमिमाम् ॥
त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥ ३१ ॥
द्वाविमौ न विरज्येते विपरीतेन कर्म्मणा ॥
निरारम्भो गृहस्थश्च कार्य्यवांश्चैव भिक्षुकः ॥ ३२ ॥
माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा च माद्यति ॥
तस्माद्दृष्टिविषां नारीं दूरतः परिवर्ज्जयेत् ॥ ३३ ॥

सम्भाषणं सहस्त्रीभिरालापः प्रेक्षणं तथा ॥
नृत्यं गानं सहासंच परिवादांश्च वर्ज्जयेत् ॥ ३४ ॥
न स्नानं न जपः पूजा न होमो नैव साधनं ॥
नाग्निकार्य्यादि कार्य्यञ्च नैतस्यास्तीहनारद ॥ ३५ ॥
नार्च्चनं पितृकार्य्यञ्च तीर्थयात्राव्रतानि च ॥
धर्म्माधर्म्मादिकं नास्ति न विधिर्लौकिकीक्रिया ॥ ३६ ॥
सन्त्यजेत् सर्व्वकर्म्माणि लोकाचारञ्च सर्व्वशः ॥
कृमिकीटपतङ्गां श्च तथायोगी वनस्पतीन् ॥ ३७ ॥
न नाशयेद्बुधो जीवन् परमार्थमतिर्य्यतिः ॥
नित्यमन्तर्म्मुखः स्वच्छः प्रशान्तात्मस्वपूर्णधीः ॥ ३८ ॥
अन्तः सङ्गपरित्यागी लोके विहर नारद ॥
नाराजके जनपदे चरत्येकचरोमुनिः ॥ ३९ ॥
निःस्तुति र्निर्नमस्कारो निःस्वधाकार एवच ॥
चलाचलनिकेतश्च यति र्यादृच्छिको भवेत् ॥
इत्युपनिषत् षष्ठोपदेशः ॥ अथ विष्णुपुराणेऽपि ॥
विभेदजनके ज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते ॥
आत्मना ब्रह्मणो भेदमसन्तं कः करिष्यति ॥ १ ॥
अनात्मन्यात्मबुद्धि र्या स्वे स्वयमिति या मतिः ॥
अविद्यातरुसंभूतं वीजमेतद्द्विधा स्थितम् ॥ २ ॥
पञ्चभूतात्मके देहे देही मोहतमोवृतः ॥
अहमेतदितीत्युच्चैः कुरुते कुमतिर्मतिम् ॥ ३ ॥
अनेकजन्मसाहस्रीं संसारपदवीं व्रजेत् ॥
मोहश्रमप्रयातोऽसौ वासनारेणुगुण्ठितः ॥ ४ ॥

प्रक्षाल्यते यदा सोऽस्य रेणुर्ज्ञानोष्णवारिणा ॥
तदा संसारिपान्थस्य याति मोहश्रमः शमम् ॥ ५ ॥

श्रीशंकराचार्य्य सुरेश्वरवचनानि ।

अनात्मभूते देहादावात्मबुद्धिस्तु देहिनां ॥
साऽविद्या तत्कृतो बन्धः तन्नाशो मोक्षउच्यते ॥ १ ॥
एकात्म्यप्रतिपत्ति र्या स्वात्मानुभवसंश्रया ॥
सा विद्या संस्सृते र्बीजं तन्नाशो मुक्तिरात्मनः ॥ २ ॥
तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थं यज्जीवपरमात्मनोः ॥
तादात्म्यविषयं ज्ञानं तदिदं मुक्तिकारणं ॥ ३ ॥
को जीवः कः परश्चात्मा तादात्म्यं वा कथं तयोः ॥
तत्त्वमस्यादि वाक्यं वा कथं तत् प्रतिपादयेत् ॥ ४ ॥

सत्यमाह ॥ भगवनत्राविज्ञानं नैव विद्यते हेतुः पदार्थबोधो हि वाक्यार्थावगतेरिति ॥ अन्तःकरण-तद्वृत्ति साक्षी चैतन्यविग्रहः ॥ आनन्दरूपः सत्यः सन् किमात्मा प्रतिपद्यते ॥ १ ॥

सत्यानन्दस्वरूपं धीसाक्षिणं ज्ञानविग्रहम् ॥
चिन्तयात्मतया नित्यं त्यक्त्वा देहादिगां धियम् ॥ २ ॥
रूपादिमान् यतः पिण्डस्ततो नात्मा घटादिवत् ॥
पृथिव्यादिमहाभूतविकारत्वाच्च कुम्भवत् ॥ ३ ॥
एवमिन्द्रियदृङ्नाहमिन्द्रियाणीति निश्चितुम् ॥
मनो बुद्धि स्तथा प्राणो नाहमित्यवधारय ॥ ४ ॥
संघातोऽपि तथा नाहमिति दृश्यविलक्षणम् ॥
द्रष्टारमनुमानेन निपुणं संप्रधारय ॥ ५ ॥

देहेन्द्रियादयो भावा हानादिव्यापृतिक्षमाः ॥
यस्य सन्निधिमात्रेण सोऽहमित्यवधारय ॥ ६ ॥
अनापन्नविकारः सन् अयस्कान्तवदेव यः ॥
बुद्ध्यादींश्चालयेत् प्रत्यक् सोऽहमित्यवधारय ॥ ७ ॥
अजडात्मवदाभाति यत्सान्निध्याज्जड़ा अपि ॥
देहेन्द्रिय मनः प्राणाः सोऽहमित्यवधारय ॥ ८ ॥
अगमन् मे मनोऽन्यत्र सांप्रतञ्च स्थिरीकृतं ॥
एवं यो वेद धीवृत्तं सोऽहमित्यवधारय ॥ ९ ॥
स्वप्नजागरिते सुप्तिं भावाभावौ धियां तथा ॥
योवेत्त्यविक्रियः साक्षी सोऽहमित्यवधारय ॥ १० ॥
घटावभासकोदीपो घटादन्यो यथेक्ष्यते ॥
देहावभासको देही तथाहं बोधविग्रहः ॥ ११ ॥
यः साक्षिलक्षणो बोधः त्वंपदार्थः स उच्यते ॥
देहेन्द्रियमनःप्राणाहंकृतिभ्योविलक्षणः ॥
प्रोज्झिताशेषषड्भावविकारस्त्वंपदाभिधः ॥ १२ ॥
त्वमर्थमेवं निश्चित्य तदर्थं चिन्तयेत् पुनः ॥
अतद्व्यावृत्तिरूपेण साक्षाद्विधिमुखेन च ॥ १३ ॥
निरस्ताशेषसंसारदोषोऽस्थूलादिलक्षणः ॥
अदृश्यत्वादिगुणकः पराकृततमोमलः ॥ १४ ॥
निरस्तातिशयानन्दः सत्यप्रज्ञानविग्रहः ॥
सत्तास्वलक्षणः पूर्णः परमात्मैव गीयते ॥ १५ ॥
सर्व्वज्ञत्वं परेशत्वं तथा संपूर्णशक्तिता ॥
वेदैः समर्थ्यते यस्य तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥ १६ ॥

यज्ज्ञानात् सर्व्वविज्ञानं श्रुतिषु प्रतिपादितम् ॥
मृदाद्यनेकदृष्टांतै स्तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥ १७ ॥
यदानन्त्यं प्रतिज्ञाय श्रुति स्तत्सिद्धये जगौ ॥
तत्कार्य्यत्वं प्रपञ्चस्य तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥ १८ ॥
विजिज्ञास्य तया यच्च वेद्यं तेषु मुमुक्षुभिः ॥
समर्थ्य चेति यत्नेन तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥ १९ ॥
जीवात्मना परेशश्च नियंतृत्वञ्च तान्प्रति ॥
श्रूयते यस्य वेदेषु तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥ २० ॥
कर्म्मणाफलदातृत्वं यस्यैवं श्रूयते श्रुतौ ॥
जीवानां हेतुः कर्तृत्वं तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥ २१ ॥
तत्त्वं पदार्थौ निर्णीतौ वाक्यार्थ श्चिन्त्यतेऽधुना ॥
तादात्म्यमत्र वाक्यार्थ स्तयोरेव पदार्थयोः ॥ २२ ॥
संसर्गोवा विशिष्टो वा वाक्यार्थो नात्र संम्मता ॥
अखण्डैकरसत्वेन वाक्यार्थो विदुषांमतः ॥ २३ ॥
त्यगूवोधो य आभाति सोऽद्वयानन्दलक्षणः ॥
अद्वयानन्द भूतश्च प्रत्यग् वोधैक लक्षणः ॥ २४ ॥
इत्थमन्योन्यतादात्म्य प्रतिपत्तिर्यदा भवेत् ॥
अब्रह्मत्वं त्वमर्थस्य व्यावर्त्तेततदैवहि ॥
तदर्थस्यच पारोक्ष्यं यद्येवं किं ततः शृणु ॥ २५ ॥
पूर्णानन्दैकरूपेण प्रत्यग् वोधोऽवतिष्ठते ॥
तत्त्वमस्यादि वाक्यंच तादात्म्यं प्रतिवोधने ॥ २६ ॥
लक्ष्यौ तत्त्वं पदार्थौ द्वावुपादाय प्रवर्त्तते ॥
हित्वाद्वौशवलौ वाच्यौ वाक्यं वाक्यार्थ वोधने ॥ २७ ॥

यथा प्रवर्त्ततेऽस्माभि स्तथा व्याख्यात मादरात् ॥
आलम्वनं तथाभाति यो ऽस्मत् प्रत्ययशब्दयोः ॥ २८ ॥
अन्तःकरणमभिन्न वोधः सत्वं पदाभिधः ॥
मायोपाधिजगद्योनिः सर्व्वज्ञत्वादि लक्षणः ॥ २९ ॥
परोक्षः शवलः सत्याद्यात्मक स्तत् पदाभिधः ॥
प्रत्यक् परोक्षतैकस्यासद्वितीयत्व पूर्णता ॥ ३० ॥
विरुध्यते यतस्तस्मात् लक्षणां यं प्रवर्त्तते ॥
मानान्तरविरोधेतु मुख्यार्थस्य परिग्रहे ॥ ३१ ॥
मुख्यार्थेनाविनाभूते प्रतीतिर्लक्षणोच्यते ॥
तत्त्वमस्यादि वाक्येषु लक्षणा भागलक्षणा ॥ ३२ ॥
सोऽयमित्यादि वाक्यस्य पदयो रविनापरा ॥
अहं ब्रह्मेति वाक्यार्थ वोधो यावद्दृढी भवेत् ॥ ३३ ॥
शमादि सहित स्तावदभ्यसेच्छ्रवणादिकम् ॥
श्रुत्वाचार्य्यप्रसादेन दृढो वोधो यदा भवेत् ॥ ३४ ॥
निरस्ताशेष संसार निदानः पुरुषस्तदा ॥
अहमेवपरं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययं ॥ ३५ ॥
इति स्यान्निश्चितो मुक्तो वद्ध एवान्यथा भवेत् ॥
सर्व्वोपाधिविनिर्मुक्तं चैतन्यञ्च निरञ्जनम् ॥ ३६ ॥
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा कथं वर्णाश्रमी भवेत् ॥
व्राह्मणाद्यात्मके देहेनात्मन्यात्मेति भावना ॥ ३७ ॥
श्रुतेःकिं करतामेति वाङ्मनःकायकर्म्मसु ॥
दग्धाखिलाधिकारश्चेद्ब्रह्मज्ञानाग्निना मुनिः ॥ ३८ ॥
वर्त्तमानः श्रुतेर्मूर्ध्नि नैवस्याद्विधिकिंकरः ॥

विदेहो वीतसंदेहो नेति नेत्येव शेषतः ।
देहाद्यनात्मदृक् तद्वत् तत्क्रियां वीक्षते पि न ।
अज्ञानमनिराकुर्व्वन् ज्ञानमेव न सिध्यति ॥
विषन्ने कारकज्ञाने ज्ञानकर्म्म न ढौकते ।
सकृत् प्रवृत्त्यामृद्भाति क्रियाकारक रूपभृत् ॥
अज्ञानमागमं ज्ञानं साङ्गत्यं नास्त्यतस्तयोः ॥
वर्त्तमानमिदं याभ्गां शरीरं सुखदुःखदम् ॥ ३८ ॥
आरब्धं पुण्यपापाभ्यां भोगादेव तयोःक्षयः ॥ इति ॥
अस्य विचारः। सामर्थ्याद्द्येन कर्म्मणा। शरीरं प्रारब्धं तत् प्रवृत्तफलत्वादुपभोगेनैवक्षीयते । अतोयान्यप्रवृत्त-फलानि अतीतान्येकजन्मकृतानि ज्ञानोत्पत्तेः ॥ अकृतानि अज्ञान सहभावीनि च । तान्येव सर्व्वाणि कर्म्माणि ज्ञानाग्नि र्भस्मसात् कुरुते इति॥ जीवन्मुक्ति प्रतिपादक श्रुतिस्मृति सामर्थ्यादवगम्यते इति
तत्त्वं पदार्थौ निर्णीतौ वाक्यार्थश्चिन्त्यतेऽधुना ॥
तादात्म्यमत्र वाक्यार्थ स्तयो रेव पदार्थयोः ॥ ३९ ॥
एकस्यात्मनो द्वितीयत्वपूर्णता विरुध्यते। यतस्तस्मात् लक्षणां सं प्रवर्त्तते मानान्तर विरोधे तु मुख्यार्थस्यापरिग्रहे मुख्यार्थेनविनाभूते प्रतीति र्लक्षणोच्यते॥ तथाच श्रुतिः॥ स चक्षुरचक्षुरिव सकर्णोऽकर्णइव सवागऽवागिव समनाअमना इव स प्राणोऽप्राण इव ॥ तद्यथाहि निर्ल्वयनी वल्मीके मृताप्रत्यस्ताशयीतैवमेवेदमित्याद्या ॥ मनुः ॥
यदा भावेन भवति सर्व्वभावेषु निस्पृहः ॥

तदा सुखमवाप्नोति प्रत्यगिह च शाश्वतं ॥ ३ ॥
अनेन विधिनासर्व्वां स्त्यक्त्वा सङ्गान् शनैः शनैः ॥
सर्व्व द्वन्द्व विनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ २ ॥
विद्ययाऽविद्ययापरिकल्पितभेदजातं व्युदस्याद्वयानन्दप्रकाशं
ब्रह्म भावेन भवत्यवतिष्ठते ॥ यदा तदा भावेषु आब्रह्म
स्तम्बपर्य्यन्तेषु निस्पृहो भवतीत्यर्थः ॥ महाभारते
श्रीभवद्गीतासु ॥ (भगवद्वचनानि ।)
प्रजहाति यदा कामान् सर्व्वान् पार्थ मनोगतान् ॥
आत्मन्येवात्मनातुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ १ ॥
दुःखेष्वनुद्विग्नमना सुखेषुविगतस्पृहः ॥
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ २
यः सर्व्वत्रानभिस्नेह स्तत्तत् प्राप्य शुभाशुभं ॥
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥ ३ ॥
योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ॥
सर्व्व भूतात्मभूतात्मा कुर्व्वन्नपि न लिप्यते ॥ ४ ॥
नैवकिञ्चित् करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ॥
पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् गच्छन् स्वपन् ।
श्वसन् । प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्त्तन्त इति धारयन् ॥ ५ ॥
प्रकाशञ्च प्रवृत्तिञ्च मोहमेवच पाण्डव ॥
न द्वेष्टि संप्रवृतानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥ ६ ॥
उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ॥
गुणा वर्तन्ते इत्येव योव तिष्ठति नेङ्गते ॥ ७ ॥

समदुःखसुखं स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥
सर्व्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ ८ ॥
प्रकृत्यैवचकर्म्माणि क्रियमाणानि सर्व्वशः ॥
यःपश्यति तथात्मानमकर्त्तारं स पश्यति ॥ ९ ॥
यस्त्वात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्चमानवः ॥
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्य्यं न विद्यते ॥ १० ॥
नैवतस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ॥
न चास्य सर्व्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ इति ॥ ११ ॥

॥ छान्दोग्योपनिषदि ॥ आचार्य्यवान् पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्षेऽथसम्पत्स्य इति ॥

॥ व्याससूत्रं ॥ भोगेनत्वितरे क्षपयित्वाथ संपद्यत इत्युदाहृत श्रुतिस्मृति सूत्रेभ्योब्रह्मसाक्षात्कारवतो जीवन्मुक्तस्य प्रारब्धकर्म्मशेषवशाच्छरीरेन्द्रियादेर्विदेहकैवल्यप्राप्तिपर्य्यन्तमवस्थानं भवतीत्यवगम्यते ॥ इति परमहंसपरिव्राजकधर्म्म संग्रहे ज्ञानान्तराङ्गधर्म्मसंग्रहः प्रथमः खण्डः ॥

यतीनां आत्मचिन्तनमाह ॥ शाट्यायनीयोपनिषदि ॥
अनिन्धनो ज्योतिरिवोपशान्तो न चोद्विजेदुद्विजेद् यत्रकुत्र ॥
॥ आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः ॥
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसञ्जरेत् ॥ १ ॥
तमेवधीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्व्वीत ब्राह्मणः ॥
नानुध्यायाद्बहुञ्छब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत् ॥ २ ॥
बाल्येनैव हि तिष्ठासेन्निर्व्विद्य ब्रह्मवेदनं ॥
ब्रह्मविद्या च बाल्यञ्च निर्व्विद्य मुनिरात्मवान् ॥ ३ ॥

यदा सर्व्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिश्रिताः ॥
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ इति ॥ ४।
अथ खलु सौम्येदं पारिव्राज्यं नैष्ठिकमात्मधर्म्मं यो विज-
हाति स वीरहा भवति । स ब्रह्महा भवति स भ्रूणहा
भवति । स महापातकी भवति ॥ य इमां वैष्णवीं निष्ठां
परित्यजति स स्तेनो भवति । स गुरुतल्पगो भवति । स
मित्रध्रुग् भवति । स कृतघ्नो भवति । स सर्व्वस्माल्लोका-
प्रच्युतो भवति ॥ तदेतदृचाऽभ्युक्तं । स्तेनः सुरापो गु-
तल्पगामी मित्रध्रुगेतिनिष्कृते यान्ति शुद्धिं ॥ व्यक्ता व्य-
वा विधृतं विष्णोर्लिङ्गंत्यजन्नशुध्येदाखिलैरात्मभासा ।
त्यक्त्वा विष्णोर्लिङ्ग मन्तर्वेहिर्वा यः स्वाश्रमं सेवते नाश्र-
वा प्रत्यापत्तिं भजते वाऽतिमूढो नैषां गतिः कल्पकोट्य-
पिद्दष्टा ॥

त्यक्त्वा सर्व्वाश्रमान् धीरो वसेन् मोक्षाश्रमे चिरं ।
मोक्षाश्रमात् परिभ्रष्टो न गतिस्तस्य विद्यते ॥
पारिव्राज्यं गृहीत्वा तु यः स्वधर्म्मे न तिष्ठति ॥
तमारूढच्युतं विद्यादिति वेदानुशासनम् ॥ इति ॥
अथ खलु सौम्येमं सनातनमात्म धर्म्मं वैष्णवीं निष्ठां लब्ध्वा
यस्तामदूषयन् वर्त्तते स वशी भवति ॥ स पुण्यश्लोको भवति
स लोकज्ञो भवति ॥ स वेदान्तज्ञो भवति ॥ स सर्व्वज्ञो
भवति ॥ सर्व्वज्ञो भवति स स्वराड् भवति ॥ स परं ब्रह्म
भगवन्तमाप्नोति ॥ स पितॄन् सम्बन्धिनो बान्धवान् सुहृदो
मित्राणि च भवादुत्तारयति ॥ तदेतदृचाऽभ्युक्तं ॥ शतं

कुलानां प्रथमं वभूव तथा पराणां त्रिशतं समग्रं कुलानां एते भवन्ति सुकृतस्य लोके येषां कुले संन्यस्यतीह विद्वान् ॥ त्रिंशत्परां स्त्रिंशदपरां स्त्रिंशच्च परतः परान् ॥ उत्तारयति धार्म्मिष्ठः परिव्राड़िति वै श्रुतिः ॥ सन्न्यस्तमिति यो ब्रूयात् कण्ठस्थं प्राणात्रानपि तारिताः पितरस्तेन इति-वेदानुशासनं ॥ इति ॥

अथ खलु सौम्येमं सनातन मात्मधर्म्मं वैष्णवीं निष्ठां नासमाप्य प्रब्रूयात् ॥ नानुचानाय नानात्मविदे नावीतरागाय नाविशुद्धाय नानुपसन्नाय नाप्रयतमानसायेति हस्म आहुः तदेतदृचाभ्युक्तं । विद्या हवै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मां शेवधिष्ठेऽहमास्मि । असूयकायानृजवे शठाय मा मा ब्रूयाद्वीर्य्यवती तथा स्यां ॥ यमेव विद्या श्रुतमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्य्योपपन्नं ॥ अस्मा इमामुपसन्नाय सम्यक् परीक्ष्य दद्याद्वैष्णवीमात्मनिष्ठां । अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्ते विप्रावाचामनसा कर्म्मणा वा ॥ यथैव तेन न गुरु र्भोजनीय स्तथैवचान्नं नभुनक्ति श्रुतं तत् ॥

गुरुरेव परो धर्म्मो गुरुरेव परागतिः ॥
एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिनन्दति ॥ १ ॥
तस्य श्रुतं तथा ज्ञानं स्रवत्यामघटाम्बुवत् ॥
यस्यदेवे पराभक्ति र्यथा देवे तथा गुरौ ॥ २ ॥
स ब्रह्मवित् परं प्रेयादिति वेदानुशासनं ॥ इत्युपनिषत् शाट्यायनीया ॥ परमहंसोपनिषदि ॥ यतीनां ब्रह्मप्रणवोपदेशमाह ॥ भगवन् ब्रह्मप्रणवः कीदृशइति

ब्रह्म पृच्छति ॥ सहोवाच नारायणः ब्रह्म प्रणवःषोडशमात्रा-
त्मकः सोऽवस्थाचतुष्टयः चतुष्टयगोचरः । जाग्रदवस्थायां
जाग्रदादि चतस्रोऽवस्थाः स्वप्ने स्वप्नादि चतस्रोऽवस्थाः
सुषुप्तौ सुषुप्त्यादि चतस्रोऽवस्था स्तुरीये तुरीयादि चतस्रो
ऽवस्था भवन्तीति ॥ जाग्रदवस्थायां विश्वस्य चातुर्विध्यं
विश्वविश्वो विश्व तैजसो विश्वप्राज्ञो विश्वतुरीय इति ॥
स्वप्नावस्थायां तैजसस्य चातुर्विध्यं । तैजसविश्व स्तैजस-
तैजस स्तैजसप्राज्ञ स्तैजसतुरीय इति ॥ सुषुप्त्यवस्थायां
प्राज्ञस्यचातुर्विध्यंप्राज्ञविश्वःप्राज्ञतैजसः प्राज्ञप्राज्ञः प्राज्ञ
तुरीय इतिते क्रमेणषोडशमात्रारुढाः ॥ अकारे
जाग्रद्विश्व उकारे जाग्रत्तैजसो मकारे जाग्रत्प्राज्ञ
अर्द्धमात्रायां जाग्रत्तुरीयो विन्दौ स्वप्नो विश्वोनादे स्वप्न
तैजसः कलायां स्वप्न प्राज्ञः कलाऽनीते स्वप्न तुरीय
शान्तौ । सुषुप्त विश्वः शान्त्यतीतइति।सुषुप्ततैजस उन्मन्या
सुषुप्त प्राज्ञो मनोन्मन्यां । सुषुप्ततुरीयः पुर्यां तुरीय विश्वो
मध्यमायां तुरीय तैजसः पश्यन्त्यां । तुरीय प्राज्ञः परायां
तुरीय तुरीयः ॥ जाग्रन्मात्रा चतुष्टयमकारांशं ॥ स्वप्न
मात्राचतुष्टय मुकारांशं सुषुप्तिमात्रा चतुष्टयं मकारांशं तुरी-
यमात्रा चतुष्टयमर्धमात्रांशं ॥ अयमेव ब्रह्मप्रणवःस परमहंस
तुरीयातीतावधूतै रुपास्यः ॥ तेनैवब्रह्मप्रकाशते । तेन विदेह-
मुक्तिः । भगवन् कथम यज्ञो पवीत्यशि खीसर्व्वकर्म्मपरित्यक्तः
कथं ब्रह्मनिष्ठापरःकथं ब्राह्मण इति ॥ ब्रह्मपृच्छतिस
होवाच विष्णुर्भोभोऽर्भक यस्याऽस्त्य द्वैतमात्मज्ञानं तदेव

यज्ञो पवीतं ॥ तस्य ध्याननिष्ठैवशिखा तत् कर्म्म सपवित्रं ॥ स सर्व्वकर्म्मकृत् ॥ स ब्राह्मणः ॥ स ब्रह्म निष्ठापरः ॥ स देवः सऋषिः । स तपस्वी । स श्रेष्ठः स एवसर्व्व ज्येष्ठःस एववेदपुरुषो । स एवजाग्रद्गुरुः ॥ स एवाहं विद्धि ॥ लोके परमहंसपरिव्राजको दुर्लभतरो यद्येकोऽस्ति । स एव नित्यपूतःमहापुरुषो यस्तच्चित्तं मय्येवावतिष्ठते ॥ अहंच तस्मिन्नेवावस्थितः ॥ स एव नित्यतृप्तः स शीतोष्ण सुखदुःखमानाऽवमानवर्ज्जितः । स निन्दा-मर्ष सहिष्णुः । स षडूर्म्मी वर्ज्जितः । षडभावविकारशून्यः। स ज्येष्ठाज्येष्ठव्यवधानरहितः ॥ स स्वव्यतिरेकेण नान्य-द्रष्टा । आशाम्बरो न नमस्कारो।न स्वाहा कारो न स्वधाकार श्च न विसर्जनपरो निन्दास्तुति व्यतिरिक्तो न मन्त्र तन्त्रोपा-सको देवान्तरध्यानशून्यो लक्ष्यालक्ष्यनिवर्त्तकः सर्व्वो-परतः स सच्चिदानन्दाऽद्वयचिद्घनः संपूर्णानन्दैक-बोधो ब्रह्मैवाहमस्मीत्यनवरतं ब्रह्मप्रणवाऽनुसन्धानेन यः कृतकृत्योभवति स ह परमहंसपरिव्राडित्युप-निषदिति ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥ कर्त्तव्यसन्न्यासप्रयोगाः प्रागुक्ताः पूर्व्वभागे द्रष्टव्याः । ग्रन्थबाहुल्यात् न लिख्यते-इति ॥ अथ सन्न्यासेन तनुंत्यजेदिति प्राप्ते तनुत्यागो-पायानाह ॥ दिनकरद्योतेकण्ठ श्रुतिः ॥ ततोऽपां प्रवेश-मग्निप्रवेशं वीराध्वानं महाप्रस्थानं गुहाश्रयं वा गच्छे-दिति ॥ अपां प्रवेशं त्रिवेण्यादिप्रवेशं । अग्निप्रवेशं दावाग्निप्रवेशं । वीराध्वानं महायुद्धं । महाप्रस्थानंतुषार-

गिरिप्रस्थानं । अनेन निरशनं लक्ष्यते तथाच गारुडे अ
अध्यायः ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥
कृत्वा निरशनं योहि मृत्युमाप्नोति कोपिचेत् ।
मानुषीं तनुमुत्सृज्य मम तुल्यो विराजते ॥ १ ॥
यावन्त्यहानि जीवेत व्रते निरशने कृते ॥
ऋतुभिस्तानि तुल्यानि समाप्तवरदक्षिणैः ॥ २ ॥
तीर्थे गृहेवा सन्न्यासं नीत्वाचेत् म्रियते नरः ॥
प्रत्यहं लभते सोपि पूर्व्वोक्त द्विगुणं फलम् ॥ ३ ॥
महारोगस्य चोत्पत्तौ गृहीताऽनशनो मृतः ॥
न पुनर्जायते रोगो देववद्दिविराजते ॥ ४ ॥
आतुरो य स्तु सन्न्यासं गृह्णाति यदि मानवः ॥
पुनर्जातः स संयुक्तो भवेद्रोगैश्च पातकैः ॥ ५ ॥
य स्तीर्थे संमुखो भूत्वा व्रते निरशने कृते ॥
योम्रियेदन्तरालेतु ऋषीणां मण्डले वसेत् ॥ ६ ॥
व्रतं निरशनं कृत्वा स्वगृहेपि मृतोयदि ॥
स्वकुलानि परित्यज्य एकाकी विचरेद्दिवि ॥ ७ ॥
अन्नं चैव तथा तोयं परित्यज्य नरो यदा ॥
पिवेन्मत्पादतोयञ्च न पुनर्जायते क्षितौ ॥ ८ ॥
संन्यासिनं तीर्थगतं संरक्षन्ति च देवताः ॥
मम दूता विशेषेण न यम स्तस्य चान्तिके ॥ ९ ॥
इत्यथ्श्र विदुषा वेत्तुमिच्छुना दण्डग्रहणान्तमाश्रमं
संपाद्य लोकानुग्रहस्यानपेक्षयाशरीरादिवाधायां वा

सत्यां महापथप्रस्थानं निरशनादिकं वा विधेयमिति व्यवस्थितं ॥ इति ॥

तत्त्व ज्ञानार्थं जीवनेच्छायान्तु दिगम्बरो भूत्वा प्राच्या मुदीच्यां वा पञ्च सप्त वा पदानि गच्छेत्॥ तत आचार्य्येणान्येन वा भिज्ञेन वा भो भगवंस्तिष्ठ कौपीनदण्डादिकं गृहाणेत्युक्तः वासः परिधायाचम्याचारात् धेनुमुद्रा सहितं दण्डमाचारादेव च शंखोदकेन पुरुष सूक्तेन द्वादशप्रणवैश्चाभिषिच्य इन्द्रस्य बज्रोसि वार्त्रघ्नः शर्म्ममेयच्छ यन्मे पापं तन्निवारयेति मन्त्रेण संप्रार्थ्य ॥ सखेमां गोपायेति मन्त्रेणदक्षिणकरे- गृह्णीयात् । ततो यथा बिष्णुकरेचक्रं शूलं शिवकरे यथा ॥ इन्द्र हस्ते यथा वज्रं तथा दण्डंधराम्यहम् ॥ १ ॥ इति मन्त्रं पठेत् ॥ ततः प्रणवेनकमण्डलु प्रभृत्ति एवं गृह्णीयात् ॥ ततो गुरुसमीपं गच्छेदुपहारपाणिः तत श्च यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्व्वं यो वै वेदां श्च प्रहि- णोति तस्मै ॥ तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षु र्वै शरणमहं प्रपद्ये इति ॥ तमुपस्थाय दक्षिणजानु भूमौ पातयित्वा तत्पादावुपसंगृह्य अधीहि भगवो ब्रह्मेति तं प्रति वदेत्ततो गुरुरात्मानं ब्रह्मरूपं ध्यात्वा । जलपूर्णं शंखं गन्धपुष्पादिना समभ्यर्च्य द्वादश प्रणवै रभिषिच्य । शिष्यस्य शिरस्य भिषिच्य॥शन्नोमित्र इति शान्तिं पठित्वा तत् शिरसि दक्षिणं हस्तं दत्वा पुरुषसूक्तं जपेत्ततो मम व्रते हृदयं ते दधामि । मम चित्तमनुचित्तं ते ऽस्तु मम वाच- मेकव्रतो जुषस्व बृहस्पतिस्त्वां नियुनक्तु मह्यमिति मन्त्रं

जपित्वा उपनीत गायत्र्युपदेशवत् प्रयुंजानाय तस्मै नि॰
शुद्धबुद्धमुक्तसत्य स्वभावपरमानन्दाद्वयं ब्रह्मात्म प्र॰
पादकं प्रणवं दक्षिणे कर्णे स्वयं प्राङ्मुखः सन् उपदि॰
शेत् ॥ आचार्य्यवचनञ्च पञ्चीकृतपञ्चमहाभूतानीत्या॰
पञ्चीकरणप्रतिपादक श्रौतभाष्यप्रसिद्धं ॥ अथ चातुर्वेद॰
महावाक्यं ॥ अहं ब्रह्मास्मीति यजुः तत्वमसीतिसा॰
तमेवैकं विजानथात्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ इ॰
अथर्व्ववेदवाक्यं ॥ स एवमेवपुरुषंब्रह्मततममपश्यत इ॰
ऋक् इति चातुर्व्वेदवेदान्त महावाक्यान्युपदिशेत्
इमानि महावाक्यानि शिष्यशाखीय महावाक्यो॰
पदेश पूर्व्वकमेवोपदेश्यानीति ॥ विश्वेश्वरसंक्षेपशारीर॰
कारविद्यारण्यादय आहुरित्युक्तंप्रागेव । तेषामर्थं चा॰
तथैव वोधयेत् । अथास्मै वैष्णवं शाम्भवं नाम कुर्या॰
पूर्व्वाचार्य्याणान्तु बुद्धि पूर्व्वं नाम न कुर्य्यादिति ॥ इ॰
संन्यासग्रहणविधिः समाप्तः ॥ अथ गुरुः शिष्यायौपनि॰
दान् परमहंसधर्म्मान् उपदिशेत् ॥ प्रथमं प्रणवोपदेश॰
माह ॥ नारदपरिव्राजकोपनिषदि ॥ अथ हैनं भगवन्तं
परमेष्ठिनं नारदः पप्रच्छ संसारतारकं प्रसन्नो ब्रूहीति।
तथेति ॥ परमेष्ठी वक्तु मुपचक्रमे। ॐ मिति ब्रह्मेति व्यष्टि
समष्टि प्रकारेण ॥ का व्यष्टिः का समष्टिः संहारप्रणव
सृष्टिप्रणवश्चान्तर्व्वहिश्चोभयात्मकत्वात् त्रिविधो ब्रह्म
प्रणवः अन्तः प्रणवो व्यवहारि प्रणवो वाह्य प्रणवश्चार्ष
प्रणवः । उभयात्मको विराट् प्रणवः । संहार प्रणवो ब्रह्म

प्रणव अर्धमात्रा प्रणवः ॐमिति ब्रह्म ॐ मित्येकाक्षरमन्त्रः प्रणवं विद्धि। स चाष्टधा भिद्यते अकारोकारमाकारार्धमात्रानाद विन्दु कला शक्तिश्चेति तत्र चत्वारः अकारश्चायुतावयवान्वित उकार सहस्रावयवान्वितो मकारः शतावयवोपेतोऽर्ध मात्रा प्रणवोऽनन्तावयवाकारः। सगुणो विराट् प्रणवः संहारो निर्गुणप्रणव उभयात्मकोत्पत्तिप्रणवो यथा प्लुता विराट् प्लुतः प्लुतसंहारो विराट् प्रणवः॥ षोड़शमात्रात्मकषट्त्रिंशतत्त्वातीतः षोड़शमात्रात्मकत्वं कथमित्युच्यते॥ अकारः प्रथमा उकारो द्वितीया मकारस्तृतीया अर्धमात्रश्चतुर्थी नादः पञ्चमी विन्दुः षष्ठी कला सप्तमी कलातीताष्टमी शान्ति नवमी शान्त्यतीतः दशमी उन्मन्यैकादशी मनोन्मनी द्वादशी पुरीत्रयोदशी मध्यमा चतुर्दशी पश्यन्ती पञ्चदशी परा षोड़शी। पुनश्चतुः षष्ठि मात्रा प्रकृति पुरुषद्वैविध्य मासाद्य अष्टाविंशत्युत्तर भेद-मात्रा स्वरुपमासाद्य सगुणनिर्गुणत्व मुपेत्यैकोऽपि ब्रह्म प्रणवः॥ इति॥

सर्व्वाधारःपरंज्योतिरेष सर्व्वेश्वरो विभुः॥
सर्व्वदेवमयः सर्व्वप्रपञ्चाधारगर्भितः॥
सर्व्वाक्षरमयः कालः सर्व्वागममयः शिवः॥
सर्व्वश्रुत्युत्तम मृग्यजुः सकलोपानिषन्मयः॥ २॥
भूतंभव्यं भविष्यद्यत् त्रिकालोदित मव्ययम्॥
तदप्योङ्कार मेवार्य्य विद्धि मोक्षप्रदायकम्॥ ३॥
तदेवात्मानमित्येतद्ब्रह्म शब्देन वर्णीते॥

तदेकममृतमजरमनुभूय तथोमिति ॥ ४ ॥
सशरीरं समारोप्य तन्मयत्वं तथोमिति ॥
त्रिशरीरं तमात्मानं परंब्रह्म विनिश्चिनु ॥ ५ ॥
परंब्रह्मानु सन्दध्याद्विश्वादीनां क्रमः क्रमात् ।
स्थूलत्वात्स्थूल भुक्त्वाच्च सूक्ष्मत्वात् सूक्ष्मभुक्परम् ॥६॥
ऐक्यत्वानन्दभोगाच्च सोऽयमात्मा चतुर्विधः ॥
चतुष्पाज्जागरितस्थूलः स्थूलप्रज्ञोहि विश्वभुक् ॥ ७ ॥
एकोनविंशतिमुखः साष्टाङ्गः सर्व्वगप्रभुः ॥
स्थूलभुक् चतुरात्माथ विश्वो वैश्वानरः पुमान् ॥ ८ ॥
विश्वजित् प्रथमः पादः स्वप्नस्थानगतः प्रभुः ॥
सूक्ष्मप्रज्ञः स्वतोऽष्टाङ्गःएकोनान्यःपरंतप ॥ ९ ॥
सूक्ष्मभुक् चतुरात्माथ तैजसो भूतराड़यं ॥
हिरण्यगर्भः स्थूलोऽन्तर्द्वितियःपाद उच्यते ॥ १० ॥
कामं कामयते यावद्यत्र सुप्तो न कश्चन ॥
स्वप्नं पश्यति नैवात्र तत् सुषुप्तमपिस्फुटम् ॥ ११ ॥
एकीभूतः सुषुप्तस्थः प्रज्ञानघनवान्सुखी ॥
नित्यानन्दमयोऽप्यात्मा सर्व्वजीवान्तरस्थितः ॥ १२ ॥
तथाप्यानन्दभुक् चेतोमुखः सर्व्वगतोऽव्ययः ॥
चतुरात्मेश्वरः प्राज्ञस्तृतीयः पादसंज्ञितः ॥ १३ ॥
एष सर्व्वेश्वरश्चैष सर्व्वज्ञः सूक्ष्मभावनः ॥
एषोऽन्तर्य्याम्येष योनिः सर्व्वस्य प्रभवाप्ययौ ॥ १४ ॥
भूतानां त्रयमप्येतत् सर्व्वोपरमबाधकम् ॥
तत् सुषुप्तंहि यत् स्वप्नं मायामात्रं प्रकीर्त्तितम् ॥ १५ ॥

चतुर्थश्चतुरात्मापि सच्चिदेकरसोह्ययम् ॥
तुरीयावसितत्वाच्च एकैकत्वानुसारतः ॥ १६ ॥
ज्ञातानुज्ञातानु ज्ञातृ विकल्प ज्ञान साधनम् ॥
विकल्पत्रयमात्रापि सुषुप्तं स्वप्नमान्तरम् ॥ १७ ॥
मायामात्रं विदित्वैवं सच्चिदेक रसोह्ययं ॥
विभक्तोह्ययमादेशो न स्थूलप्रज्ञमन्वहम् ॥ १७ ॥
न सूक्ष्मप्रज्ञमत्यन्तं न प्रज्ञं न क्वचिन्मुने ॥
नैवाप्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञमान्तरम् ॥ १६ ॥
ना प्रज्ञमपि न प्रज्ञाघनं चादृष्टमेवच ॥ तदलक्षणमग्राह्यं यदव्यवहार्य्यमचिन्त्यमव्यपदेश्य मेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमंशिवं शान्तमद्वैतं चतुर्थंमन्यन्ते सब्रह्म प्रणवः स विज्ञेयो नापरस्तुरीयः सर्व्वत्र भानुवत् मुमुक्षूणामाधारः स्वयं ज्योतिर्ब्रह्माकाशः सर्व्वदा विराजते परम्ब्रह्मत्वादित्युपनिषत् ॥ अष्टमोपदेशः ॥ इति ॥

॥ अथ गुरुः शिष्यायउपदिशति मनुः तद्वाह ॥
संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावहनि वा सदा ॥
शरीरवाङ्मनोभिस्तु समीक्ष्य वसुधांचरेत् ॥ २ ॥
अन्हा रात्र्या च यान्जन्तून् हिनस्त्यज्ञानतोयतिः ॥
तेषां स्नात्वा विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान् षडाचरेत् ॥३॥
इति मनःपूतंविचारशुद्धं वौधायनः ॥ वृक्षमूलं कोविदः सन्यासी वेदो वृक्षः प्रणवस्तस्यमूलं प्रणवात्मकोवेदः । प्रणवं ध्यायेत् प्रणवो ब्रह्मभूयाय कल्पते इति ॥ होवाच प्रजापति रिति ॥ कोविदः कुशलः ॥ पाद्मे ॥

यावज्जीवं जपेन्मन्त्रं प्रणवं ब्रह्मणोवपुः ॥
ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घः शान्तिप्रदायकः ॥ १ ॥
प्लुतस्तु सर्व्व सिद्धिः स्यात् प्रणव स्त्रिविधस्मृतः ॥
अ ऋगवेद संज्ञकः । उ यजुः संज्ञको
मकारः साम वेद संज्ञक इति ॥
काठकेऽपिश्रुतिः। सर्व्वेवेदायत्पदमा मनन्तितपांसि सर्व्वाणि
यद्वदन्ति ॥ यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति ॥
तत्तेपदं संग्रहेण प्रवक्ष्येओमिति एतत् ॥ १ ॥
एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ॥
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ २ ॥
एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परं ॥
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ इति ॥३॥
॥ मुण्डकोपनिषदि ॥ तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः
तदेतत् सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सौम्य विद्धि । धनुर्गृहीत्वौप
निषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं सन्धीयत । आयम्य
तद्भावगतेन चेतसालक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्यविद्धि। प्रणवोधनुः
शरोह्यात्माब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते ॥ अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्त-
न्मयो भवेत् ॥ इति ॥ माण्डुक्योपनिषदि॥ॐ मित्येतदक्षर-
मिदं सर्व्वं तस्योप व्याख्यानं भूतं भवत् भविष्यदिति सर्व्व-
मोङ्कार एव इति ॥ भगवद्गीतायां॥
अक्षरंपरमं ब्रह्म स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ॥
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्म्म संज्ञितः ॥ १ ॥
अन्तकालेच मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम् ॥

यः प्रयाति समद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥
यदक्षरं वेद विदोवदन्ति विशन्ति यत् यद्यतयो वीतरागाः ॥
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति तत्तेपदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥३॥
ॐ मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनु स्मरन् ॥
यःप्रयातित्यजन् देहं सयाति परमांगतिम् ॥४॥
अनन्यचेताः सततंयो मांस्मरति नित्यशः ॥
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥५॥ इति
यस्तु द्वादशसाहस्त्रं नित्यं प्रणवमभ्यसेत् ॥
तस्य द्वादशभिर्मासैः परंब्रह्म प्रकाशते ॥ ६ ॥ इति
आरुणिश्रुतिरपि ॥ ब्रह्मचर्य्यमहिंसाचा-
परिग्रहश्च सत्यञ्च यत्नेन हे रक्षतो हे रक्षतः ॥ इति ॥
त्रिसन्ध्यादौस्नानमाचरेत् । सन्धिं समाधावात्मन्या चरेत् ॥ सर्व्वेषु वेदेषु आरण्यक तावर्त्तयेदिति ॥ तत्रत्रिसन्ध्यादौ स्नानमाचरेदितिकुटीचकादि विषयं परमहंसस्य त्रिकालस्नानाभावादित्यग्रेवक्ष्यते ॥ काठके ॥
स्वस्ति सर्व्वजीवेभ्य इत्युक्त्वादीक्षामुपेयात् ॥ काषाय वासाः कक्षोपस्थ रोमालघुमुण्डोदर पात्रो कस्मादित्य ध्यात्मम स्म ध्यायत ऊर्द्धगोवायुर्विमुक्तमार्गो भवेदनिकेत श्चरोद्भित्ताशनं तद्द्यात् ब्रह्मैवे कं धारयेदिति ॥ अथ वेदान्त श्रवणं कुर्य्यात् ॥ सन्न्यस्य श्रवणं कुर्य्यादित्यनेन सन्न्यासानन्तरं वेदान्त श्रवणस्यैव मुख्यत्वेन विहितत्वाद्वेदं कृत्वा वेदिं करोतीतिवत् ॥ तथैव स्मर्य्यतेऽपि ॥ दिने दिनेतु वेदान्त श्रवणाद्भक्ति संयुतः ॥ गुरुशुश्रूषयोपेतः कृच्छ्राशीति फलं

लभेदिति ॥ इत्थं प्रणव जपादिकं गुणभूतमिति मन्तव्यं । श्रवणंनाम सर्व्वेषां वेदान्तानां अद्वितीये ब्रह्मणि तात्पर्य्य वधारणं ॥ मननं नाम ॥ श्रुतस्यार्थस्य शास्त्राविरूद्ध सूक्ष्म युक्तिभिश्चिन्तनं ॥ निदिध्यासनं नाम ॥ मतस्यार्थस्य नैरन्तर्य्येणानु सन्धानापरपर्य्यायं निदिध्यासनं ॥ अनन्तरं सर्व्व संसारबीजभूताऽविद्यानिवर्त्तक जीव ब्रह्मैक्य साक्षात् कारोऽहं ब्रह्मास्मीति ॥ अथ तत्रेति कर्त्तव्यता ॥ नारद परि ब्राजकोपनिषदि ब्रह्म स्वरूपमाह । अथ ब्रह्मस्वरूपं कथ मिति ॥ नारदःपप्रच्छ । तं होवाच पितामह किं ब्रह्मस्वरू मिति ॥ अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति ये विदु स्ते पशवो नु स्वभाव पशवस्तमेवं ज्ञात्वा विद्वान् मृत्यु मुखात्प्रमुच्यं नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

कालःस्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानियोनिःपुरुष इति चिन्त्यं संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माह्यनीशः सुख दुःखहेतौ॥१॥ ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढां। यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मा युक्तान्य धितिष्ठत्येकः ॥ २ ॥

तमेकस्मिंस्त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्धारं विंशति प्रत्यराभिः ॥ अष्टकैः षड्भि र्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहं ३ पञ्चस्त्रोतोम्बुं पञ्चयोन्यु ग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मिंपञ्च बुध्यादि मूलां ॥ पञ्चवर्त्तां पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्भेदं पंच पर्व्वामधीमः ॥४॥ सर्व्वाजीवे सर्व्वसंस्थे बृहन्ते तस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे । पृथगात्मानं प्रेरितारञ्च मत्वा जुष्ट

स्तत स्तेना मृतत्वमेति ॥ ५ ॥ उद्गतिमेतत् परमंतुब्रह्म तस्मिं स्त्रयं स्वप्रतिष्ठाक्षरश्च ॥ अत्रान्तरं वेदविदो विदित्वा लीनाःपरे ब्रह्मणितत् परायणाः ॥ ६ ॥ संयुक्तमे तत् क्षरम क्षरञ्च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः॥ अनीशश्चात्मा बुध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वादेवं मुच्यते सर्व्वपाशैः ॥ ७ ॥ ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनेशावजोह्येको भोक्तृ भोगार्थ युक्तः ॥ अनन्त श्चात्मा विश्वरूपोह्यकर्त्तात्रयं यदा विदन्ते ब्रह्म एतत् ॥ ८ ॥ क्षरं प्रधान ममृताक्षरं हरः क्षरात्मना विशते देव एकः तदभिध्यानाद्योजनात्तत्वभावाद् भूयश्चान्ते विश्वमाया निवृत्तिः ॥ ९ ॥

ज्ञात्वादेवंमुच्यते सर्व्वपाशैः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः । तस्याभिधानात्तृतीयं देह भेदं विश्वैश्वर्य्यं केवल आत्मकामः१० एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातःपरं वेदितव्यं हि किंचित् ॥ भोक्ताभोग्यं प्रेरितारंच मत्वा सर्व्वं प्रोक्तंत्रिविधं ब्रह्मएतत् ११ आत्मविद्या तपोमूलं तद्ब्रह्मोपनिषत्परं । य एवं विदित्वा स्वरुप मेवानुचिन्तयन्तः तत्रकोमोहःकः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ १२ ॥ तस्माद्विराड्भूतं भव्यं भविष्यत् भवत्य नश्वरस्वरूपं अणो रणीयान् महतो मही यानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायां । तमक्रतुंपश्यति बीत शोको धातुःप्रसादान्महिमान मीशं॥ १३ ॥ अपाणि पादो जवनो गृहीता पश्यत्य चक्षुः सशृणोत्य कर्णः ॥ स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तं ॥१४॥ अशरीरं शरीरेष्व न वस्थेष्व वस्थितं॥ महान्तं विभुमात्मानं

मत्वाधीरो न शोचति ॥ १५ ॥ सर्व्वस्यधातारमचिन्त
शक्तिं सर्व्वागमान्तार्थ विशेष वेद्यं परात्परं परमं वेदितव्यं
सर्व्वावसाने सकृद्वेदितव्यं ॥१६॥ कविं पुराणं पुरुषोत्तमं
त्तमं सर्व्वेश्वरं सर्व्वदेवैरुपास्यं अनादिमध्यान्त मनन्त
मव्ययं शिवाच्युताम्भोरुह गर्भभूधरं ॥ १७ ॥ स्वेनावृ
सर्व्वमिदं प्रपञ्चं पंचात्मकं पंचसु वर्त्तमानं पंची कृता
नन्त भवप्रपंचं ॥ पंचीकृतस्वावयवैरसंवृतं ॥ परात्प
यन्महतो महान्तं स्वरूपतेजोमयशाश्वतं शिवं ॥ १८ ॥
नाविरतो दुश्चरितान्ना शान्तो न समाहितः ।
नाशान्त मानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ १९ ॥
नान्तः प्रज्ञं न वहिः प्रज्ञं नस्थूलं ना स्थूलं न ज्ञानं नाज्ञानं न
भयतःप्रज्ञ मग्राह्य मव्यवहार्य्यं स्वान्तः स्थितःस्वयमेव इति
य एवं वेद स मुक्तो भवति स मुक्तो भवतीत्याह भगवान् पिता
महः । स्वस्वरूपज्ञः परिव्राट् परिव्राडेकाकी चरति भयत्रस्त
सारङ्गवत्तिष्ठति । गमन विरोधं न करोति । स्वशरीरव्यतिरिक्तं
सर्व्वं त्यक्त्वा षट्पदवृत्यास्थित्वा स्वरूपानुसन्धानं कुर्व्वन्
सर्व्वमनन्य बुद्ध्यास्वस्मिन्नेव मुक्तो भवति ॥ स परिव्राट्
सर्व्वक्रियाकारक निवर्त्तको गुरुशिष्य शास्त्रादि विनिर्मुक्तः
सर्व्वसंसारं विसृज्य मा मोहितः परिव्राट् कथं निर्धनिकः
सुखी धनवान् ज्ञानाज्ञानो भयातीतः सुखदुःखातीतः
स्वयं ज्योतिः प्रकाशः सर्व्ववेद्यः सर्व्वज्ञः सर्व्व सिद्धिदः
सर्व्वेश्वर; सोऽहमिति तद्विष्णोः परमं पदं यत्र गत्वा
न निवर्त्तन्ते योगिनः । सूर्य्यो न तत्रभाति न शशांको

ऽपि न स पुनरावर्त्तते न स पुनरावर्त्तते तत् कैवल्य मित्युप निषत् ॥ नवमोपदेशः ॥ अथ वेदान्तश्रवणं कुर्य्यात् ॥ कूर्म्मपुराणे । आचम्य संयतो नित्यमधीयीत ह्युदङ्मुखः । उपसंगृह्य पादौ तु वीक्ष्यमाणो गुरोर्मुखमित्यत्र नित्य वेदान्ताध्ययन मुदङ्मुखोपविष्ट एव कुर्य्यादिति पूर्व्वस्यार्थः॥ अपूर्व्ववेदान्ताध्ययनन्तु गुरुपादनमस्कारपूर्व्वकंगुरुसंमुखेउप विष्ट एव कुर्य्यादित्युत्तरस्यार्थः ॥ अन्यथा नित्यमित्यध्ययन- क्रिया विशेषणमनर्थ कं स्यात् ॥ न हि सर्व्वदाध्ययन काले गुरु सान्निध्यं संभवतीति विभावनीयं ॥ मनुः ॥ हस्तौतु संयुतौ कार्य्यौ जानुभ्यामुपरिस्थितौ ॥ संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिःस्मृतः॥ ब्रह्मणः प्रणवं कुर्य्यादन्तेच वेद- विद्द्विजः ॥ इति ॥

चकाराद्आदावपि प्रणवं कुर्य्यादित्यर्थः ॥ स्रवत्यनो- ङ्कृतं पूर्व्वपुरस्ताच्च विशीर्य्यते । इति वचनात् ॥ एवं विघ्न निवारक संमुखश्चैकदन्तश्चेत्यादिना विघ्नराजं स्तुत्वा ॥ शन्नो मित्र इत्यादि शान्तिं पठित्वा ॐमित्युच्चार्य्य । वेदान्तग्रन्थस्याध्ययनं गुरुमुखतः कुर्य्यादन्तेऽपि प्रणवं पठेत् ॥ शिष्टाचारानुमितश्रुत्यानतिस्तुत्यादि रूपाङ्गस्य कर्म्ममात्राङ्गतायाः सर्व्वतान्त्रिकव्यवस्थापितत्वात् ॥ ॐकारश्चाथ शब्दश्चद्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा । कण्ठंभित्वा विनि- र्य्यातौ तेन माङ्गलिकावुभौ इति स्मृतेश्च । संप्रदायविदेऽपि यथोपदिष्टां गुरुणासह शान्तिं पठेत्ततः सन्ध्यात्रयं समाधाय गुरुवक्त्रं विलोकयन् ॥ स्थित्वातेनो मितिप्रोक्ते स्वयमोमिति

च ब्रुवन् । मन्दस्वरेण सन्ध्यास्थं वाक्यमेकं पठेत्ततः ।
गुरुणा तस्य संक्षिप्य तात्पर्य्ये वर्णिते सति ॥
ततो वेदान्तकं ग्रन्थं पाठं कुर्य्यात् समाहितः ।
वेदान्त शास्त्रस्यारम्भे प्रणामा द्वादशस्मृताः ।
गुरोर्यथावदन्तेऽपि षट् प्रणामा प्रकीर्त्तिताः ॥ इति
सन्ध्या मन्त्रः ॥ प्रणव वार्त्तिकादि पुस्तकसन्ध्यास्थं वाक्
इति ॥ पञ्चपद्य पदार्थ प्रमाण व्युत्पत्तौ सत्यां वेदान्त
शास्त्रश्रवणाभ्यास एव सर्व्वदा विधेयो न त्वन्यदित्य
वधेयं ॥ तदुक्तं स्मृतिकारैः ॥
त्वं पदार्थविवेकाय सन्न्यासः सर्व्वकर्म्मणाम् ॥
श्रुत्या विधीयते तस्मात्तत्त्यागे पतितो भवेदिति ॥
प्रणवजपादिकन्तु यथासम्भवंकार्य्यं ॥ तथाच विश्वेश्व
पद्धतौ संप्रदायविदः । जपमालां गृहीत्वातु प्रणवार्थ
मनुस्मरन् ॥ जपेत् द्वादश साहस्रं प्रणवस्यप्रयत्नतः ॥१
सहस्रं श्रवणार्थीतु योगाभ्यासी शतं जपेत् । निर्व्विकल्प
समाधिस्तु न जपेत् किंचिदद्वयादिति । यतिधर्म्म
समुच्चये अथ यत्यधिकारभेदः ॥ तत्रोत्तमाधिकारे ॥ श्रुति
भाष्यं सूत्रभाष्यं स्मृतिनामादिभाष्यकं व्याख्या टिप्पणयु-
क्तानि संन्यस्य शृणुयादिति ॥ अत्र व्याख्याटिप्पण शब्दाभ्यां
संक्षेपशारीरकविवरण वाचस्पत्यादीनां संग्रहः । वार्त्तिकं
तैतिरीयस्य बृहदारण्यवार्तिकं । व्याख्या टिप्पण शब्दाभ्या-
मद्वैत चिन्तामण्यादीनामभ्युदयः॥ सन्न्यस्य श्रवणं कुर्य्यात्
इत्ययं विधिः । पुर्व्वोक्त श्लोक द्वये पठितः ॥
ज्ञानकाण्डपरो न तूपासना कर्म्मकाण्डपरः ॥

मध्यमाधिकारे तु। सर्व्वोपनिषदः सर्व्वशाखारण्यक मध्यगाः॥
श्रीगुरो र्मुखतोऽधीत्यनित्यमावर्त्तयेद्यतिः ॥
महाभारत मध्यस्थं शिवनाम सहस्रकं ॥
सूक्तञ्च पौरुषं पुण्यं नित्यमावर्तयेद्यतिः ॥
प्रणवस्यायुतञ्चैव गायत्रीं प्रणवस्य च ॥
प्रणवस्य महाकल्पं नित्यमावर्त्तयेद्यतिः ॥
अतिमन्दाधिकारे तु ॥ यथोक्तेन प्रकारेण नित्याद्याचारमुत्तमम्
लिद्वान वेदशिरसा मभ्यसेत् प्रणवंसदा ॥ इति ॥
प्रणवगायत्री च स्कान्दे प्रणवकल्पे प्रसिद्धा ॥ इति ॥
ॐ काराय सुविद्महे भवताराय धीमहि तन्नो नवः प्रचो-
दयात् ॥ नवः प्रणवः। अत्रोत्तमाधिकारी परमहंसएव
सन्न्यासस्यैव ज्ञानार्थतया भगवत् पूज्यपादै र्वृहदारण्यक-
भाष्ये पञ्चमाध्याये व्यवस्थापितत्वात् ॥

॥ अति मन्दाधिकारी कुठीचकः। मन्दाधिकारी वहूदकः। मध्यमाधिकारी हंसः ॥ उत्तमाधिकारी परमहंसः ॥ यथोक्तेन प्रकारेण विधूमे सन्नमूसले इत्यादि स्मृत्युक्तप्रकारेण नित्याद्याचारं नित्यमुक्तं योग्यं नित्याद्यं भिक्षान्नं तस्याचार आचरणं भक्षणमिति यावत् ॥ एवं चोत्तमाधिकारिणा यथोक्त श्रवणाभ्यास स्तावत् कर्त्तव्यो यावदविद्यानिवर्त्तक-तत्त्वसाक्षात्कारो भवेत्। अविद्यादेः स्वरूपञ्च पूर्व्वाचार्य्यैर्निरूपितं अनात्मभूत देहादावात्मवुद्धिस्तु देहिनां। साऽविद्या तत् कृतो वन्धस्तन्नाशो मोक्ष उच्यते ॥ ऐक्यात्म प्रतिपत्तिर्या स्वात्मानुभवसंश्रया। साऽविद्या संसृतेर्वीजं

तन्नाशो मुक्तिरात्मनः ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थं यज्जीव परमात्मनोः। तदात्म विषयं ज्ञानं तदिदं मुक्तिकारणमिति। स्वात्मानुभव संश्रयेत्यत्रानुभवः। अहमज्ञ इत्याकारकः संश्रय प्रमाणं स्मर्य्यत इति यत्यधिकारिभेदः ॥ अथान्हिक निरूपणं तत्र पराशरमाधवीये ॥ कुटीचकादिचतुर्विध सन्न्यास निरूपणानन्तरमथ तद्धर्म्मा निरूप्यन्ते इति प्रति ज्ञाय बौधायनस्मृतिवाक्यमुपन्यस्तं ॥ इति ॥ अथ यते र्नियमः कथमिति स्पष्टं नारदं पितामहः पुरस्कृत्य विरक्त सन् यो वर्षासु ध्रुव शीलोऽष्टौ मास्येकाकी चरन्नैकत्र निवसे द्भिक्षुर्भयात् साङ्कवादेकत्र न तिष्ठेत् स्वगमननिरोध ग्रहणं न कुर्य्याद्धस्ताभ्यां नद्युत्तरणं न कुर्य्यान्नवृक्षारोहण मपि न देवोत्सवदर्शनं कुर्य्यान्नैकत्राशी न वाह्यदेवार्च्च कुर्य्यात्॥ स्वव्यतिरिक्तं सर्व्वंत्यक्त्वा माधुकर वृत्याहारमाहरन् कृशो भूत्वामेदो वृद्धि मकुर्व्वन्नाज्यं रुधिरमिव त्यजेदेक त्रान्नं पललमिव गन्धलेपनमशुद्धिलेपनमिव वस्त्र मुच्छिष्ट पात्रमिवाभ्यङ्गं स्त्रीसङ्गमिव मित्राल्हादकं मूत्रमिव स्पृहां गोमांसमिव ज्ञातचरदेशं चाण्डालवाटिमिव स्त्रियः महि मिव सुवर्णं कालकूटमिव सभास्थलं श्मशानस्थलमिव राजधानीं कुम्भीपाकमिव शवपिण्डवदेकत्रान्नं न देहान्तर- दर्शनं प्रपञ्चवृत्तिं परित्यज्य स्वदेशमुत्सृज्य ज्ञातचरदेशं विहाय विस्मृत पदार्थ पुनः प्राप्ति हर्ष इव स्वमानन्दमनु स्मरन् स्वशरीराभिमानदेशविस्मरणं मत्वा स्वशरीरं शवमिवहेयमुपगम्य कारागृह विनिर्मुक्त चौरवत् ॥ पुत्राप्त-

वन्धुभवस्थलं विहाय दूरतो वसेत् ॥ अयत्नेन प्राप्तमाहरन् ब्रह्मप्रणवध्यानानुसन्धानपरो भूत्वा सर्व्वकर्म्मनिर्मुक्तः कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्य्यादिकं दग्ध्वा त्रिगुणातीतः षड्भावविकारशून्यः सत्यवाक्छुचि रद्रोही ग्रामेएक रात्रं पत्तने पञ्चरात्रं क्षेत्रे पञ्चरात्रं तीर्थेपञ्चरात्रमनिकेतः स्थिरमतिर्नानृतवादी गिरिकन्दरेषु वसेदेक एव द्वौ वा चरेत् ॥ ग्रामंत्रिभिर्नगरं चतुर्भिर्ग्राममित्येक श्चरेत् ॥ भिक्षुश्चतुर्दशकरणानां न तत्रावकाशं दद्यात् विच्छिन्न ज्ञाना-वैराग्य सम्पत्तिमनुभूय मत्तो न कश्चिन्नान्यो व्यतिरिक्त-इत्यात्मन्यालोच्यसर्व्वतः स्वरूपमेव पश्यन्जीवन् मुक्तिमवाप्य प्रारब्धप्रतिभासनाशपर्य्यंतं चतुर्विधंस्वरूपं ज्ञात्वा देहपतनपर्य्यन्तं स्वरूपानुसन्धानेन वसेत् ॥ त्रिषवणास्नानं कुटीचकस्य । वहूदकस्य द्विवारं हंसस्यैकवारं । परमहंसस्य मानसस्नानं ॥

तुरीयातीतस्य भस्मस्नानं । अवधूतस्य वायव्य स्नानं ॥

ऊर्द्ध्वपुण्ड्रं कुटीचकस्य त्रिपुण्ड्रं वहूदकस्य ॥

ऊर्द्ध्वपुण्ड्रं हंसस्य भस्मोद्धूलनं परमहंसस्य ।

तुरीयातीतस्य तिलकपुण्ड्रं । अवधूतस्य न किञ्चित् तुरीयातीतावधूतयोः ऋतुक्षौरं । कुटीचकस्य ऋतुद्वयक्षौरं ॥ वहूदकस्य न क्षौरं । हंसस्य परमहंसस्य च न क्षौरं ॥ अस्तिचेदयनक्षौरं ॥ तुरीयातीतावधूतयोः न क्षौरं ॥ कुटीचकस्य एकान्नं । माधूकरं वहूदकस्य । हंसपरमहंसयोः करपात्रं । तुरीयातीतस्य गोमुखं । अवधूतस्याजागरवृत्तिः ॥ शाटीद्वयं

कुटीचकस्य ॥ वहूदकस्यैक शाटी । हंसस्य खण्डं दिगम्बरं परमहंसस्य एककौपीनं वा तुरीयातीतावधूतयोर्जात रूपधरत्वं ॥ हंसपरमहंसयो राजिनं न त्वन्येषां कुटीचक वहूदकयो र्देवार्च्चनं । हंसपरमहंसयोर्मानसार्च्चनं तुरीयातीतावधूतयोः सोऽहं भावना ॥ कुटीचक वहूदकयोर्मन्त्र जपाधिकारः हंसपरमहंसयो र्ध्यानाधिकारः । तुरीयातीता वधूतयोर्नत्वन्याधिकार स्तुरीयातीतावधूतयोर्म्महावाक्योप देशाधिकारः परमहंसस्यापि ॥ कुटीचकवहूदकहंसान नान्यस्योपदेशाधिकारः ॥ कुटीचक वहूदकयो र्मानस प्रणव हंसपरमहंसयो रान्तरप्रणवः । तुरीयातीतावधूतयोर्ब्रह्म प्रणवः ॥ कुटीचक वहूदकयोः श्रवणं हंसपरम हंसा मननं । तुरीयातीतावधूतयो र्निदिध्यासः ॥ सर्व्वेषामात्म नु सन्धानं विधिरित्येव ॥ मुमुक्षुः सर्व्वदा संसारतार तारकमनुस्मरन् जीवन्मुक्तो वसेदधिकार विशेषेण कैवल्य प्राप्त्युपायमन्विष्येद् यतिरित्युपनिषत् सप्तमोपदेशः ॥ सन्न्यासोपनिषदि ॥

न यते र्देवपूजाद्युत्सव दर्शनं । तस्मान्नसन्न्या एकलोकः आतुर कुटीचकयो र्भूलोक भुवर्लोकौ ॥ वहूदकस्य स्वर्गलोकः । हंसस्य तपोलोकः ॥ परमहंसस्य सत्यलोकः तुरीयातीतावधूतयोः स्वात्मन्येव कैवल्यं स्वरूपानु सन्धाने भ्रमरकीटन्यायवत् ॥ स्वरूपानुसन्धानव्यतिरिक्ताऽन्य शास्त्राभ्यासैरुष्ट्रैः कुङ्कुमभारवद्व्यर्थः। नयोगशास्त्र प्रवृत्ति न सांख्यशास्त्राभ्यासः ॥ न मन्त्रतन्त्रव्यापारः नेत

शास्त्र प्रवृत्तिः यतेरस्ति॥ अस्तिचेच्छवाऽलङ्कारवत् कर्म्माचार विद्याद्दूरः ॥ न परिव्राट्नाम सङ्कीर्त्तनपरो यद्यत् कर्म्म करोति तत्तत् फलमनु भवति ॥ एरण्डतैलफेनवत् सर्व्वं परित्यजेत् । न देवता प्रसादग्रहणं । न वाह्यदेवाभ्यर्च्चनं कुर्य्यात् । स्वव्यतिरिक्तं सर्व्वं त्यक्त्वा मधुकरवृत्त्याहारमाहरन् कृशी भूत्वा मेदो वृद्धिमकुर्व्वन् विहरेत् माधूकरेणकरपात्रेण वा कालं नयेत् ॥इति॥ नन्वस्तिचेदाश्रमोचित धर्म्मेष्वधिकारो यतेस्तर्हि तदङ्गभूताभ्यां शिखायज्ञोपवीताभ्यां भवितव्यमेव मैवं वहि र्भूतशिखा यज्ञोपवीताङ्ग भावेऽपि सम्यगस्य ब्रह्मचारिणः शिखा भावेऽपि वचनात् कर्म्मण्य धिकार एव अधिकारोपपत्तेः ॥

आन्तर शिखायज्ञोपवीत संभवाच्चा धिकारोऽस्त्येव तथाच ॥

आथर्वणश्रुतिः॥ ज्ञानाशिखा ज्ञाननिष्ठा ज्ञानयज्ञोपवीतिनः॥
ज्ञानमेवपरं तेषां पवित्रं ज्ञान मुच्यते ॥
अग्नेरिव शिखानान्या यस्य ज्ञानमयी शिखा ॥
सशिखी त्युच्यते विद्वान्नेतरे केशधारिणः ॥ इति ॥

आरुणिश्रुतिः ॥ सर्व्वं खल्विदं ब्रह्मसूत्रं सूचनात् सूत्रंब्रह्म सूत्रमहमेवेति विद्वान् त्रिवृत् सूत्रंत्यजेद्विद्वान् य एवं वेदेति ।

अत्रिः । ज्ञानशिखा ज्ञाननिष्ठा ज्ञानयज्ञोपवीतिनः ।
ज्ञानमेव परं तेषां पवित्रं कायशोधनमिति ॥

मैत्रायणी श्रुतिः ॥ अयज्ञोपवीति शौचनिष्ठः कल्मषमेकं वैणवं दण्डमाददीतेति शिखाज्ञानमयी यस्यउपवीतञ्च तन्मयं ॥ ब्राह्मण्यं सकलं तस्य इति ब्रह्मविदो विदुः ॥

इइं यज्ञोपवीतन्तु परमं यत् परायणं । विद्वान् यज्ञोपवी
स्यात् यज्ञस्तं यज्विनं विदुः इदमेवास्य तद्यज्ञोपवी
यदध्यात्मध्यानं विद्याशाखा नरैः सर्व्वत्रावस्थितैःका
निर्वर्त्तयेदिति ॥

अथान्हिकनिरूपणं तत्र पराशरमाधवीये । कुटीचका
चतुर्व्विध सन्न्यास निरूपणानन्तरमथतद्धर्म्मा निरूप्यन्ते इ
प्रतिज्ञाय वौधायनस्मृति वाक्यमुपन्यस्तं ॥ तद्यथा ॥
उषः काले समुत्थाय शौचं कृत्वा यथा विधि ॥
दन्तानि शोध्य चाचम्य पर्व्ववर्ज्जं यथा विधि ॥ १ ॥
स्नात्वा चाम्य च विधिवत्तिष्ठन्नासीन एववा ।
धृत्वा जलपवित्रञ्चाप्यक्षसूत्रं करद्वये ॥ २ ॥
तद्वत् पवित्र गोवालैः कृते दुष्कृतनाशने ॥
उदये विधिवत् सन्ध्यामुपास्य त्रिकजप्यवान् ॥३॥
मित्र सचर्षणी ह्याद्यै रुपस्थाय रविं त्रिभिः ॥
पुर्व्ववत्तर्पयित्वाथ यजेत् सम्यक् समाहितः ॥४॥ इति

अत्रवाक्ये उषः काले स मौनः सन् मूत्रपुरीषादि शौ
चमनं दन्तधावनस्नान सन्ध्योपासन तर्पणादेव पूजन
कुटीचकादि साधारण्येन परमहंसानामपि यतीनां कर्त
त्वेन विहितानि तत्रोषः कालस्वरूपमुक्तं स्मृतिकारै
पञ्चपञ्च उषः कालसप्तपञ्चारुणोदयः ।
अष्टपञ्च भवेत्प्रातः शेषः सूर्य्योदयःस्मृतः ॥ इति ॥
एवं विधेषः काले शयनादुत्थाय मूत्र पुरीषोत्सर्ग कुर्य
॥ अथ वा ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय भगवन्तमात्मत्वेन स्म

मूत्रपुरीषोत्सर्गं विधिवत् कुर्य्यात् ॥ अङ्गिराः ॥
उत्थाय पश्चिमे यामे रात्रे राचम्य चोदकं ॥
अन्तर्धाय तृणै र्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा ॥ १ ॥
वाचं नियम्य यत्नेन निष्ठीवोच्छ्वासवर्जितः ।
कुर्य्यान्मूत्रपुरीषेतु शुचौदेशे समाहितः ॥ २ ॥
इति कर्णसूत्रग्रहणं गृहस्थविषयम् ।
अन्यत् साधारणं तृणैरयज्ञीयैः तृण ग्रहण मुपलक्षणार्थं ॥
तिरस्कृत्य चरेत् काष्ठं पत्रं लोष्टं तृणानि वा ।
नियम्य प्रयतो वाचं संवीतांगोऽवगुण्ठितः ।
उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्य्यादुदङ्मुखः ।
रात्रौ तु दक्षिणे कुर्य्यादुभे सन्ध्ये दिवा यथेति ॥
आचम्येति स्वापनिमित्ताचमनं ॥ पराशरः ॥
ततः प्रातः समुत्थाय कुर्य्याद्विण्मूत्रमेव च ॥
नैर्ऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याप्यधिकं बुधः ॥
ग्रामात् क्रमशतं गच्छेन्नगराच्चचतुर्गुणम् ॥
स्मृत्यन्तरेऽपि । दशहस्तं परित्यज्य मूत्रं कुर्य्याज्जलाशये ।
शतहस्तं पुरीषन्तु नदीतीरे चतुर्गुणं ॥ इति
स्मृत्यन्तरे ॥ शतहस्तं परित्यज्य मूत्रं कुर्य्याज्जलाशयात् ॥
शतद्वयं पुरीषेतु तीर्थे चैव चतुर्गुणं
स्मृत्यन्तरे याज्ञवल्क्यः ॥
दिवासन्ध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः ॥
कुर्य्यात् मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥ इति
कर्णस्थ ब्रह्मसूत्रइत्येतद् ब्रह्मचारिविषयं ॥

कुटीचकादि विषयञ्च ॥ यमः ॥
प्रत्यङ्मुखस्तु पूर्व्वान्हे सायान्हे प्राङ्मुखस्तथा ॥
उदङ्मुखस्तु मध्यान्हे निशायां दक्षिणामुखः ॥ इति ॥
छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ॥
यथासुखमुखं कुर्य्यात् प्राणबाधभयेषु च ॥
भरद्वाजः ॥ अपकृष्यच्च विन्मूत्रे काष्ठ लोष्ठ्र तृणादिना ।
उदस्तवासा उत्तिष्ठेद् दृढं विधृतमेहनः ॥ इति ॥
अत्रिः। शुद्ध्यर्थञ्चात्रिभिःकाष्ठैस्तृणै र्वापि निघर्षयेत्। यस्मिन्
देशे च यत्तोयं याच यत्र च मृत्तिका ॥ सैव तत्रप्रशस्तास्या
त्तया शौचं विधीयते ॥ अथ शौचविधिः याज्ञवल्क्यः
गृहीतशिश्न श्चोत्थाय मृद्भिरभ्युद्धृतै र्जलैः ॥ गन्धले
क्षयकरं शौचं कुर्य्यादतन्द्रितः ॥ अभ्युद्धृतैरिति जल
विशेषणं ॥ जलाभ्यन्तरे शौच निषेधात्। तथाच वायुपुराणे
तीर्थे शौचं न कुर्व्वीत कुर्य्यादुद्धृतवारिणा ॥ इति ॥
एवमुद्धरणाशक्तौ गतिरुक्ता । आदित्य पुराणे ॥
रत्निमात्रं जलं त्यक्त्वाकुर्य्याच्छौचमनुद्धृते ॥
पश्चात्तु शोधये त्तीर्थमन्यथात्वशुचिर्भवेद्दिति ॥
गन्धलेपक्षयकरमिति तु वालस्त्रीशूद्रादिसर्व्वसाधारणं ।
वक्ष्यमाणमृत् संख्यादिपरिमाण नियमस्त्वदृष्टार्थः ।
अत एव तत् संख्यादि पूरणात् प्रागेव गन्ध-
लेपक्षये सत्यपि तत् पूरणं कर्त्तव्यमेवेति
धर्म्मविद्वांसः॥ दक्षः ॥ शौचे यत्नः सदाकार्य्यः शौचमूलो
द्विजः स्मृतः ॥ शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः

क्रियाः ॥ इति ॥ शातातपः ॥
शुचिदेशात्तु संग्राह्या शर्कराश्मादिवर्जिता ॥
कश्यपः ॥ विप्रेगौरा मृदः प्रोक्ताः क्षत्रे रक्ता स्तथोदिताः ॥
वैश्ये तु हरिताः प्रोक्ताः कृष्णाः स्त्रीशूद्रयोः स्मृता इति ॥
विष्णुपुराणे ॥ वल्मीकमूषकोत्खातमृदं चान्तर्ज्जलां
तथा ॥ शौचावशिष्टाङ्गेहाच्च मृदःशौचे विवर्ज्जयेत्।विष्णुः॥
अन्तः प्राण्यवपन्नां च हलोत्खाताञ्च नाहरेत् ॥ इति
मनुः ॥ आहृतामन्यशौचार्थं वालुकां पांशुरूपिणीं ॥
न मार्गान्नश्मशानाच्च नादद्यात् कुड्यतः क्वचित् ॥
यमः ॥ आहरेन्मृत्तिकां प्राज्ञः कुलात्सत् सिकता तुया ॥
कुलग्रहणमुपलक्षणार्थं इति ॥ शुचिदेशात्तु संग्राह्या
शर्कराश्मादिवर्ज्जितेति पुर्व्वोक्त शातातप वचनात्।कपिलः॥
चतुरङ्गुलमृत्तिकाखनन परिग्रहे न दोष इति ॥
यमः ॥ उभे मूत्रपुरीषे तु पूर्व्वं गृह्णीत मृत्तिकाम् ॥
पश्चाद् गृह्णाति यो विप्रः सचैलोजल माविशेत्
तीर्थे शौचं न कुर्व्वीत कुर्व्वीतोद्धृतवारिणा ॥
पैठीनसिः ॥ अनूदक मूत्र पुरीष करणे स चैलस्नान-
मिति.॥ उदकपात्राभावे तीर्थेऽपि शौचमुक्तं ॥ मनुः ॥
यावन्नापैति मेध्याक्तो गन्धेलपश्चतत्कृतः ॥ तावन्
मृद्वारि देयं स्यात् सर्व्वासु द्रवशुद्धिषु ॥ उद्धृताभ्यां मृज्ज-
लाभ्यां गन्धलेपक्षय करं ॥ इति॥ शौचं विधाय अदृष्टार्थ
मृत्संख्यानियममाह ॥ शातातपः ॥
एका लिङ्गे करेसव्ये तिस्रो द्वे हस्तयो र्द्वयोः ॥
मूत्रशौचं समाख्यातं शुक्रे तद्द्विगुणं स्मृतम् ॥

अत्र पादयोः सकृन्मृत्तिकेत्यपिबोध्यं ॥
मृत्परिमाणनियममाह दक्षोऽपि ॥
लिङ्गे तु मृत्समाख्याता त्रिपर्व्व पूर्य्यते यया ।
दातव्यमुदकं तावन्मृदभावो यथा भवेत् ॥
लिङ्गे मूत्र शौच इत्यर्थः ॥ विट्शौचे मृत् संख्या परिमाण
नियममाह मनुः ॥ एकालिङ्गेगुदे तिस्र स्तथैकत्र करेदश ॥
उभयोः सप्त दातव्यामृदःशुद्धिमभीप्सता ॥
एका लिङ्गे तिस्रो वामे उभयोर्द्वेतु मृत्तिके ॥
अर्द्धप्रसृतिमात्रा तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता ।
द्वितीया च तृतीया च तदर्द्धार्द्धा प्रकीर्त्तिता ॥ इति ॥
स्मृतिसंग्रहे ॥ एकालिङ्गे गुदे पञ्च तथैकत्र करे दश ।
उभयोःसप्त दातव्या स्तिस्र स्तिस्र स्तु पादयोः ॥ इति
दातव्यमुदकं तावन्मृदभावोयदा भवेत् ॥
एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणां ॥
त्रिगुणन्तु वनस्थानां यतीनां च चतुर्गुणं ॥ इति
यद्दिवा विहितं शौचं तदर्द्धं निशि कीर्त्तितं ॥
तदर्द्धमातुरे प्रोक्तमातुरस्यार्द्धमध्वनि ॥
चौरव्याघ्रादिसंकुलेपथि ॥ देवलः ॥
धर्म्मविद्दक्षिणं हस्तमधःशौचे न योजयेत् ॥
तथैव वामहस्तेन नाभे रुर्द्ध न शोधयेत् ॥
अयञ्च नियमः स्वस्थे कारणादुभयक्रियेति ॥
कारणात् हस्तरोगादिनिमित्तात् ॥
उभयक्रिया एकेनैव हस्तेन उभयसाध्यक्रिया कर्त्तव्य

त्यर्थः ॥ विण्मूत्रयो र्मिलितयोः करणे लिङ्ग शौचमात्रं पृथक् कार्यं हस्तपादादिशौचन्तु तन्त्रेणैव देशकाल- कर्मैक्यात् ॥ शौचरूपोपकारकस्यैकत्वात् ॥ बहुसंख्ये ल्पसंख्य स्यान्तर्भावसंभवाच्चेति यतीनां च चतुर्गुणं अत्र वसिष्ठः । शौचमुक्तं वेदितव्यं तत श्चाश्रम भेदेन द्वैगु- ण्याद्यभिधानं । तद्विषयमेव च एतदिति सर्व्व नाम्ना प्रकृतस्य एव परामर्शात्, द्वैगुण्यादि च संख्यापेक्षया परि- माणापेक्षयाच्च स्यात् एवं प्रकृतत्वात्॥यत्त्वत्र हारीत वचः॥ तिसृभिः पादौ प्रक्षालयेदिति । तल्लेपशङ्कायामिति वेदितव्यं पञ्चापाने दशैकस्मिन्नित्यादिसंख्याविशेष- पक्षौशक्त्यपेक्षया विकल्पितौ विज्ञेयौ ॥ मूत्रशौचंपुरस्कृत्य वृहच्छौचं समाचरेत् ॥पश्चाच्च पादशौचन्तु शौचवद्भि- रुदाहृतं ॥ १ ॥ शौचे यत्नः सदा कार्य्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः ॥ शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः ॥२॥ न्यूनाधिकं नकर्तव्यं शौचशुद्धिमभीप्सता ॥ आजा- नुक्षालयेन्मूत्रे मलेष्वाकटि मृज्जलैः॥ ३ ॥ दुःस्पर्शेस्नानतः शुद्धि रिति शातातपोऽब्रवीत् ॥ शौचावशिष्टगांशेषमृदं संक्षालयेद् द्विजः ॥ ४ ॥

अन्यथा च पतेत्तेषां पितॄणां मुखपङ्कजे ॥

मदनपारिजाते ॥ वृद्धपाराशरः ॥

अरण्ये निर्जले रात्रौ चौरव्यालाकुले पथि ।

कृत्वा मूत्रपुरीषेतु द्रव्यहस्तो न दुष्यतीति ॥ ५ ॥

मृदादिकं हस्ते धृत्वा मूत्रपुरीष करणेऽपितद्रव्यं प्रोक्षणेन

शुद्धंभवतीत्य पिमतंतन्त्रे व लिखितं ॥ बृहस्पतिः ॥
नस्य तु विप्रस्य कदाचित् स्रवते गुदं॥ उच्छिष्टमशुचि
श्च तस्य शौचं विधीयते। पूर्व्वं कृत्वातु शौचन्तु ततः
पश्चादुपस्पृशेत् । ततः कृत्वोपवासश्च पञ्चगव्येन शुध्यति
उपस्पृशेत् यथावद्गुद शौचंकृत्वा ॥
अत्र विष्णुःनाभेरधस्ताद्वाहुषु च कायिके मलेः॥
सुराभि र्मद्ये र्वापहतो मृतो यै स्तदङ्गं प्रक्षाल्याचान्तः
शुध्येदिति ततो धौतकौपीनं परिधाय द्वादश-
गण्डूषपूर्व्वक माचम्य षट् प्राणायामान् कुर्य्यात् ॥
तथा च संप्रदाय विदः ॥ द्वेआचमने सिद्धे ॥
धौत कौपीनं गण्डूषान् द्वादश चरेत् ॥
आचम्य प्रयतो भूत्वा प्राणायामान् षडाचरेत् ॥
केवलेतु लघुशौचे विशेषतः षट् गण्डूषांस्ततः
कृत्वा प्राणायामत्रयं चरेत् ॥ अथ विण्मूत्रव्यतिरि
शरीरमल शौचंतत्रमलानाह ॥ मनुः ॥
वसासृक्शुक्र मज्जामूत्र विट्कर्ण विट्नखाः ।
श्लेश्माश्रुदूषिकास्वेदा द्वादशैते नृणांमला इति ॥
एतैरुपघाते शौचमाह वौधायनः ॥
आददीतच मृत्तोयं षट्सु पूर्व्वेषु शुद्धये ॥
उत्तरेषुतु षट्स्वद्भिः केवलाभि र्विशुध्यतीति ॥
अथ गण्डूषाः स्मृतिसंग्रहे ॥
दशद्वादशगण्डूषैरद्भिः संशोधयेन्मुखं ॥
मूत्रशौचैः चतुर्भिश्चाध्यऽष्टभि र्भुक्त्यनन्तरं ॥

भुति मूत्रपुरीषोत्सर्गे शौचविधिः ।
चिरथ द्विराचम्य दन्तधावनं । आचमन प्रकारस्तु अग्रे वक्ष्यते॥
वृद्धशातातपः ॥
खे पर्य्युषिते नित्यं भवत्यऽप्रयतोनरः ।
स्मात् सर्व्व प्रयत्नेन भक्षयेद्दन्तधावनं ॥
प्रथाङ्गुलेन मानेन तत्प्रमाणमिहोच्यते ॥
ादेशमात्र मथवातेन दन्तान् विशोधयेत् ।
अन्यत्तु भक्षयेच्चर्वयेन्मुख्यार्थे बाधकाभावात् ।
क्षणञ्च दन्तकाष्ठस्य प्राशिथिला वयवता पादनम्
तु गिरणं ॥ अप्रयतोऽशुचिः ॥ तथाच विष्णुः ॥
कनिष्ठाग्रसमस्थौल्यं सकूर्च्चं द्वादशाङ्गुलं ॥
ातर्भक्ष्वाचयतवाक् भक्षयेद् दन्तधावनं ।
सकूर्च्चंचूर्णिताग्रं यथा भवति यथा भक्षयेदित्यर्थः ॥
एतद् दन्तधावनं स्नान सन्ध्ययोः ॥
प्रागुत्थापनेऽत्र प्रक्षाल्य शुचि भूत्वा समाहितः ।
परिजप्यच मन्त्रेण भक्षयेद् दन्त धावनं ॥
दन्तशोधकं काष्ठं भक्षयेद्दन्तेषु घर्षयेदित्यर्थः ॥
॥ नारदः ॥ खदिरश्चकरञ्जश्च करवीर कदम्बकौ ।
सर्व्वेकणटकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः ॥
जम्बुनिम्बुकचूताश्च कदम्बो लोध्रचम्पकः ।
वदरं कन्दुकास्ते ते प्रशस्ता दन्तधावने ॥
कोविदारः कदम्बश्च कुटजश्लक्ष्णमालती ।
शालाकोल प्रियंगुश्च तमालः शाक एवच ॥



आम्रान्कोविदारश्च प्रशस्तान्येपि येद्रुमाः ।
वर्ज्यानि शाल्मली पीलूभव्याकिंशुकतिन्दुकाः ॥
अरिष्टाद्यः पारिभद्रो गुग्गुलुस्तिन्तिडी तथेति ।
विहितानामलाभे अनिषिद्धा एव ग्राह्यानतु निषिद्धाः
मार्गमुक्तं ॥ नरसिंह पुराणे ॥
अष्टाङ्गुलेनमानेन तत् प्रमाणमिहोच्यते ॥
प्रादेशमात्रमथवातेन दन्तान् विशोधयेत् ॥ विष्णुः ॥
द्वादशांगुलकं विप्रेकाष्ठ माहुर्मनीषिणः ॥
क्षत्रविट्शूद्रजातीनांनवषट्चतुरङ्गुलं ॥
कराटकक्षीरवृक्षोत्थद्वादशाङ्गुलमव्रणं ॥
कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलं कूर्च्चाग्रंत्वच पूर्व्वकं ॥
दन्तधावनं चाग्रेनैव कर्तव्यं सत्वचंदन्तकाष्ठंस्यात् ।
तदग्रेण प्रधावयेत् इति वचनात् ॥
परिजप्यच मन्त्रेणेत्युक्तत्वात् ॥
आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजा पशुवसूनिच ॥
ब्रह्मप्रज्ञाञ्चमेधाञ्च तन्नोदेहि वनस्पते ॥
इत्यनेन वा प्रणवेन काष्ठमभिमन्त्र्यदन्तधावनं कुर्य्यात्
प्राङ्मुखश्चोपविष्टस्तु भक्षयेद्वाग्यतोनरः ॥
प्रक्षाल्य शुचौदेशेच दन्तधावन मुत्सृजेत् ॥
प्रक्षाल्य भक्षयेत् पूर्व्वं प्रक्षाल्यैव च संत्यजेत् ।
अमां वर्ज्जयित्वा दन्तधावनं सदा कार्य्य मिति ॥
स्मृत्यन्तरे ॥ अमावास्या मृतेप्रेते भक्षयेद्दन्तधावनं ॥
अमावास्यायां नाश्नीयाद्दन्तकाष्ठं कथंचन ॥

॥नरसिंहपुराणे ॥ अलाभेदन्तकाष्ठस्य प्रतिषिद्धे तथादिने ।
अपांद्वादश गण्डूषैर्मुखशुद्धिर्भविष्यति ॥
॥ निषिद्धदिनान्याह ॥ श्राद्धादिवासरादौ भस्मना
दन्तान् जिह्वांच संशोध्य द्वादश गण्डूषान् कुर्य्यादित्यर्थः ॥
लोष्ठादिनातु न शोधयेत् ॥ तथाच योगीयाज्ञवल्क्यः ॥
इष्टकालोष्ठपाषाणैर्नखै रङ्गुलिभिस्तथा ॥
कृत्वाचमध्यमाङ्गुष्ठे वर्ज्जयेद्दन्तधावनं ॥ इति ॥
यमसंहितायां॥ मध्यान्हे स्नानवेलायां यो भक्तेद्दन्तधावनं ॥
निराशास्तस्य गच्छन्ति देवताःपितृभिःसह ॥
उदिते पद्मिनीनाथे न कुर्य्याद्दन्तधावनमिति ॥
एवंदन्तधावनं विधायद्वादशभि र्गण्डूषैर्मुखं शोधयेत् ।
द्वादशगण्डूषैरद्भिः संशोधयेन्मुखं ॥ इति वचनात् ॥
अथाचमनविधिः ॥ तत्र वृद्धपराशरः ॥
कृत्वातुशौचं प्रक्षाल्य पादौहस्तौच मृज्जलैः ॥
निवद्धशिखकच्छस्तुद्विज आचमनं चरेदिति ॥
निवद्धशिखेतिगृहस्थादिविषयं निवद्धकच्छेतितु यत्यादि-
सर्व्वसाधारणं ॥ ततोभस्मस्नानं कृत्वा वासुदेवंचिन्तयेत् ॥
उक्तश्च शिवगीतायां ॥ महात्मा मृन्मयं भस्म गृहीत्वा
ह्यग्निहोत्रजं ॥
नधूल्यतुसर्व्वाङ्ग मग्निरित्यादि मन्त्रतः ॥
चिन्तयेत् स्वात्मनीशानंपरं ज्योतिः स्वरूपिणम् ॥
एषपाशुपतो योगः पशुपाशविमुक्तये ॥
अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म

स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्व्वं ह वा इदं भस्म म
एतानियजूंषि भस्मानीत्यभिमन्त्र्य प्रणवेन सर्व्वाङ्गेषु विनि
क्षिपेत् ॥ इति ॥ अत्र आरुणिक श्रुतिः त्रिसन्ध्यादौस्ना
माचरेत् ॥ इति ॥

व्यासः ॥ प्रातर्म्मध्यान्हयोः स्नानं वानप्रस्थगृहस्थयोः ॥
भिक्षूणां तत् त्रिषवणं एकन्तु ब्रह्मचारिणः ।
सर्व्वेवापि सकृत्कुर्य्युरशक्तौ वोदकं विना ॥
अशिरस्कं भवेत्स्नानमशक्तौ कर्म्मणां सदा ।
आर्द्रेणवाससावापि पाणिनावापि मार्ज्जनं ॥
चतस्रोघटिकाः प्रातररुणोदय उच्यते ॥
यतीनां स्नानकालोयं गङ्गाम्भःसदृशःस्मृतः ॥
उषस्युषसियत् स्नानं आग्नेयं भस्मनास्नानमव गाह्यश्चवा
आपोहिष्ठेति ब्राह्मश्च वायव्यं रजसा गवां ॥
यत्तुसातपवर्षैहि तत् स्नानंदिव्यमुच्यते ॥
स्नानान्येतानि चापत्सु व्याधितस्योदकं विना ॥
स्नानेऽप्यशक्तः स्नायीत नित्यमुष्णेन वारिणा ।
तैलाभ्यङ्गेनदुष्येतप्राणिनां वातरोगिणां ॥
॥ अत्रिः ॥ स्नानंत्रिषवणं प्रोक्तं वहूदकवनस्थयोः ।
हंसेतुसकृदेवंस्यात् परहंसे न विद्यते ॥ इति ॥
अथाचमनेदक्षः ॥
प्रक्षाल्य पादौ हस्तौचत्रिः पिवेदम्वु वीक्षितं ।
संमृज्याङ्गुष्ठमूलेनद्विः प्रमृज्याततोमुखं ॥
संहतांगुलिभिः पूर्व्वमास्यमेवमुपस्पृशेत् ।

अंगुष्ठेन प्रदेशिन्याघ्राणं पश्चादनन्तरं ॥
अंगुष्ठानामिकाभ्याञ्च चक्षुःश्रोत्रे पुनः पुनः ।
कनिष्ठांगुष्ठयोर्नाभिं हृदयन्तु तलेनवै ॥
सर्व्वाभिस्तुशिरः पश्चात् बाहूचाग्रेण संस्पृशेत् ॥
॥ शंखः ॥ प्रक्षाल्यपादौ हस्तौच संस्थाप्य चरणौ भुवि ।
सन्निवद्धकच्छशिखः स्मृत्वाचैवेष्टदेवतां ॥
दक्षिणन्तुकरं कृत्वा गोकर्णाकृतिवत् पुनः ॥
माषवज्जलमात्रास्तु संगृह्य त्रिः पिवेदपः ॥
ब्रह्मतीर्थेन दैवेन पैत्रेणैव कदाचन ।
पीत्वातुहस्तौ प्रक्षाल्य पादावोष्ठावलोमकौ ।
वारिणाङ्गुष्ठमूलेनद्भिः प्रमृज्यात्ततो मुखं ॥
तिसृभिर्मध्यमाभिर्वा सर्व्वाभिर्वारिणा स्पृशेत् ॥
इत्यादि पूर्व्वोक्तं ॥ याज्ञवल्क्यः संहितायां माह ॥
अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिः फेनवुद्बुदैः ।
त्रिः प्राश्यापोद्विरुन्मृज्यखान्यद्भिः समुस्पृशेत् ॥
इतिखानि नासादीन्द्रियरन्ध्राणि ।
आतुराणाश्चोष्णोदकेनाप्याचमनं ॥ तथा चापस्तम्बः ॥
उष्णानैवोष्णपायिनामिति ॥ योगेश्वरः ॥
अन्तर्जानुशुचिदेश उपविष्ट उदङ्मुखः ।
प्रागूवाब्राह्मेन तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥
कनिष्ठादेशिन्यङ्गुष्ठमूलान्यग्रं करस्यच ।
प्रजापति पितृ ब्रह्म देवतीर्थान्यनुक्रमात् ॥
॥ गौतमः ॥ त्रिश्चतुर्व्वा अप आचामेत् ॥ इति

चतुर्ग्रहणं पितृकर्म्मापेक्षयेति केचित् ॥
त्रिर्ग्रहणेन तुष्टयभावापेक्षयेत्यन्ये ।
भरद्वाजः ॥ संहताङ्गुलिभिस्तोयं गृहीत्वा दक्षिणेनतु ॥
मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठेतु शेषेणाचमनंचरेदिति ॥
एतदाचमनं दक्षेणाऽप्युक्तं ॥ इति। संहतांगुलिभिः
मध्यमाभिस्तिसृभिःतलेन पाणितलेन । पैठीनसिः ।
अग्निरङ्गुष्ठस्तस्मात्तेनैव सर्व्वाणि स्थानानि स्पृशेदिति
तस्माद्विकल्पः ॥ केचित्तु केशव नारायणादि
चतुर्विंशति नामभि राचमनक्रियां कुर्व्वन्ति ॥
तच्चप्रसिद्धमेव । अन्येप्याचमनप्रकारा वहवः
सन्तिग्रन्थविस्तर भयान्नात्र प्रस्तूयन्ते ।
स्नानान्तरभावि आचमने विशेषमाह ॥ दक्षः ॥
स्नात्वाचामेत् सदा विप्रः पादौ कृत्वा जलेस्थले ॥
उभयो रप्यसौ शुद्धस्ततःक्षमो भवेदिति ॥
अत्रापिविशेषः ॥ प्रातर्वामंजले कृत्वा मध्यान्हे दक्षिणंज
कृत्वाचामेत् सदा विप्रो जलस्थोजल एवहि ॥१॥
विप्रइति क्षत्रियादेरप्यु पलक्षणं ॥
जलस्थो जल एव इत्यनेनस्थलस्थः स्थलएवाचामेदि
सूचितं ॥ एवञ्च जलाचमनं स्थलाचमनं जलस्थलाच
चेति त्रिविधाचमनं ॥ भविष्ये ॥ सोपानत्को जलस्थ
मुक्तकेशोऽपिवाद्विजः। उष्णीषीवापि नाचामे द्वस्त्रेणाच्छ
वा शिरः इति ॥ नगच्छन्न शयानश्चन चलन्नापरान् स्पृ
न हसन्नैवसंजल्पन्नात्मना नैव वीक्षयेत् ॥२॥

केशान्नीवीमधः कायं स्पृशेन्न धरणीमपि ।
यदिस्पृशति चैतानि भूयः प्रक्षालयेत् करम् ॥४॥
गोभिलः ॥ जानुभ्यामूर्द्ध्माचम्य जलेतिष्ठन् नदुष्यति ॥
पैठीनसिः ॥ अन्तरुदक आचान्तोऽन्तरेवशुद्धो भवति ।
बहिरुदक आचान्तो बहिरेव शुद्धः स्यात्
तस्मादन्तरैक शुद्धो भवति ॥ उष्णीषी
प्रापीत्यपिना कञ्चुकीत्यस्य संग्रहः ॥ बौधायनः ॥
पादप्रक्षालनशिष्टेन नाचामेद्द् यद्याचामेत्
भूमौस्रावयित्वाचामेदिति ॥ यमः ॥
शौचशेषं पादशेषं पीतशेषं तथैवच ।
नद्यतुल्यश्चतत्तोयं पर्य्युक्षीकरणं विना ॥३॥
तावन्नापः स्पृशेद्विप्रो यावद्वामेन नस्पृशेत् ॥
वामेहि द्वादशादित्यवरुणास्त्रिदशेश्वराः ॥५॥ इति ॥
वामस्पृष्टेन दक्षिणेनाचामेदित्यर्थः ॥
भूमिस्रावणपर्य्युक्षीकरणयोस्तु विकल्प एव ॥
तथाचमनुः सुप्त्वाक्षुत्त्वाच भुक्त्वाच निष्ठीव्योक्त्वानृतंवचः ।
पीत्वापोध्येष्यमाणस्तु आचामेत् प्रयतोपिसन् ॥६॥ इति॥
ब्रह्मपुराणे ॥ अधमस्यतु संभाषे सुप्त्वा दन्तधावने ॥
आचम्य प्रयतो भूत्वा ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
अधमस्य चण्डालादेरित्यर्थः ।
चाण्डालस्त्रीशुद्रोच्छिष्टाभिभाषणे आचामेत् ॥
मूत्रपुरीषोत्सर्गदर्शने एवं देवताभिगन्तुकामः
आचामेदिति ॥ दर्शने मूत्रपुरीषावलोकने ।

अथ द्विराचमननिमित्तानि ॥ याज्ञवल्क्यः ॥
स्नात्वापीत्वा क्षुतेसुप्ते भुक्त्वारथ्योपसर्पणे ॥
आचान्तः पुनराचामेद्वासो विपरिधायच ॥८॥ इति ॥
अत्र भुक्त्वेति मूत्रपुरीषोत्सर्गस्याप्युपलक्षणं ।
उच्छिष्टत्वाविशेषादिति वोध्यं ॥
तथाचाचमनप्रत्याम्नायाः ॥ मार्कण्डेयपुराणे ।
कुर्य्यादाचमनं स्पर्शं गोपृष्ठस्यार्कदर्शनं ॥
कुर्व्वीतालम्भनं वापि दक्षिणं श्रवणस्यच ॥९॥
यथा विभवतो ह्येतत् पूर्व्वाभावे ततः परमिति ।
आचमनं जलस्पर्शमात्रं ॥
अर्केति चन्द्रस्याप्युपलक्षणं ॥ ब्रह्माण्डपुराणे ॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानितेषां स्नानस्य यत् फलं ॥
विष्णोःपादोदकं मूर्द्ध्नादधत् सर्व्वमवाप्नुयात् ॥१०॥
स्कन्दपुराणे ॥ अयमेव परो धर्म्म स्त्विदमेव परन्तपः ॥
इदमेवपरं तीर्थं विष्णुपादाम्बुयत् पिवेत् ॥११॥
सचैवावभृथस्नातः सच गङ्गाजलप्लुतः ॥
विष्णुपादोदकं कृत्वा शंखे यः स्नाति मानवः ॥१२॥
यतिपादोदकं राजन् हन्ति पापं पुराकृतम् ॥
सप्तजन्मार्जितं सद्यः श्रद्धया शिरसा धृतं ॥१३॥
वौधायनः॥सन्ध्यासु स्वमात्मानं प्रज्ञयाच सन्धरोयः चिन्तो
वायुमभिवर्द्धयते तस्मात् ध्यानमेव सन्ध्योपासनमिति।
प्रातर्मध्यंदिने काले स्नानं विधिवदाचरेत् ॥
शौचमाचमनञ्चैव सन्ध्याध्यानमतंत्रितः ॥१४॥

उत्थायापररात्रेतु विन्मूत्रे विधिनोत्सृजेत् ॥
शौचंकृत्वातथाचम्य सदास्तोत्रादिकं जपेत् ॥ इति ॥
शयनादुत्थितो यस्तु कीर्त्तयेन् मधुसूदनं ।
कीर्त्तनात्तस्य पापानि शमनंयान्त्यशेषत; ॥ इति ॥
ततः प्राणायामविधिः ॥ वसिष्ठः ॥
प्रणवेनैव कुर्य्याच्च प्राणायामान् यतिर्मुहुः ॥
सर्व्वेषामेव पापानां संघाते समुपस्थिते ॥१६॥
अभ्यसेद्दशसाहस्रं प्रणवं शोधनं हि तत् ।
पूरकं वाममार्गेण रेचकं दक्षिणेनतु ॥१७॥
कुम्भकन्तु तयोर्हीनं मध्यमे हृदि तिष्ठति ।
निरोधाज्जायते वायुर्वायोरग्निः प्रजायते ॥१८॥
तस्मादापोभिजायन्ते ततोऽन्तः शुध्यते त्रिभिः ॥ इति
॥ मार्कण्डेय पुराणे ॥ १६ ॥
लघु र्द्वादशमात्रस्तु द्विगुणस्यतु मध्यमः ।
त्रिगुणाभिश्च मात्राभि रुत्तमोऽयमुदाहृतः ॥२०॥
इति मात्रा प्रणवोच्चारः सच्चमनस्येव ॥
तथाचवैवस्वतः । द्वादशावर्त्तनं यस्तु प्रणवस्य मनो हृदि ।
प्राणायामो यतेः प्रोक्तः प्राणानायम्य चोत्तमं ॥२१॥ इति
प्राणायाम काले ओ मित्युच्चारो मनसैव कर्त्तव्यः ॥ इति
तुर्य्यपदार्थः । एवमुक्तप्रकारेण सर्व्वमुषःकाल-
कृतं विधायारुणोदयवेलायां स्नानं कार्य्यं तत्रायं स्फुटतरः
क्रमो लिख्यते ॥
उषः काले समुत्थाय विरामूत्रेतु समुत्सृजेत् ।

शौचं कृत्वाद्भिराचम्य ततः स्तोत्रादिकं पठेत् ॥२२॥
अथ मुद्रासहितं दण्ड कमण्डलु कौपीनादिकं
गृहीत्वास्नानार्थं जलाशयं गच्छेत् ॥
॥ विश्वेश्वरपद्धतौ संप्रदाय विदः ॥
नागमुद्रात्वधो धार्य्या धेनुमुद्रातु मध्यतः ।
तृतीये दण्डभागेतु धार्य्या परशुमुद्रिका ॥ २३ ॥
तस्योपरिच सन्धार्य्या वैष्णवी शंखमुद्रिका ॥
धेनुमुद्रायां विशेषस्तत्रैवोक्तः ॥
ब्राह्मीमुद्राया मपि विशेष उक्तः ।
भागद्वयं विहायोर्द्ध्वं चतुरङ्गुलमानतः।
दण्डं कार्पाससूत्रेण वेष्टयेत् संप्रदायतः ॥२४॥ इति ॥
भागद्वयं मध्यमभागस्य भागद्वयं ।
ऊर्द्ध्वमध्यमभागस्य तृतीय भागइत्यर्थः ।
अत्र ब्रह्ममुद्रापि कर्त्तव्येति केचित् ॥
तन्न संप्रदायवाक्यविरोधात् ।
एतच्च मुद्राबन्धनं वृद्धैरतिमन्दाधिकारिणां केवलचि
दमनायैव कल्पितं श्रुति स्मृति पुराणेष्वनुपलम्भात् ॥ अ
एव माधवीये । बौधायनेन त्रिदण्डं प्रकृती-कृत्यैकदण
विशेषो दर्शितः ॥
त्रिदण्डान् अङ्गुलिस्थूलान् वैणवान् मूर्द्धसंम्मितान् ए
नवद्वित्रिचतुःसप्तान्यतमपर्व्वकान् सत्वचानव्रणान् सौम्या
समसन्नतपर्व्वकान् ॥
वेष्टितान् कृष्णगोवालरज्ज्वाच चतुरङ्गुलान् ॥

एको वा तादृशोदण्डो गोवालरहितो भवेदिति ॥
इत्थं न कुटीचकादि विषये ।
त्रिदण्डानां चतुरङ्गुल मानेन गोवालरज्वा बन्धनं धारण सौकर्य्यायैवेति बोध्यं ॥
दण्डात्मनोस्तु संयोगः सर्व्वदैव विधीयते ।
न दण्डेन विना गच्छेदिषुत्क्षेपत्रयं बुधः ॥२५॥
जलान्तरादिषु क्षिप्ते न कश्चिद्दोषभाग् भवेत् ।
शिष्यादिभि र्विनीतोऽपि नीत एवस्य आत्मना ॥२६॥
हस्तपादादिवच्छिष्य इति शिष्टा ब्रुवन्तिहीति ॥
इत्यश्च ॥ यस्य प्रसादादहमेव विष्णुर्मय्येव सर्व्वं परिकल्पितञ्च ।
इत्थं विजानामि सदात्मरुपंतस्यां घ्रिपद्मं प्रणतोस्मिनित्यं २७॥
इत्यनेन मन्त्रेण नमोवो हरिस्वामिन्निति अष्टाक्षरेण वा गुरुं नमस्कृत्य मुद्रासहितदण्डं दक्षिणहस्ते कमण्डलुं वामहस्ते वस्त्रञ्च वामस्कन्धे धृत्वा ॥
जपातिलकादिसाधनीभूतान् अक्षसूत्रमृदादिसंभारान् आदाय जलाशयं गच्छेदिति सिद्धं तदुक्तं विश्वेश्वर पद्धतौ ॥
अभिवन्द्य गुरून् ज्येष्ठान् दण्डादीन् परिगृह्यच ।
द्वाराद्वहि र्वामपादं दण्डमूलं पुरो दधत् ॥२८॥
ततो निर्गत्य विप्रादीन् दृष्ट्वा दक्षिणतो व्रजेत् ॥
ततो जलाशयं गत्वा गुरून् ज्येष्ठान् विलोक्यतु २९॥
तेषामधः प्रदेशेतु शुचौदेशे कमण्डलुं ॥

संस्थाप्य वामे वस्त्रञ्च कृत्वा विष्णुंस्मरेज्जले ॥३०॥
ततो दण्डस्य मूलेन तथाग्रेण स्पृशेज्जलं ॥
कुर्य्याज्जलस्यच दिशां देवानां वन्दनं क्रमात् ॥३१॥
ततो गुरूणां यतीनां वन्दनं कारयेत् क्रमात् ।
ततः संस्थापयेद् दण्डं मूलाग्रे जलमध्यतः ॥३२॥
तथा वा शुचिवस्त्रादौ स्थापयेत् प्रागुदङ्मुखं ॥ इति ॥
यदि वस्त्रादौ स्थाप्यतेतदा प्रागग्रमुदगग्रंवा प्रसारयेत् ॥
अथ स्नानं॥तत्रबौधायनेन यथाविधि स्नात्वा इति प्रागुक्तवा
क्याऽत्रयवेनोक्तं तद्विधिस्तुनोक्तः तत्राह स्मृत्यर्थसारे व्यासः
कटिप्रक्षालनं कृत्वा प्रणवेन मृदावहिः ॥
ततः स्नानं प्रकुर्व्वीतमंत्रवत्तु जलाशये ॥३३॥ इति ॥
अत्र प्रणवेनेति मन्त्रवदित्यनेनान्वयः ॥
प्रणवात्मकमन्त्रवदित्यर्थः ॥
मृदेति वहिरितिच कटिप्रक्षालनेनान्वेति ।
कटीतिसर्व्वेषा मूर्द्धाङ्गाना मधराङ्गानां चोपलक्षणं तेनायम
संपद्यते ॥ ततः शुचिदेशात् मृदं समानीय तीरे स्था-
यित्वा तां त्रिभागां कुर्य्यात् ॥
एकेन भागेन जलाद्वहिरेव मस्तक वाहुद्वय पृष्ठोदर कुक्षि
द्वयानांषण्णामनुक्रमेण प्रत्येकंदक्षिण पाणिना लेपनं कृत्वा
जलेनच प्रक्षालनंकुर्य्यात् ।
ततो द्वितीय भागेनकटि उरुद्वय जंघाद्वय चरणद्वयानां
पञ्चानामनुक्रमेण प्रत्येकं वामपाणिना लेपं कृत्वा
जलेनच प्रक्षालनंकुर्य्यात् ॥

ततस्तृतीयभागेन करद्वयस्य प्रक्षालनं कृत्वाचम्य स्नानार्थं
जलं प्रविशेत् । तदुक्तं मदनपारिजातसंगृहीत
वामन पुराणे ॥ मृत्तिकांतुत्रिधांकृत्वा भागेनैकेन लेपयेत् ॥
दक्षिणेनैव हस्तेन अष्टावेतान्यनुक्रमात् ।
ललाटमंशौहृत् पृष्ठमुदरञ्च सकुक्षिकं ॥३४॥
ततोद्वितीयभागेन नाभिवस्त्यूरु जंघकं ॥
वामेनतु करेणैव चरणौच यथाक्रमम् ॥३५॥
मृदस्तृतीयभागेन करौचद्वौ प्रमार्जयेत् ॥ इति ॥
विश्वेश्वर पद्धतौ मतमाह ।
तत एकेन भागेनपादशौचं समाचरेत् ॥
आचम्यान्येन भागेन कटिशौचं समाचरेत् ॥३६॥
जलांतस्तिसृभिर्मृद्भिः कटिं प्रक्षालयेत्ततः ॥
कौपीनं तिसृभि मृद्भिःपुटे प्रत्येक भेवतु ॥३७॥
गृहस्थस्यच यत् शौचं तत् कार्य्यंयतिनापिच ॥
आचम्यविधिना पश्चात् प्राणायामत्रयं चरेत् ॥३८॥
ततस्तु क्षालयेत् सम्यङ्मृज्जलाभ्यां कमण्डलुम् ॥
वामहस्तस्यपृष्ठेतु संस्थाप्य स्नानमृत्तिकां ॥३९॥
दण्डं कमण्डलुञ्चैव स्पृष्ट्वा चामेद्यथा विधिः ॥ इति ॥
वामे वस्त्रं ततो दण्डंस्थाप्यं यद्वाशुचिस्थले ।
दक्षिणोरौ स्नानमृदं संस्थाप्य विभजेत् त्रिधा ॥४०॥
चुलके जलमादाय तद्वामेन विधायच ।
प्रणवेन द्विषड्वारमभिमन्त्र्यच तेन ताः ॥४१॥
संप्रोक्ष्य प्रणवेनैव द्विषट्केनाभिमन्त्रयेत् ॥

ततः प्रथमभागात्तु गृहीत्वा स्वल्पकां मृदम् ॥४२॥
करावालिप्य सूर्य्याय प्रदर्श्यक्षालयेत् करौ ॥
पुनः किञ्चित् समादाय हस्तयोरुपलिप्यच ॥४३॥
सूर्य्याय दर्शयित्वोर्द्ध्वमुखं कक्षौ विलेपयेत् ॥
जलेनाधोमुखं कक्षौ समालिप्य जलंस्पृशेत् ॥४४॥
एवं वारत्रयं कुर्य्यात् कक्षयो रुपलेपनं ॥
द्वितीयात् किञ्चिदादायहस्तयोरुपलिप्यच ॥४५॥
सूर्य्याय दर्शयित्वातु लिपेद्भालोरजौहृदं ।
पुनश्चैव समादाय पृष्ठमारभ्य लेपयेत् ॥४६॥
जलंस्पृशेत्ततश्चैव किञ्चिदादायमृत्तिकाम् ॥
हृदयमालभ्यनाभेरालिप्य सलिलं स्पृशेत् ॥ ४७ ॥
पुनश्चैवं समादाय पृष्ठमारभ्य लेपयेत् ॥
आपादंतुजलंस्पृष्ट्वा दक्षिणेन करेणतु ॥४८॥
तृतीयभागमादाय वामेनोरू विशोधयेत् ॥
गङ्गायां सम्मुखोऽन्यत्र सूर्य्यदेवादिसम्मुखः ॥४९॥
यस्य प्रसादादित्यादिमन्त्रेण प्रणमेद्गुरुम् ॥
ततो दक्षिणभागेतु स्थित्वा वन्देत तं गुरुम् ।
ज्येष्ठानां वन्दनं कृत्वा ज्येष्ठानुक्रमतः पुनः ॥
ततस्तान् दक्षिणे कृत्वा वामहस्तेन दक्षिणं ॥
पादं स्पृष्ट्वा विशेषोऽयं नाभिदघ्नं शनैः शनैः ॥५१॥
प्रवाहाभिमुखोनद्या मन्यत्र रविसम्मुखः ॥
त्रिर्निमज्य मृदं स्कन्धे संस्थाप्य प्रागुदङ्मुखः ॥५२॥
आचम्य द्विराचम्यच प्रणवैः प्रोक्ष्यामन्त्र्यच ॥

मृत्तिकां पूर्व्ववत्ताश्च स्कन्धादादाय हस्तयोः ॥५३॥
उपलिप्याथ सूर्य्याय चक्षुषोर्वा प्रदर्शयेत् ॥
ललाटवाहुहृदयं क्रमेणैव विलेपयेत् ॥५४॥
एवं वारत्रयं कृत्वा गृहीत्वा शेषमृत्तिकां ॥
प्रणवेनाथ आलोड्य कुर्य्यात् षट्कारमञ्जनं ॥५ ॥
द्विराचम्य त्रिरायम्य प्राणान् पश्चात् यथाविधि ॥
न्यासादि कृत्वा प्रणवं जपेदष्टोत्तरंशतम् ।
अथवापि यथा शक्तिस्तथा व्रह्मानुचिन्तयेत् ॥
नाम्नातु केशवादीनां एकैकं नाम संस्मरेत् ॥५७॥
मन्त्रा द्वादश वारन्तु शिरो वदन वाहुषु ॥
हृदयेषु निषिञ्चेत्तु त्रिस्त्रिः शंखस्य मुद्रया ॥ ५८ ॥
जलेन तिलकं कृत्वा द्विराचमन पूर्व्वकं ॥
ततस्तु तर्प्पणं कृत्वा गत्वा गुरुसमीपतः ॥५९॥
कुर्य्यात् प्रणामं विधिवत् गत्वा गुरुसमीपतः ॥
ां पादोदकं सिञ्चेत् शिरआदौतु पूर्व्ववत् ॥६०॥
स्तुत्रिः पिवेदेवं विष्णोः पादोदकेनच ॥
ततः प्रक्षाल्य कौपीनं निःपीड्य परिधायच ॥६१॥
ऊरू प्रक्षाल्य मृत्तोयैर्हस्तौ प्रक्षालयेन्मृदा ॥
एकं पादं स्थले कृत्वा द्विराचम्य यथाविधि ॥६२॥
प्राणायामत्रयं कृत्वा द्विषड्वाराभिमन्त्रितैः ॥
जलैः संप्रोक्ष्य वस्त्रादीनङ्गवस्त्रेण मार्ज्जयेत् ॥६३॥
ज्येष्ठानां सन्निधौ विद्वानुपविश्यतु मार्ज्जनं ॥
कण्ठादूर्द्ध्वं यतिः कुर्य्यादितरत्र यथासुखं ॥६४॥

मुखं त्वष्टगुणेनादौ प्रादक्षिणयेन मार्ज्जयेत्‌ ॥
शिरश्चतुर्गुणेनैव मलाभे द्विगुणेनतु ॥६५॥
एवमेकगुणेनैव पादपर्य्यन्तमार्ज्जनं ॥
कौपीनं द्विगुणं कृत्वा सूत्रं द्विगुणमेवच ॥६६॥
स्वाङ्ग मावृत्य यत्नेन कौपीनं धारयेद्यतिः ॥
कौपीनं सहितंडोरमादौ वध्नीत वाग्यतः ॥६७॥
कौपीनमङ्गवस्त्रञ्च जलेचाप्लुत्य निक्षिपेत्‌ ॥
वामे वस्त्रं ततः कृत्वा विसृष्टे चाङ्गवस्त्रके ॥६८॥
कौपीने मृज्जले क्षिप्त्वा पादौ प्रक्षालयेन्मृदा ॥
तत आचम्य विधिवत्‌ प्राणायामान्‌ षडाचरेत्‌ ॥६९॥
अज्ञानकृत हिंसादि प्रत्यवाय निवृत्तये ॥ इति ॥
मतान्तरेण स्मृत्युक्त स्नान विधिमाह ॥७०॥
॥ वामनपुराणे ॥ मृत्तिकांतुत्रिधा कृत्वा भागेनैकेन लेपये
दक्षिणेनैव हस्तेन अष्टावेतान्यनुक्रमात्‌ ॥७१॥
इत्यादि पूर्व्वोक्त वचनेन दर्शितम्‌ ।
तूष्णीं मृदा स्नानं कृत्वाचम्य जलं विशेत्‌ ॥
तूष्णीं अमंत्रकमित्यर्थः ॥

अत्र अष्टावेतानीत्यष्टसंख्या अंशद्वयस्य कुक्षिद्वयस्य प्रत्ये मङ्गत्वाविवक्षया वस्तुतस्तु अंशद्वयंमिलित्वैकमेवा तथैव कुक्षिद्वय मप्येक मेवाङ्ग मिति षट्‌ संख्यैर्व ङ्गानामेवं करावप्यवराङ्गेऽपीति द्वादशैव स्थानानि मृत्ति स्नानार्थं भवन्ति ॥ इत्थञ्च अमन्त्रक मस्तकादि द्वाद ङ्गेषु प्रत्येकं मृल्लेपं जलेनक्षालनञ्च तीरे विधाय

कालौ संकीर्त्त्य स्नानार्थं जलं प्रविशेदिति ॥ वस्तुतस्तु
त्सर्गतः सर्व्वं स्मृतीनां निरपेक्ष प्रामाण्यात् कटिप्रक्षालनं
कृत्वेति व्यास स्मृत्यनुसारात् । जलाद्बहिरेव सन् मन्त्रेण
मस्तकमारभ्य उदरान्तं मृल्लेपं कृत्वा प्रक्षाल्य । एवं
कटिमारभ्य पादान्तं मृल्लेपं कृत्वा प्रक्षाल्य ततो मृज्जला-
यां करौ प्रक्षाल्याचम्य ततो जलं प्रविश्य प्रणवेनस्नायात्
द्यथा प्रवाहाभिमुखः सूर्य्याभिमुखो वात्रिर्निमज्याङ्गानि
शोध्य पुनस्त्रिर्निमज्याचम्य प्रणवेन जलमाविशेत् । प्रण-
वैव दक्षिणहस्तेन प्रदक्षिणं त्रिरावृत्य तत्र प्रणवेनैवत्रि-
र्निमज्याचम्य ॥ द्वादशप्रणवैः शिरोवाहुद्वयहृदयं अञ्जलिना
भिषिच्य ॥ द्वादश प्रणवैर्जलाभ्यन्तरे निरुद्ध प्राणोऽ
मर्षणं विधाय पुनस्त्रिर्निमज्याचम्य वहिर्यायात् ॥ इति
रुण स्नान विधिः ॥ तत्र कपिलः ॥

तः स्नानेत्वशक्तश्चेत् कापिलंस्नानमाचरेत् ।
त्राप्यशक्तियुक्तस्य मन्त्रस्नानं विधीयते ॥१॥
भेरधः प्रविश्याप्सु कटिंप्रक्षाल्य मृज्जलैः ।
लार्द्रकपटेनाङ्गशोधनं कापिलंस्मृतम् ॥२॥
यंप्रातरसामर्थ्ये सायमेवाथवा पुनः ॥
रेवृत्यच कौपीनं मन्त्रस्नानं विधीयते ॥३॥ इति ॥
भेरधस्तस्यायमर्थः ॥

र एव मृज्जलैः कटिं प्रक्षाल्य ततो नाभेरधस्तादप्सु
विश्य जलार्द्रवस्त्रेण शोधनं कुर्य्यादित्येतत् कापिलं
नं ॥ पराशरः ॥

चक्षूरोगीशिरोरोगी कण्ठरोगी कफाधिकः ।
कण्ठस्नानं प्रकुर्व्वीत शिरः स्नान फलं लभेत् ॥
मुख्यस्नानेऽपि मृज्जलाभ्यां सर्व्वाङ्ग शोधनस्य वोक्तत्वादिति ॥
कौपीनमिति वस्त्रमात्रोपलक्षणं ॥
मन्त्रः ॥ आपो हिष्ठेत्यादि ॐ नमो नारायणाय इत्यष्टाक्षरो वा वेदितव्यः ॥ तदुक्तं पुराणधर्म्मेषु ॥
सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान् कल्पशतत्रयं ॥
गङ्गादि सर्व्व तीर्थेषु स्नातो भवति पुत्रक ॥५॥ इति ॥
उष्णोदक स्नान मिति स्मृत्यन्तरे ॥
स्नानेप्यशक्तः स्नायात्तु नित्यमुष्णेन वारिणा ।
तैलाभ्यङ्गो न दुष्येत व्रणिनां वातरोगिणां ॥६॥
इति स्नाने पीति । शीतोदक स्नानेप्यशक्त इत्यर्थः ॥
भस्म स्नानादीनि गौणानि ।
ग्रन्थान्तरेभ्योऽवगन्तव्यानि इति गौणस्नान विधिः ॥
अथ नैमित्तिक स्नानानि ॥ याज्ञवल्क्यः ॥
उदक्या शुचिभिःस्नायात् संस्पृष्टस्तैरुपस्पृशेत् ।
अब्लिङ्गानि जपेच्चैव गायत्रीं मनसा सकृदिति ॥
उदक्यारजस्वलया ॥
अशुचय श्चाण्डाल पतितादयस्तैः संस्पृष्टः सचैलं स्नाया
तैरुदक्यादिभिः संस्पृष्टः स्नानमात्रं कुर्य्यात् ॥
तैरपि संस्पृष्टस्तु आचमनमात्रं कुर्य्यात् । इत्यर्थः ॥
तैरिति बहुवचनस्योपस्पृशेदित्यस्यच ग्रहणादियं

प्रल्लिङ्गानि आपोहिष्ठादि मन्त्रवाक्यानि ॥
ायत्री प्रसिद्धा ॥ यतेस्तु एतत् स्थाने प्रणवस्य जपः ॥
र्पराशरः ॥ दुःस्वप्ने मैथुनेवान्ते विरक्तेक्षुरकर्म्मणि ॥
चेतियूपश्मशानास्थनां स्पर्शने स्नानमाचरेत् ॥८॥
इति विरक्ते विरेचणो ॥ स्मृत्यन्तरेचेति ॥
चेतिजं चितिकाष्ठंच यूपं चाण्डाल मेवच ।
पृष्ट्वादेवलकंचैव सवासा जलमाविशेत् ॥९॥
ार्च्चन परो विप्रो वित्तार्थं वत्सरत्रयं ।
॥ वै देवलकोनाम्न हव्यकव्येषु वर्ज्जितः ॥ इति ॥१०॥
स्तुच्छायांश्वपाकस्य ब्राह्मणोह्यधिरोहति ॥
त्र स्नानं प्रकुर्व्वीत घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥११॥
ास वायस मार्जार खरोष्ट्रंचश्वशूकरान् ।
॥ामेध्यानिच संस्पृश्य सचैलो जलमाविशेत् ॥१२॥ इति॥
ोजन कालेऽनुष्ठान कालेचमार्जार स्पर्शे स्नानं वेदितव्यं ॥
॥न्यथातुशुचिरेवसः ॥ मार्जारश्चैव दर्वीच मारुतश्च सदा
चिः ॥ इति स्मृत्यन्तरादिति ॥ विज्ञानेश्वरः ॥ मार्ज्जार
ारण्यक एव ग्राह्यः । ग्राम्यमार्जारस्तु शुचिरेवेत्यन्ये
वादिस्पर्शे विशेषः ॥ तत्रैवहि ॥
ाभेरूर्द्ध करौ मुक्त्वा शुना यद्युपहन्यते ॥
त्र स्नानमधस्ताच्चेत् प्रक्षाल्याचम्य शुध्यतीति ॥१३॥
ुनेति खरादेरप्युपलक्षणं । तेषां तुल्यत्व स्मरणात्॥देवलः॥
ानुषास्थिवसा विष्ठा मार्त्तवं मूत्ररेतसी ॥
ज्जानं शोणितं वापि परस्य यदि संस्पृशेत् ॥१४॥

स्नात्वा प्रमृज्यलेपादीनाचम्य स शुचि र्भवेत् ।
तान्येव स्वानि संस्पृश्य पूतःस्यात् परिमार्ज्जनात् ॥१७॥
अस्थि स्पर्शे विशेषमाह ॥ मनुः ॥
नारं स्पृष्ट्वास्थिसस्नेहं सवासा जलमाविशेत् ॥
आचम्यैवतु निःस्नेहंगां स्पृष्ट्वा वीक्ष्यवा रविम् ॥१६॥
नारमित्यनदनीयमांसस्य गवादेरप्युपलक्षणं ॥
विस्तारो मिताक्षरादिभ्योऽवगन्तव्यः ।
एवं चन्द्र सूर्य्य ग्रहणेऽपि स्नानं तदुक्तं षट्त्रिंशन्मते
सर्व्वेषा मेववर्णानां सूतके राहु दर्शने ॥
स्नात्वा कर्म्माणि कुर्व्वीत सिन्नमन्नं विवर्ज्जयेत् ॥
इति स्नानश्चाद्यन्तयोः कार्य्यं । तथाच स्मृत्यन्तरे ॥
ग्रसमाने भवेत् स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते ॥
इति मध्ये होमः सुरार्च्चन मित्यपि पाठः ॥१८॥
मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं बिधीयते ॥ इति ॥
वृद्धगौतमः ॥ सूर्य्यग्रहेतु नाश्नीयात् पूर्व्वं यामचतुष्टं
चन्द्रग्रहेचयामां स्त्रीन् वालवृद्धातुरै र्विना ॥१९॥
एवं रवि संक्रान्तिष्वपि स्नानमुपवासोऽपितद् विशेषो हेम
माधवीयादिषु द्रष्टव्यः ॥ इति नैमित्तिक स्नानादिनि
अयञ्च स्नाननियमः ॥
त्रिः स्नानं त्रिषवणं पात्र नियमाःस्युः त्रिदण्डिनां ।
न तत् परमहंसानां युक्ताना मात्मदर्शिनां ॥२०॥
इति युक्तानां सिद्धयोगिनां शुद्धात्मसाक्षात्कारवताम्
मेधातिथिः ॥ स्नानं त्रिषवणं प्रोक्तं कुटीचकवहूदयो

सस्य सकृदेवस्यात् परहंसस्य तन्नहीति ॥२१॥
ऽषवणं त्रिकालं तन्नहीति तत् प्रातरादिनिमित्तस्नान-
नेयमः परमहंसस्य नास्तीत्यर्थः ॥
अत्र विदुषः परमहंसस्यैव स्नानादिनियमाभावः ॥

॥ श्रीभगवद्गीतायाम् ॥

वतस्य कृते नार्थो नाकृते नेह कश्चन ।
चास्य सर्व्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥३२॥
विदिषोस्तु हंसवत् सकृत् स्नानमेव ।
न्यथात्र सन्न्यस्य श्रवणंकुर्य्यात् ॥
दिने दिनेतु वेदान्त श्रवणात् भक्ति संयुतात् ।
गुरुशुश्रूषयोपेतात् कृच्छ्राशीतिफलंलभेदित्यादिश्रुतिस्मृतिभि
र्विहित वेदान्त श्रवणादावग्निहोत्रवदधिकारोनस्यात् ॥
स्नातस्य एव विहित कर्म्मणि अधिकारादिति ॥
वेश्वेश्वर पद्धतावुक्तः स्नान प्रकार स्त्वतिक्लिष्टः
श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणेषु नोपलभ्यते ॥
अत्यन्तैतिह्याप्त वचन विरुद्धश्च
तथाप्यतिमन्दाधिकारिणां केवलं देहदमनायैव वृद्धकल्पित
इत्यवधेयम् ॥ एवमुक्तविधिनास्नात्वा ॥
बहिरागत्य शुष्कवाससाङ्गप्रोञ्छनं कृत्वा कौपीनादिकं
धृत्वा प्रणवावयवैरकारोकारमकारै मृदाभस्मना बाशिरो-
ललाट हृदयेषु तिलकं कृत्वा । उदये विधिवत् सन्ध्या
मुपास्येत्यादि प्रागुक्त बौधायनवाक्यपठित
सन्ध्योपास्ति सूर्य्योपस्थान तर्पणानि कुर्य्यात् ॥

तत्रकुटीचकादेःशिखा यज्ञोपवीतादेः सद्भावाद्वात्रौच सन्
पासनं सूर्य्यार्घदानं जपात्मक मित्रस्य चर्षणात् पाद्या
स्त्रिभि र्मन्त्रैः सूर्य्योपस्थानञ्च वौधायनेन कराठरवेणोक्तं
भवत्येव ॥ तर्पणाञ्च भूरादि व्याहृतिभिः कर्त्तव्यमि
स्मृत्यर्थ सारादिभि र्व्याख्यातं । तदपि कुटीचकादे
परमहंसस्यतु प्रणावातिरिक्तमंत्राभावात् ॥
प्रणावेनैव सन्ध्योपासनसूर्य्योपस्थान तर्पणानुष्ठानं वेदि
विद्यारराय स्वामिभिः प्रणावमीमांसायां परमहंसानां प्र
एव मन्त्रत्वेनोपास्य इति व्यवस्थापितम् ॥१॥
विश्वेश्वर पद्धतावपि एव मेवोक्तं तद् यथा ॥
अथोर्द्ध पुराड्रं तर्जन्या कुर्य्यात् स्थानत्रये यतिः ॥
प्रथमं धारयेन्मूर्ध्नि प्रणावस्याद्य मात्रया ॥१॥
द्वितीयया ललाटेतु हृदयेच तृतीयया ॥
प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिन्यासपूर्व्वकं ॥२॥
प्रणावार्थानुसन्धानं पञ्चीकरण पूर्व्वकं ।
सन्ध्यान्तु विधिवत् कुर्य्यात् किञ्चित् कालं समाहितः॥
अष्टोत्तरशतं वापि सहस्रं वाष्टसंयुतं ॥
प्रणावन्तु जपेत् पश्चात् प्राणायामत्रयञ्चरेदिति ॥४॥
अथ स्नानानन्तरं । ॐ नमो मूर्ध्नि ॐ नमो ललाटे
नमो हृदये ॥ इति तिलक प्रकारः । ऋष्यादि प्रणावस्
न्यासोऽपितदङ्गभूतहृदादिन्यास एव प्रणावार्थः ।
ततोन्यासं विधायाप्सु पद्ममष्टदलं लिखेत् ।
संचिन्त्य सगुणं विष्णुं तत्र पंचोपचारतः ॥५॥

संपूज्य तर्पयेत्तत्र तारेणाष्टोत्तरंशतं ।
ततो दक्षिणहस्तस्थतोयं द्वादशवारतः ॥६॥
अभिमन्त्र्यशिरःप्रोक्ष्य तथान्यदभिमंत्रितं ।
जलं पिबेदथाचम्य दोरं कौपीनंच प्रक्षालयेत् मृदा ॥७॥
अङ्गवस्त्रञ्च घटिकां तथा कृत्वा यथाविधि ॥
वामहस्तस्य पृष्ठेतु संस्थाप्याचमनं चरेत् ॥८॥
आर्द्रमुद्रां ततो बद्ध्वा दण्डं मूलेतु तर्पयेत् ॥
अधो दण्डस्य मूलेतु प्रणवेनैव तर्पयेत् ॥९॥
षड्वारं तथा अग्रेतु तर्पयित्वा समुत्थितः ॥
अन्येतुत्रिस्त्रिवारेण दण्डाग्रैः पितॄणां तथा ॥१०॥
तत उत्थाय दण्डस्य मूलाग्राभ्यां स्पृशेज्जलं ॥
जलादौगुरुवृद्धानां वन्दनंच यथाक्रमं ॥११॥
कृत्वाभिषेकं देवस्य कृत्वा यायान् मठंप्रति ॥
देवं संस्थाप्य विधिवत् गुर्वादीनभिवन्दयेत् ॥१२॥
शोषणायाङ्गवस्त्रादि प्रसार्य्यच शुचिस्थले ॥
प्रागग्रमुदगग्रंवा दण्डं नभसिधारयेत् ॥ इति ॥१३॥

ततः पादौ प्रक्षाल्य द्विराचम्य शुचौदेशे विष्णुपूजा प्रणवजप श्रवणादि कुर्य्यात् ॥ तद्यथा संप्रदायविदः

गुरूपदिष्टमार्गेणान्यासं ध्यानं तथा चरेत् ॥
गन्धपुष्पाद्युपचारान् कृत्वा सुस्थित आसने ॥१०॥
जपमालां गृहीत्वातु प्रणवार्थमनुस्मरन् ॥
जपेद्द्वादशसाहस्रं प्रणवस्य प्रयत्नतः ।
सहस्रं श्रवणार्थीतु योगाभ्यासी शतं जपेत् ॥

निर्व्विकल्पसमाधिस्तु न जपेत् किञ्चिदद्वयात् ॥१६॥
नारदवचनं । भिक्षाटनं जपोध्यानं स्नानं शौचं सुरार्चनं
कर्त्तव्यानि षडेतानि यतीनां नृपदण्डवत् ॥१७॥
सुरार्च्चनमित्यनेन विष्णोः शिवस्यचार्च्चन मुच्यते ॥
तयोर्ज्ञानमोक्षप्रदातृत्वात् ॥ तथाच शौनकः ॥
आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धृतिमिच्छेद्धुताशनात् ।
ज्ञानं महेश्वरादिच्छेत् मोक्षमिच्छेज्जनार्द्दनात् ॥१४॥
प्रणम्यदण्डवद्भूमौ नमस्कारेण योऽर्च्चयेत् ।
स यांगतिमवाप्नोति नसाक्रतुशतै रपि ॥१५॥
॥ कात्यायनः॥त्रिकालमेककालम्वा पूजयेत् पुरुषोत्तमम्
॥ व्यासः ॥ अन्यैरानीतकुसुमै रर्च्चयेत् जगदीश्वरम्॥
शूद्रानीतैः क्रयक्रीतैर्नार्च्चयेद्भक्तिमान् यतिः ॥
पक्कञ्च तुलसीपत्रं पुष्पंपर्य्युषितञ्च यत् ॥
आनीय तत् प्रयत्नेन पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥
भावपुष्पैर्यजेद्योगी वाह्यैर्वा श्रद्धया शिवम् ॥१८॥
तदर्थपुष्पहिंसायां न भवेद्धिंसकः क्वचित् ॥
विष्णोःपादोदकं जुष्टं नैवेद्यस्यच भक्षणं ॥१६॥
निर्माल्यं शिरसाधार्य्यं महापातकनाशनं ॥
यद्दिवाग्र्यमलोपः स्यात् जपादिषु कथञ्चन ॥२०॥
व्याहरेद्वैष्णवं मन्त्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययं ॥
कृष्णालयसमीपस्थान् कृष्णादर्शनलालसान् ॥२१॥
चाण्डालान् पतितान् व्रात्यान् स्पृष्ट्वान स्नानमाचरेत् ॥
॥ पद्मपुराणे ॥ यः पूजयेद्धरिं चक्रे शालग्रामसमुद्भवे ॥

ाजसूयसहस्रेण तेनेष्टिं प्रतिवासरं ॥२२॥
महत्काष्ठस्थितोवन्हि र्मथितेन प्रकाशते ।
था तथा हरि र्व्यापी शालग्रामे प्रकाशते ॥२३॥
वेनातीर्थै र्विना दानै र्विना यज्ञै र्विना मखैः ॥
ुक्तिं यातिनरो वश्यं शालिग्रामशिलार्चनात् ॥२४॥
ीकटेऽपि मृतोयाति वैकुण्ठभुवनं नरः ॥
ालग्रामसमीपेतु क्रोशमात्रं समन्ततः ॥२५॥
ायुपुराणे शौचाचारलक्षणमाह ॥ षोडशाध्याये
थ उर्द्धं प्रवक्ष्यामि शौचाचारस्य लक्षणम् ॥
नुष्ठाय शुद्धात्मा प्रेत्यस्वर्गेहि चाप्नुयात् ॥१॥
दकार्थीतु शौचानां मुनीना मुत्तमं पदम् ॥
स्तुतेष्व प्रमत्तःस्यात् समुंनि र्नावसीदिति ॥२॥
ानावमानौ द्वावेतौ तावेवाहु र्विषामृते ।
वमानं विषन्तत्र मानन्त्वमृतमुच्यते ॥३॥
स्तुतेष्वप्रमत्तः स्यात् समुनिर्न्नावसीदति ॥
रोः प्रियहितेयुक्तः सतुसंवत्सरंवसेत् ॥४॥
नेयमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषुच सदा भवेत् ।
ाप्यानुज्ञान्ततश्चैव ज्ञानागमनमुत्तमम् ॥
प्रविरोधेन धर्म्मस्य विचरेत् पृथिवीमिमाम् ॥५॥
क्षुः पूतं व्रजेन्मार्गं वस्त्रपूतं जलं पिवेत् ॥
ात्यपूतां वदेद्वाणीमिति धर्म्मानुशासनं ॥६॥
प्रातिथ्यं श्राद्धयज्ञेषुन गच्छेद्‌ योगवित् क्वचित् ।
वं ह्यहिंसकोयोगी भवेदिति विचारणा ॥७॥

वन्हौ विधूमेव्यङ्गारे सर्व्वस्मिन् भुक्तवर्ज्जिते ।
विचरेन्मत्तिमान् योगी नतु तद्येव नित्यशः ॥८॥
यथैवमवमन्यन्ते यथा परिभवन्तिच ॥
युक्तस्तथाचरेद्भैक्षं सतां धर्म्ममदूषयन् ॥९॥

अथयतीनां सन्ध्यावन्दनानुष्ठानोपासनादिकर्त्तव्य माह तद्यथा ॥ सूर्य्य मण्डलांतर्वर्त्ति परब्रह्मैवतदनुसन्धानञ्च श्रीमद्भगवदाचार्य्योक्तेन पञ्ची कृत पञ्चमहा भूतानि तत् कार्य्यंचेत्यादि पञ्चीकरण वाक्येन कर्त्तव्यं ॥ ... समाधिः ॥ ततः प्रणवद्देवं ध्यात्वा जपः कार्य्यः । ... च सन्ध्योपासनं परमहंसानां सन्ध्याद्यनुष्ठानसमये ... पञ्च गोबाल निर्म्मित पवित्र धारण मपि यतिना हस्ते विधेयं ॥ धृत्वा जलपवित्रंचाप्य त्वसूत्रं करद्वये तद्वत् पवि... गोवालैः कृते दुष्कृतनाशने ॥

॥ इति वौधायन वचनात् ॥ मदनपारिजाते कौशिकोऽ...

॥ गवांवालपवित्रेण धार्य्यमाणेन नित्यशः ॥
नस्पृशन्तीह पापानि श्रीश्च गात्रेषु तिष्ठति ॥१॥
गवांवालपवित्रेण सन्ध्योपास्तिं करोतियः ॥
पञ्चाग्नयो हुतास्तेन यावज्जीवं न संशयः ॥ इति ॥२॥

अथ यतीनां परमहंसानां प्रणवमय सन्ध्योपास्ति प्रयोग बुद्धि सौकर्य्याय स्पष्टतरो लिख्यते ॥

तत्र यद्यपिन देशादिनियमः । तथाच स्मृतिवाक्यानि ।
विनोदकन्तुया सन्ध्या कायक्लेशविवर्त्तिता ।
सन्धिनी सर्व्व भूतानां सासन्ध्याह्यकदण्डिनां ॥

प्रणम्य यथा सुखं विहरेदिति परमहंसस्यानुष्ठानम् । तीर्थानामनुष्ठानविध्युक्तं ॥ परमहंसानां सन्न्यासिनां अनुष्ठानं आश्रम भेदेन यदुक्तं तदाह स्मृत्यन्तरे ॥ प्राङ्मुखउदङ्मुखो वा उपविश्य । अपवित्रः पवित्रो वा शुचिरिति ॥ अपसर्पन्तु ये भूता ॥

उपक्रामं सर्व्वेषां ॥ आरभे ॥

ओं अस्त्राय फडिति भूतोत्सारणं ॥ भूमौदक्षिण हस्तं धृत्वा॥पृथ्वीत्वया धृतालोकाः इतिमन्त्रेण भूमिं संप्रार्थ्य ॥ ओं कूर्म्मासनाय नमः॥७॥ विमलासनाय॥कमलासनाय॥ अनन्तासनायनमः॥ओं आधार शक्तयेनमः पृथिव्यै नमः॥ ओं वास्तु पुरुषाय नमः।इतिनत्वा। स्वासनस्य चतुष्कोणेषु। आग्नेयादिक्रमेण । ओं गं गणपतये नमः । ओं दूं दुर्गायै नमः ॥ ओं सं सरस्वत्यै नमः ॥ ओं क्षं क्षेत्रपालाय नमः॥ इतिनत्वा ॥ तथैव क्रमेण ओं गुरवे नमः ॥

ओं परम गुरवे।परमेष्ठि गुरवेनमः ॥ ओं परात्पर गुरवेनमः। इतिनत्वा स्वपुरतः परमात्मानं दिव्यं सिंहासनस्थितं । इतिनत्वा ओं परमात्मनेनमः। प्रणवेनकरशुद्धिं विधाय ॥ ओं तत् सत् परमेश्वर प्रीतये प्रणवेनसावयवेन प्रातः सन्ध्योपासनमहं करिष्ये इति संकल्प्य ॥ ओं नमो भगवते वासुदेवाय नमः ॥ अथ भगवदाचार्य्योक्त पञ्चीकरण वाक्येन प्रणवार्थानुसन्धानं । ओं पञ्चीकृत पञ्चमहा भूतानि तत् कार्य्यञ्च सर्व्वं विराडित्युच्यते ॥ एतत् स्थूल शरीरमात्मनः श्रोत्रादिभिः करणैरर्थोपलब्धिर्जागरितं एत

दुभयाभिमानी आत्मा विश्वः । अत्राध्यात्मं विश्वः ॥ अधिभूतं विराट् अधिदैवं विष्णुः ॥
एवं अध्यात्मं जागरितं । अधिभूतं सत्त्वगुणः । अधिदैवं पालनं ॥ एतत्सर्व्वं मकारः ॥ अपञ्चीकृत महाभूतानि तत्कार्य्यञ्च सप्तदशकं लिङ्गभौतिकं हिरण्यग इत्युच्यते॥ एतत् सूक्ष्म शरीरमात्मानं श्रोत्रादिषु करणे संहृतेषु जागरित संस्कारजःप्रत्ययः ॥ सविषयः स्वप्नः एतदुभयाभिमानी आत्मा तैजसः ॥ अत्राध्यात्मं तैजसः अधिभूतं हिरण्यगर्भः। अधिदैवं ब्रह्मा॥ एवं अध्यात्म स्वप्न अधिभूतं रजोगुणः । अधिदैवं सृष्टिः । एतत्सर्व्वं मुकारः शरीरद्वयकारण मात्माऽज्ञानं साभास मव्याकृत मित्युच्यते तच्चसन्न सन्नापि सदसत् न भिन्नं ना भिन्नं नापि भिन्न भिन्नमात्मनो निरवयवं नसावयवं । नापि सावयव निरवयवं किन्तु ब्रह्मात्मैक ज्ञानापनोद्यं यत् किञ्चित् । सर्व्वज्ञानोपसंहारे बुद्धेः कारणात्मनावस्थानं सुषुप्तिः ॥ एतदुभयाभिमानी आत्मा प्राज्ञः ॥ तत्राध्यात्मं प्राज्ञः ॥ अधिभूतं अव्याकृतं। अधिदैवं रुद्रः॥ एवं अध्यात्मं सुषुप्तिः॥ अधिभूतं तमोगुणः। अधिदैवं प्रलयः॥ एतत्सर्व्वं मकारः ॥ इत्येवं रीत्या सर्व्वं जगत् अकारोकारमकरात्मकं इति किञ्चित् कालं भावयेत् ॥ अथापवादः कार्य्यः ॥ अकार उकारे उकारो मकारे मकारश्चाहं । अहञ्चात्मा साक्षी केवलस्वप्रकाश चिन्मात्रस्वरूपो नत्व ज्ञानं तत् कार्य्यञ्च । तथाच नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त सत्य स्वभावं परमानन्दाद्वयं

श्रीवासुदेवाख्यं परं ब्रह्मैवाहं ओं इति प्रणवार्थानुसन्धानं ।
इदमेव च ब्रह्मात्मैक्यचिन्तनं । अयमेव च समाधिः परम-
हंसानां। अथ प्रणवजपः । प्रणवस्य ब्रह्म ऋषिः परमात्मा
देवता देवीगायत्रीछन्दः अंबीजं उं शक्तिः मं कीलकं जपे
विनियोगः ॥ अथ प्रणवावयवै रकारोकार मकारै र्द्विरुक्तै-
रङ्गुलि हृदादिषडङ्गन्यासौ कुर्य्यात् ॥

अकारस्याग्निः ऋषिः गायत्रीछन्दो ब्रह्म देवता उकारस्य
वायुऋषिः त्रिष्टुप् छन्दो विष्णुर्देवतामकारस्य सूर्य्यऋषि
र्जगतीछन्दो महेश्वरो देवता अङ्गन्यासे विनियोगः ।

ॐ अं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ उं तर्जनीभ्यां नमः ।
ओं मं मध्यमाभ्यां नमः ॥ ओं अं अनामिकाभ्यां नमः॥
ओं उं कनिष्ठाभ्यांनमः । ओं मं करतलपृष्ठाभ्यां अस्त्राय
फट् ॥ हृदि ॐ अं हृदयायनमः । ॐ उं शिरसे स्वाहा ।
ॐ मं शिखायै वषट् । ॐ अं कवचायहुं ॥
ॐ उं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ मं अस्त्राय फट् ।
इति षडङ्गन्यासः ॥ अं नमः नाभौ । उं नमः हृदये ।
मंनमः कण्ठे । अं नमः शिरसि॥ इति व्यस्तसमस्तन्यासः

अथ प्रणव देवता ध्यानं प्रयोगपारिजाते ॥ ओं हृत्पद्म-
मध्ये पुरुषं पुराणं सर्व्वात्मकं सर्व्वनिवासभूतं ॥ध्यायामि
नित्यं परमात्मसंज्ञं चिन्मात्रमेकं प्रणवार्थ तत्त्वं ॥ १ ॥
प्रणवमीमांसायान्तु प्रणवात्मनैव ध्यान मुक्तं ।
देहेन्द्रिय मनो बुद्धि प्राणादिभ्यो विलक्षणः ॥२॥
सच्चिदानन्दसत्यात्मा य ॐकारो भजामि तं ॥

यत्सत्तातो जगत्सत्ता यच्चित्तातो जगच्चितिः ॥ ३ ॥
यत्सुखाज्जगतः सौख्यं तं ॐ कारं भजाम्यहं ।
ब्रह्म विष्णवीश देवेन्द्र सूर्य्यचन्द्र ग्रहादयः ॥ ४ ॥
यदधीनप्रकाशाःस्युः तमोंकारं भजाम्यहं ।
एवं परमार्थतः परमात्मानं दिव्य सिंहासनस्थं
ध्यात्वा ॐ लं पृथिव्यात्मने विष्णवे नमः चन्दनमर्पयामि
हं आकाशात्मने पुष्पमर्पयामि । यं वाय्वात्मने धू
मर्पयामि । रंअग्न्यात्मने दीपमर्पयामि ॐ वं अमृतात्म
नानाविध पक्वान्ननैवेद्यमर्पयामि । इतिमानसपूजांकृत्वा घ
ण्टाशब्दवत्प्रणवस्याग्रं समुच्चार्य्य सहस्रं शतमष्टाविंशति
वाजपं कुर्य्यात् ॥ अथजपनिवेदनं । अनेनामुकसंख्यके
प्रणवजपेन प्रातःसन्ध्याङ्गत्वेन ॐ तत्सत् परमेश्वरःप्रीयता
मिति देवताहस्तेजलं दद्यात् । अथ पुनःहृदयादिन्यासं
कृत्वा । अनेन प्रणवात्मक सन्ध्योपासनेन ॐ तत्सत् प
मेश्वरः प्रीयतामिति प्रातःसन्ध्याविधिः समाप्तः ॥
एवं मध्यान्हसन्ध्या सायंसन्ध्याच कर्त्तव्या ॥
सन्ध्यात्रयं प्रकर्त्तव्यं ब्राह्मणेन विजानता ॥
इति स्मरणात् ॥ अत्र समाराध्यपरं पर्य्यायप्राप्तं प्रागुक्तं
ध्यानमेव प्रधानं जपादिकन्त्वङ्गमेवेति संप्रदायविदः ॥
अत्रायं विवेकः । क्रमसुक्त्यभिलाषिणांपरमहंसानां इदमेव
सन्ध्योपासनं ॥ यज्जाग्रदाद्यवस्थासहितानां विश्वतैजस
प्राज्ञानां प्रणवावयवानाञ्च त्रयाणा मैक्येन निरन्तरं चिन्तनं
तदाह श्रुतिः॥ ओ मित्येकाक्षर मिदं सर्व्वं तस्योपव्याख्यानं

भूतं भव्यं भविष्यदिति। ओमित्यऽकारोकार मकाराः अवय वावयविनोरभेदात् ॥ इदं सर्व्वं त्रिविधं जगदित्यर्थः ॥ इहैव मुक्त्यभिलाषिणां परमहंसानां तु सर्व्वस्थूलसूक्ष्म कारणोपाधिनिरासेनसाक्षिकेवलस्वप्रकाशचिन्मात्र स्वरूपोऽहंप्रणवप्रतिपाद्यं परमानन्द स्वरूप मद्वयं ब्रह्मै वा स्मीति चिन्तनमेव सन्ध्योपासनमिति ॥

अत एव सिद्धान्तविदोमधुसूदनस्वामिनः प्रोचुः । एवमध्यात्माधिभूताधिदैवानां एकत्वात् प्रणवावयव त्रयसहितानामेतेषां विश्वादीनामैक्योपासनाय हिरण्य गर्भलोकप्राप्तिः ॥ अन्तः करण शुद्धिद्वारा क्रम मुक्तिश्च एतत्सर्व्वोपाधि निराकरणेन साक्षि केवलस्वप्रकाश चैतन्य मात्रज्ञानेन तु साक्षादेव मोक्ष इति ॥

अत एव च पञ्चीकृत पञ्चमहा भूतानीति पञ्चीकरण वाक्यप्रभृति वाक्यानिच येन सर्व्ववेदान्तसारभूतं सावयवप्रणवं व्याकुर्व्वाणाः श्री भगवच्छङ्करे परमार्थानु सन्धानाभ्यास एव सन्ध्योपासनं प्राहुः शङ्करस्वामिन स्तथैव प्रणववार्त्तिकं कुर्व्वाणाःसुरेश्वराचार्य्याअपि परम हंसानां साधन मुक्तवन्तः। तथा विश्वेश्वर पद्धतौ विष्णुरपि विनोदकं ध्यानसन्ध्या कायक्लेशविवर्ज्जिता । सन्धिनी सर्व्व भूतानां सा सन्ध्याह्येक दण्डिनां ॥ इति सर्व्व भूतानामिति कर्म्मणि षष्ठी ॥ सन्धि जीव परमात्मनो रैक्यं नयति प्रापयतीति सन्धिनी ॥ विनोदकमिति दिगादि नियमाभावस्याप्युपलक्षणं ॥ तथाच स्मृत्यन्तरे ॥

शून्यागारे गुहायांवा पर्व्वतेषु वनेषुच ॥
तत्रासीनः प्रसन्नात्मा ध्यानं विधिवदाचरेदिति ॥१॥
परं तादृश सन्ध्योपासने पद पदार्थ व्युत्पत्तिमंतःशमदमायु
पेता उत्तमाधिकारिण एव परमहंसाअधिक्रियन्ते॥ मन्दाधि
कारिणान्तु नारायणाष्टाक्षरादिवत् प्रणवस्यछन्दर्षि देव
संकीर्त्तनं हृदादिन्यासं सगुणपरदेवताध्यानञ्च कृत
जपाद्यनुष्ठानरूपैवसन्ध्या ॥ एतेषां पदपदार्थव्युत्प
भावाच्छमाद्यभावाच्च तादृशानुसन्धानाभ्यासाऽसम्भावा
अनेनैवाभिप्रायेण प्रणवमीमांसायां विद्यारण्यस्वामिभि
रप्यस्यछन्दर्षिदेवताषडङ्गन्यासादिप्रतिपादनेनजपएवोक्तः
अतिमन्दाधिकारिणां पुरस्कृत्य यतिधर्म्म समुच्चयेऽपि तैर्ज
एवोक्तः ॥ यथोक्तेन प्रकारेण नित्याद्याचार मुत्तमं । प्र
वस्यायुतं चैव नित्यमावर्त्तयेद्यतिः॥ इति नित्यादीत्यादि
नैमित्तिकाचारसंग्रहः॥तस्मादुत्त माधिकारिणामाचार्य्योक्त
ञ्चीकृत पञ्चमहाभूतानीत्यादि प्रकारेण सावयवप्रणवार्था
सन्धानाभ्यासरूपं सन्ध्योपासनं जपादिरहितं निरुद्धकमेव
विरुद्धकमेव ॥ मन्दाधिकारिणान्तु छन्दर्षि देवता षड़ङ्गन्य
सादि पूर्व्वकं जपानुष्ठानमेव सन्ध्योपासनं परे त्वत्रा
उदये विधिवत् सन्ध्यामुपास्येति बौधायनस्मरणात् मासा
ग्निहोत्रवत् सन्ध्यानामतिदेशाच्च प्रणवेनैव सूर्य्यस्यार्घ्य
दानं तदुपस्थानञ्चापि भवेदिति विशेष इदृग् सन्ध्यय
क्रियतेया सासन्ध्येति योगात् सन्ध्या शब्दः क्रियावचन इ
विज्ञानेश्वरादयः ॥ सन्धिश्चाहो रात्रयोर्दिन पूर्व्वोत्तरार्धयो

यथा यथा ग्राह्यः ॥ तेन मध्यान्ह सन्ध्यायां नाव्याप्तिः। ध्यानस्यापि मानस क्रियारूपत्वात् नाव्याप्तिः ॥ सन्धावुपास्यते या सा सन्ध्येतियोगात् सन्ध्या शब्दो देवतावचन इत्यन्ये ॥ अतएव सन्ध्योपासनमिति प्रयोगोपपत्तिः ॥ प्रातः सन्ध्योपासनानन्तरं वौधायनेन यद्यपि तर्पणमेवोक्तं तथाप्यन्तराले वेदान्तादिस्वाधायपाठ उचितः। तदुक्तं विश्वेश्वरपद्धतौ ॥ कूर्म्मपुराणे ॥ वेदान्तशतरुद्रीय प्रणवादि जपं बुधः । सत्त्व शुद्धि करं पुंसां स्वाध्यायं परिचक्षते ॥१॥ इति । अत्र वेदान्ते त्युत्तमाधिकारिविषयं ॥ शतरुद्रीयेति मध्यमाधिकारिविषयं मन्दाधिकारिणान्तु दश वा द्वादशधा प्रणव जप एव ॥ स्वाध्याय पाठ सिध्यर्थं वोध्यव्यः॥ शत रुद्रीयेति पुरुष सूक्तादेरप्युपलक्षणं। सगुणब्रह्मप्रतिपादकस्याविशिष्टत्वादिति वोध्यं ॥ अथ प्रयोगः॥ तत्र प्राग् लिखितमनुवाक्योक्त ब्रह्माञ्जलिं विधाय ॥ अथ षोडश महावाक्यम् ॥ सएत मेवपुरुषं ब्रह्मतत मपश्यदिति ऋक् ॥१॥ अहं ब्रह्मास्मि । इति यजुः ॥ २ ॥ तत्त्वमसि । इति साम ॥ ३ ॥ त्वमेवैकं विजानथ आत्मानमन्यावाचो विमुञ्चथ । इति अथर्व्व ॥ ४ ॥ इत्थं मन्त्र चतुष्टयं ॥ तद्रूपोऽहंसोऽसौ योऽसौ सोहं । ऋक् ॥१॥

ॐ स य श्चायं पुरुषे य श्चासावादित्य स एकः इति यजुः ॥२॥ ओं तत्त्वमसि । इति साम ॥ ओं प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा ब्रह्म इत्यथर्व्व ॥४॥ इति द्वितीयचतुष्टयं॥ ओं प्रज्ञानंब्रह्म ॥ इतिऋक् ॥१॥ ओं अहं ब्रह्मास्मि । इति यजुः ॥२॥ ओं

तत्त्वमसीति । साम ॥ ३ ॥ ओं अयमात्मा ब्रह्म । इति अथर्व्व ॥४॥ इति तृतीय चतुष्टयं ॥ ओं सएतमेव पुरुषं ब्रह्म तत मपश्यदिति ऋक् ॥ १ ॥ ओं एषत आत्मान्तर्याम्य मृतः । इति यजुः ॥ २ ॥ ओं खं ब्रह्म ततमपश्यत इति साम ॥ ओं एषत आत्मा ब्रह्म इत्यथर्व्व ॥४॥ इति चतुर्थ चतुष्टयं ॥ इमानि षोडश महावाक्यानि पठित्वा शक्तौ सत्यामन्यानुपनिषदर्थानधीत्यान्ते ओं इत्युक्त्वा शान्ति पाठः कर्त्तव्यः । तदाह यथा ब्रह्माञ्जलिः पठेत् ।

ओं हरिः ओं शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णु रुरुक्रमः ॥

ओं नमो ब्रह्मणेनमस्ते वायोत्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥ ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु मामवतु वक्तारं ॥

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ओं ॥१॥

ओं सहनाववतुसहनौभुनक्तु सहवीर्य्यं करवावहै तेजस्विनावधीत मस्तु माविद्विषावहै॥ ओं शान्तिःशान्तिःशान्तिः॥२॥

ओं यश्छन्दसा मृषभो विश्वरूपं श्छन्देभ्योऽध्यमृतात्सम्बभूव समिन्द्रो मेधया स्पृणोतु अमृतस्य देवधारणो भूयासं शरीरं मे विचर्षणं जिह्वा मे मधुमत्तमा कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवं ब्राह्मणः कोशोसिमेधया पिहितः श्रुतं मे गोपाय ओं शान्तिः शान्ति शान्तिः ॥३॥ ओं अहं वृक्षस्य रेरिवा कीर्तिः पृष्ठं गिरिरिव ऊर्द्ध पवित्रो वाजिनीव स्वमृत मस्मि द्रविणं सुवर्च्चसं सुमेधा अमृताक्षित इति त्रिशङ्को र्वेदानु

वचनं ॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥४॥ ओं पूर्णमदः पूर्ण मिदं पूर्णात् पूर्ण मुदुच्यते पूर्णस्यपूर्णमादाय पूर्ण मेवाव शिष्यते ॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥५

ओं आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो वल-मिन्द्रियाणि च सर्व्वाणि सर्व्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्य्यां मामा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणाम स्त्व निरा-करणं मे ऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्म्मास्ते मयि संतु ते मयि संतु ॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥६॥

ओं वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमा-विरा वीर्म्म एधि । वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहा-सीरनेनाधीते नाऽहोरात्रान् संदधाम्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तार मवत्व वतु मा मवतु वक्तारं ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥७॥

ओं भद्रं नोऽपिवातय मनः । ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः८

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येम अक्षभिर्य-जत्राः स्थिरै रङ्गैस्तुष्टुवां स स्तनु भिर्व्यसेम देव हितं यदायुः। स्वस्तिन इन्द्रो वृद्ध श्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्व वेदाः स्वस्तिन स्तार्क्ष्यो अरिष्ट नेमिः स्वस्तिनो बृहस्पति र्दधातु। ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥९॥

ओं यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्व्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै तं उ ह देव मात्म बुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥१०॥

ओं नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्या संप्रदायकर्तृभ्य इत्यादि

पूर्व्वोक्तं ॥ अथोत्तर शान्ति पाठः ॥
ओं शन्नो मित्र इत्युक्तं । ओं नमो ब्रह्मणे नमस्ते वा
त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वादिषं ऋतम वादिषं सत्यमवादि
तन्मा मावीत्तद्वक्तारं आवीत् आवीत् आवीन्मा मावीद्वक्ता
ओं शान्तिः ओं शान्तिः ॥ अन्यत्सर्व्वं पूर्ववत् पठेत्
अथ मङ्गलं ॥ ओं अशुभानि निराचष्टे तनोति शु
सन्ततिं स्मृतिमात्रेण यत् पुंसां ब्रह्मतन्मङ्गलं परं ॥ १
अतिकल्याणरूपत्वात् नित्यकल्याणसंश्रयात् ।
स्मर्तॄणां वरदत्वाच्च ब्रह्म तन्मङ्गलं शुभं ॥२॥
ओंकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा कण्ठं भित्
विनिर्जातौ तस्मान्माङ्गलिका वुभौ ॥३॥
ओं अथ ओं अथ ओं अथ । ओं परमात्मने नमः
इति विद्या तपो योनिरयोनि विष्णुरीडितः ॥ वाग् य
नार्चितो देवः प्रीयतां मे जनार्द्दनः ॥४॥ रविमण्डल मध
स्थे पुरुषे लोकसाक्षिणे । समर्पितं मया चेदं ब्रह्मणः पर
पदे ॥५॥ इति स्वाध्यायपाठनिवेदनं ॥ एतेषां षोडशत्व
चतुष्टय चतुष्काभिप्रायेण अन्यथातु पौनरुक्त्यापातः
अशक्तौतुकस्यचिदेकस्यैव चतुष्टयस्य पाठः । एवमुपदे
क्रियायामपि वोध्यं ॥ अथ स्वाध्याय पाठानन्तरं तर्पणांत
जले सगुणं विष्णुंध्यात्वा ॥ प्रणवेनाष्टोत्तर शतं का
मित्युक्तं ॥ विश्वेश्वर पद्धतौ अष्टाविंशति संख्यकं का
मित्यपि केचित् । तत्रादावाचम्य प्राणानायम्य । प्राणाया
कुर्य्यात् ॥ यद्यपि प्राणायामं पूर्व्वोक्तं । तथापि विशेषमा

तद्यथा शौनकःपरिशिष्टे॥अथ प्राणायामान् व्याख्यास्यामो यावत्यो रेचकेमात्रास्तद् द्विगुणाः पूरके विद्यात् कुम्भके चातुर्गुण्यं॥अष्टमात्रारेचकः। षोडशमात्रः पूरको द्वात्रिंशन्मात्रः कुम्भकः॥इतिशिशु प्राणायामः॥द्वादशमात्रोरेचकः। चतुर्विंशति मात्रः पूरकः। अष्टचत्वारिंशन्मात्रः कुम्भकः॥ इति मध्यमः॥ षोडशमात्रोरेचकः। द्वात्रिंशन्मात्रः पूरकः। चतुःषष्ठिमात्रः कुम्भक इति प्राणायामः॥ अन्तरकालोमात्रा प्रायश्चित्तञ्च तत् सर्व्वेषु दुष्कृतेषु॥ इति॥ रेचकं दक्षिणेनैव पूरकं वामनासया। अङ्गुष्ठाङ्गुलिभिश्चैव प्राणायामं समाचरेत्॥१ प्राणायामैकनिष्ठस्य न किञ्चिदपि दुर्लभम्। अङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु गृहीत्वैकाग्रमानसः॥२॥प्राणायामं प्रकुर्व्वीत वानप्रस्थे तु वा पुनः। अङ्गुष्ठमध्यमानामा त्रिभिर्नासाविधारणम्॥३॥ कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन ब्रह्मचारी स उच्यते॥ मार्कण्डेयपुराणे॥ लघुर्द्वादशमात्रस्तु द्विगुणः सतुमध्यमः॥४॥त्रिगुणाभिश्चमात्राभिरुत्तरीयउदाहृतः॥५॥ शक्त्यपेक्षया लघ्वादिव्यवस्था॥ वैवस्वतः॥ द्वादशावर्त्तनं यत्तु प्रणवस्य मनोहृदि। प्राणायामो यतेः प्रोक्तः प्राणानायम्य चोमितिह॥कूर्म्मपुराणे॥ प्राणस्तु देहजो वायुरायामस्तु निरोधनम्। मात्राद्वादशकोमन्दश्चतुर्विंशतिमात्रकः॥७॥मध्यमःप्राणसंरोधः षट्त्रिंशन्मात्रकोत्तमः॥ सगर्भमाहुःसंजय मगर्भं विजयं बुधः॥८॥रेचकःपूरकश्चैव प्राणायामोऽथकुम्भकः। रेचकोऽजस्रनिःश्वासात् पूरकःसन्निरोधकः साम्येन संस्थिति र्यासा कुम्भकः परिगीयते॥९॥ ॥वसिष्ठः॥प्रणवेनैव कुर्य्याच्च प्राणायामान्नयतिर्मुहुः।

सर्व्वेषामेवपापानां संघाते समुपस्थिते ॥१॥
पूरकः पूरणंवायोः कुम्भकः स्थापनं हृदि ।
वहिर्निःसारणं तस्य रेचकः परिकीर्त्तितः ॥२॥
अभ्यसेद्दशसाहस्त्रं प्रणवंशोधनं हि तत् ।
रेचकं वाममार्गेण पूरकं दक्षिणे तथा ॥३॥
कुम्भकन्तु तयो र्हीनं मध्यमं हृदितिष्ठति ।
निरोधाज्जायते वायु र्वायोरग्निर्हिजायते ॥४॥
ताभ्यामापोभिजायेत अन्तः शुद्धं तत स्त्रिभिः ।
चतुर्विंशतिमावृत्ति र्षट् त्रिंशत्द्वादशाथ वा ॥५॥
प्रणवस्य स्मरेत् सस्यात् प्राणायामो यतोऽनिलः ॥ भि
लक्षणप्राणायामविधानन्तु यथाधिकारंद्रष्टव्यं ॥ परमहं
स्य तु प्राणायामः ॥ प्रणवयुक्तएवस्यान्नान्यः ततः प्रण
भ्यासविक्षेपमानादात्मस्थिति प्रिय यतिः परमहंसाख्यं
स्तं नार्चितुमर्हति तस्य दोषः स्यादिति शेषः ॥ वेदो
स्तस्यमूलं प्रणवो यस्य सोऽस्ति सः वृक्षमूली यतिः सस्य
त्यक्तवेद परिग्रहः इत्यादिस्मृतेः। नन्वतऊर्द्धममन्त्र व
चरेदित्यादिश्रुतिवचन विरुद्धमेतत् स्मृतिवचनं न वि
सर्व्वेषु वेदेष्वारण्य मावर्त्तयेदित्यादि वेद वचनेन परमहंस
पि आरण्यवृत्तेर्विहितत्वा दारण्यीभूतत्वात् प्रणवस्य पर
हंसस्य प्रणवावृत्तेर्वेदेन विहित्वात् ॥ मनुः ॥ आत्मज्ञा
शमेचस्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान्।वेदाभ्यासः प्रणवाभ्यास
अत ऊर्द्धममन्त्रवदाचरेदिति श्रुति वचनन्तु प्रणवव्यतिरि
प्रतिषेधार्थ इत्यविरोधः ॥

दह्यन्तेध्मायमानानां धातूनांहि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥१॥
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान् धारणानीश्वरान् गुणान् ॥२॥

॥ अथ जपविधिः । योगियाज्ञवल्क्यः ॥

उपांशुजपयोगस्तु तस्माच्छतगुणो भवेत् ।
सहस्रोमानसः प्रोक्तो यस्माद् ध्यानसमाहितः ॥१॥
नापाश्रितो न जल्पंश्च न प्रावृतशिरास्तथा ।
॥कूर्मपुराणे॥ जपकाले न भाषेत नान्यान् संप्रेषयेद्बुधः ॥१॥
न कम्पयेच्छिरोग्रीवान् दन्तान्नच प्रकाशयेत् ॥
॥व्यासः॥ अङ्गुल्यग्रेषु यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलङ्घने ॥२॥
असंख्यातश्च यज्जप्तं तज्जप्तं निष्फलं भवेत् ॥
अनामिकायां मध्ये च मध्याच्चाधः क्रमेण तु ।३॥
तर्ज्जन्यादि जपान्तेच अक्षमाला करेस्थिता ॥
मध्यमादिद्वयं वर्ज्यं जपकाले विपश्चिता ॥४॥
एतन्मेरुं विजातीयाद्दूषितं ब्रह्मणास्वयम् ॥ शैवपुराणे ॥
अङ्गुल्या जपसङ्ख्यानमेकमेव मुदाहृतम् ॥
रिष्टयाष्टगुणं विद्यात् पुत्रजीवैर्दशाधिकम्॥१॥
शतंस्यात् शङ्खमणिभिः प्रवालैस्तु सहस्रकम् ।
स्फटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्ष मुच्यते ॥२॥
पद्माक्षैर्दशलक्षन्तु सौवर्णैः कोटि रुच्यते ॥
कुशग्रन्थिक रुद्राक्षैरनन्तगुणितं भवेत् ॥३॥
वाराहपुराणे अक्षमालायाः परिमाण मुक्तं ॥

उत्तमा तुशतं पूर्णं पञ्चाशद्भिस्तु मध्यमा ।
कणीसीपञ्चविंशत्या परिमाणं विधीयते ॥१॥ बौधायनः।
वृत्तमूलिको वेदः सन्न्यासी वेदोवृत्तः प्रणवस्तस
मूलं प्रणवात्मको वेदः प्रणवं ध्यायन् ॥ २ ॥ प्रणवे
ब्रह्मभूयाय कल्पत इति होवाच प्रजापतिरिति वैवस्वतः
पादमाक्रम्य पादेनजपन्न एवतु कारयेत् शिरः प्रावृत
वस्त्रेणाध्यानं नैव प्रकाश्यते॥३॥ध्यापयेदक्षरश्रेणयां वर्णाद्
पदात् पदं। शब्दार्थ चिन्तनाभ्यासात् स उक्तो मानसोजपः॥
पद्मपुराणे ॥ परमहंस व्रतिनः प्रणवाभ्यासशीलिनः ।
यद्यनुत्पन्नविज्ञानो विरक्तः संयतेन्द्रियः ॥१॥
यावज्जीवं जपेन्मन्त्रं प्रणवं ब्रह्मणोवपुः ।
ह्रस्वोदहति पापानि दीर्घो मोक्षप्रदायकः ॥२
ब्रह्मणः प्रणवंकुर्य्यादन्तेच वेदविद्द्विजः ।
इतिचोङ्कारादावपि प्रणवं कुर्य्यात् इत्यर्थः ।
स्रर्व्वत्यनों कृतं पूर्व्वं पुरस्ताच्च विशीर्य्यते । इति वचना
प्रणवमुच्चार्य्य सुमुखश्चैकदन्तश्चेत्यादिना विघ्नराजं स्मृत
शन्नोमित्र इत्यादि शान्तिं पठित्वा वेदान्तग्रन्थस्य संस्थ
स्थले पठेत् ॥ तथाचोक्तं संप्रदायविद्भिः ॥
तथोपदिष्टं गुरुणा सहशान्तिं पठेत्ततः ।
सम्यक् मन्त्रं समादाय गुरुवक्त्रं विलोकयन् ॥१॥
स्थित्वा ततोमिति प्रोक्ते स्वयमप्योमिति ब्रुवन् ।
मन्दस्वरेण संस्थास्थं वाक्यमेकं पठेत्ततः ॥२॥
गुरुणा तस्य संक्षिप्य तात्पर्य्ये वर्णितेसति ।

यतेः सन्ध्या पञ्चीकरणमहावाक्यं चाग्रे वक्ष्यमाणम्॥
ततोद्वादश दण्डप्रणामान् कुर्य्यात् तथा चाहुः ॥
वेदान्तशास्त्रस्यारम्भे प्रणामाः द्वादशस्मृताः ।
गुरोर्यथावदन्तेतु षट्प्रणामाः प्रकीर्त्तिताः ॥१॥
ततोयथाशक्ति पठित्वान्ते पुनः प्रणवं कृत्वा ।
तामेव शान्तिं पठित्वा नमस्कारान् विधाय विरमेत् ॥ ॥
किं तीर्थैः किं प्रदानैर्वा किंयज्ञैः किमुपासितैः ।
अहन्यहनि तं देवं तन्मयत्वेन शृणुताम्॥३॥
अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं यदि पश्यति ।
ततः शास्त्राण्यधीयन्ते श्रूयन्तेग्रन्थविस्तराः ॥४॥
श्रवणान् मननाच्चैव निदिध्यासनतस्तथा ।
आराध्यं सर्व्वदा ब्रह्म पुरुषेण हितैषिणा ॥इति॥५
अमनने दोषमाह । तैत्तिरीय श्रुतिः । तत्त्वैव भयं विदुषो ऽमन्वानस्येति ॥
॥ स्कान्दे ॥ वैष्णवञ्चरितं पुण्यमायुरारोग्यपुष्टिदम् ।
पठतः शृण्वतोवापि सर्व्वपापं व्यपोहति॥६॥
गीतासु ॥ तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥७॥
॥ व्याससूत्रं ॥ आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॥ श्रवणादिक्रिया तावत् कर्त्तव्येह प्रयत्नतः। यावद्यथोक्त विज्ञानमाविर्भवति भास्करं॥ इति सुरेश्वर वचनेभ्यो वेदान्त श्रवणादि क्रिया-मनननिदिध्यासनानां ब्रह्मसाक्षात्कारोदयपर्य्यन्तमावृत्तिः। काठकवचनाच्च ॥ उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान् निबोधत ।

श्रवणायापि वहुभिर्योनलभ्यः शृण्वन्तोपि वहवो यन्नविद्युः
आश्चर्य्योवक्ता कुशलोऽस्य लब्धा आश्चर्य्यो ज्ञाता
कुशलोऽनुशिष्टः ॥ इति ॥ अधिकारिणा क्रियमाणान्यस
ति प्रतिवन्धे इहजन्मन्येव ब्रह्मसाक्षात्कारं जनयन्ति
सति तु प्रतिवन्धे तत् क्षये जन्मान्तरे जनयन्ति॥ तथा
व्याससूत्रं ॥ ऐहिकामप्रस्तुतप्रतिवन्धे तद्दर्शनात् ।
इति प्रतिवन्धकञ्चकामकर्म्मणी तथाच व्यासः॥
काम एव मनुष्याणां पिधानं ब्रह्मवोधने ।
तस्मात् कामं त्यजेद्धीरो ज्ञानमाप्नोति मोक्षदम् ॥१॥
ज्ञानमुत्पद्यतेपुंसांक्षयात् पापस्य कर्म्मणः ।
यथादर्शतलप्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनीति ॥२॥
एवं अग्निपुराणेसप्तसप्तत्यधिकत्रिंशतमोऽध्याये ॥
अग्निरुवाच ॥ ब्रह्मज्ञानं प्रवक्ष्यामि संसाराज्ञानमुक्तये ।
अयमात्मापरं ब्रह्म अहमस्मीति मुच्यते ॥१॥
देह आत्मा न भवति दृश्यत्वाच्च घटादिवत् ।
प्रसुप्तेमरणेदेहादात्मान्यो जायते ध्रुवम् ॥२
देहः सचेद्व्यवहरेदविकार्य्यादिसन्निभः ।
चक्षुरादीनीन्द्रियाणि नात्मा वै करणात्वतः ॥३॥
मनोधीरपि आत्मा न दीपवत् करणात्वतः ।
प्राणोऽप्यात्मा न भवति सुषुप्तेचित्प्रभावतः ॥४॥
जाग्रत्स्वप्नेच चैतन्यं सङ्कीर्णत्वान्न वुध्यते ।
विज्ञानरहितः प्राणः सुषुप्ते ज्ञायते यतः ॥५॥
अतो नात्मेन्द्रियं तस्मादिन्द्रियादिकमात्मनः ।

अहंकारोऽपिनैवात्मा देहवद्व्यभिचारतः ॥६॥
उक्तेभ्यो व्यतिरिक्तोऽयमात्मा सर्व्वहृदि स्थितः ।
सर्व्वद्रष्टाच भोक्ताच नक्तमुज्ज्वलदीपवत् ॥७॥
समाध्यारम्भकालेच एवं सञ्चिन्तयेन्मुनिः ।
यतो ब्रह्मण आकाशं खाद्वायुर्वायुतोऽनलः ॥८॥
अग्नेरापो जलात् पृथ्वी ततः सूक्ष्मं शरीरकम् ॥
स्थूलं शरीरं ध्यात्वास्माल्लयं ब्रह्मणि चिन्तयेत् ॥९॥
अपञ्चीकृतभूतेभ्य आसन् पञ्चीकृतान्यतः ।
पञ्चीकृतानि भूतानि तत् कार्य्यञ्च विराट्स्मृतः ॥१०॥
एतत् स्थूलं शरीरं हि आत्मनोऽज्ञानकल्पितम् ।
इन्द्रियैरर्थविज्ञानं धीरा जागरितं विदुः ॥११॥
विश्वस्तदभिमानीस्यात् त्रयमेतदकारकम् ।
अपञ्चीकृतभूतानि तत्कार्य्यं लिङ्गमुच्यते ॥१२॥
संयुक्तं सप्तदशभि र्हिरण्यगर्भसंज्ञितम् ।
शरीरमात्मनः सूक्ष्मंलिङ्गमित्यभिधीयते ॥१३॥
जाग्रत्संस्कारजः स्वप्नप्रत्ययो विषयात्मकः ।
आत्मा तदुपमानीस्यात् तैजसोह्यप्रपञ्चतः ॥१४॥
स्थूलसूक्ष्मशरीराख्यद्वयस्यैकं हिकारणम् ।
आत्माज्ञानञ्च साभासं तदव्याहृतमुच्यते ॥१५॥
न सन्नासन्नसदसदेतत् सावयवं न तत् ।
निर्गतावयवं नेति नाभिन्नं भिन्नमेव च ॥१६॥
भिन्नाभिन्नं ह्यनिर्व्वाच्यं वन्धसंसारकारकम् ।
एकं तद् ब्रह्म विज्ञानात् प्राप्तं नैव च कर्म्मभिः ॥१७॥

सर्व्वात्मना हीन्द्रियाणां संहारः करणात्मनाम् ।
बुद्धेः स्थानं सुषुप्तं स्यात् तद्द्वयस्याभिमानवान् ॥१८॥
प्राज्ञ आत्मात्रयश्चैतन्मकारः प्रणवः स्मृतः ।
अकारश्च उकारोऽसौ मकारो ह्ययमेव च ॥१६॥
अहं साक्षी च चिन्मात्रो जाग्रत्स्वप्नादिकस्य च ।
नाज्ञानञ्चैव तत्कार्य्यं संसारादिकबन्धनम् ॥२०॥
नित्यशुद्धबुद्धमुक्तसत्यमानन्दमद्वयम् ।
ब्रह्माहमस्म्यहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विमुक्त ओम् ॥२१॥
अहं ब्रह्म परं ज्ञानं समाधि र्बन्धघातकः ।
चिरमानन्दकं ब्रह्म सत्यज्ञानमनन्तकम् ॥२२॥
अयमात्मा परं ब्रह्म तद्ब्रह्मत्वमसीति च ॥
गुरुणा बोधितो जीवो ह्यहं ब्रह्मास्मि बाह्यतः ॥२३॥
योऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहमखण्ड ॐ ॥
मुच्यतेऽसारसंसाराद्ब्रह्मज्ञो ब्रह्म तद्भवेत् ॥२४॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः पृथिव्यवनलोज्झितम् ।
अहं ब्रह्मपरं ज्योतिः वाय्वाकाशविवर्ज्जितम् ॥२५॥
अहंब्रह्मपरं ज्योतिरादिकार्य्यविवर्ज्जितम् ।
अहं ब्रह्मपरं ज्योतिः विराडात्माविवर्ज्जितम् ॥२६॥
अहं ब्रह्मपरं ज्योति र्जाग्रत्स्थानविवर्ज्जितम् ।
अहं ब्रह्मपरं ज्योति र्विश्वभावविवर्ज्जितम् ॥२७॥
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्ज्जितम् ।
जाग्रत् स्वप्न सुषुप्त्यादि मुक्तं ब्रह्म तुरीयकं ॥ २८ ॥
नित्य शुद्ध बुद्धं मुक्तं सत्यमानन्द मद्वयं ।

ब्रह्माहमस्म्यहं ब्रह्म स विज्ञामं विमुक्त ओम् ॥२६
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः समाधिर्म्मोक्षदः परः ।
यज्ञैश्चदेवानाप्नोति वैराजं तपसांपदम् ॥३०
ब्रह्मणः कर्म्मसन्न्यासाद्वैराग्यात् प्रकृतौलयम् ।
ज्ञानात् प्राप्नोति कैवल्यं पञ्चैतागतयःस्मृताः ॥३१
प्रीतितापविषादादे र्विनिवृत्ति र्विरक्तता ।
सन्न्यासः कर्म्मणांत्यागः कृतानामकृतैःसह ॥३२
अव्यक्तादौ विशेषान्ते विकारोऽस्मिन् निवर्त्तते ।
विष्णुर्ब्रह्मनाचदेवेषु वेदान्तेषुच गीयते ॥३३
शब्द ब्रह्मागममयं परंब्रह्म विवेकजम् ।
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये ब्रह्मशब्दपरश्चयत् ॥३४
इत्याग्नेये महापुराणे समाधिर्नामाष्टकं संपूर्णम् ॥ इति ॥
अथ पञ्चीकरणप्रकारं मतान्तरेणाह ॥

तत्रपदार्थो द्विविधः दृक्दृश्यश्च । तत्रात्मैव दृक् तद् व्यतिरिक्तः प्रपञ्चोदृश्यः । सत्रिविधः । अव्याकृतमूर्त्तामूर्त्तभेदात् । तत्र साभासाविद्या मूर्त्तामूर्त्तप्रपञ्चवीजरूपा अव्याकृतः प्रपञ्चःसाच स्वयंजड़ा स्वप्रकाशचिदाभासेनोज्ज्वलिता पूर्व्व पूर्व्व संस्कारजीव कर्म्म प्रयुक्ता सतीशब्द स्पर्शरूपरस गन्धात्मकानि आकाशवायुतेजोजलपृथिव्याख्यानि । सूक्ष्मप्रपञ्चो महाभूतानि क्रमेण जनयति । तानिच सत्त्व रजस्तमो गुणात्मका विद्या कार्य्यत्वात् सत्त्वरजस्तमो गुणात्मकानि तेभ्यः प्रत्येकं सत्त्वप्राधान्येन पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि श्रोत्रत्वक् चक्षूरसनघ्राणाख्यानि शब्दस्पर्श रूपरसगन्ध-

प्रकाशकानि जायन्ते ॥ रजः प्राधान्येनच पञ्चकर्मेन्द्रियाणि
वाक् पाणिपादपायूपस्थाख्यानि वचनादानगमनोत्सर्गा
नन्दरूपक्रियाजनकानि जायन्ते ॥ मनो बुद्धिभेदभिन्नमन्तः
करणञ्च तेभ्यो मिलितेभ्यः सत्त्वप्राधान्येन संकल्प विकल्पा
ध्यवसायादिवृत्तिसाधनं जायते ॥ रजःप्राधान्येनच प्राणादि
पञ्चकश्वासोच्छ्वासादिक्रियासाधनं जायते ॥ सप्तदश
मिदं लिङ्गशरीरमित्युच्यते अयममूर्त्तः प्रपञ्चः । इमानि
सूक्ष्म पञ्चमहाभूतानि भोगायतनस्थूल शरीरम्भोग्यविष
मन्तराच भोगजननाय नालामिति स्थूलभवनाय पञ्ची
कृतानि भवन्ति ॥
पञ्चीकरणं चेत्थं । द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धाप्रथमंपुनः
स्वस्वेतर द्वितीयांशैर्योजनीयञ्च पञ्चकमिति ॥ एवं पञ्ची
कृतेभ्यः पञ्चमहाभूतेभ्यो जरायुजाण्डज स्वेदजोद्भिज्जभेदं
चतुर्विधस्थुलशरीरं भोगायतनं भोग्यंसर्व्वं ब्रह्माण्डं चतुर्दश
भुवनानिच जायन्ते ॥ तत्रापि सत्त्वप्राधान्येन चन्द्रसूर्य्या
दयो व्यासमन्वादयश्च । रजः प्राधान्येन मनुष्यादयः
तमःप्राधान्येनच स्थावरान्ध कारादयश्च जायन्ते॥सर्व्वोऽप्य
प्रत्यक्षयोग्यत्वान् मूर्त्तः स्थूल इतिचोच्यते ॥ ह्कूपदार्थ
द्विविधः । जीवेश्वर भेदात् । तत्रजीवः स्थूलाद्युपाधि भेदे
त्रिविधः । तत्रस्थूल प्रपञ्चाभिमानी जाग्रदवस्थावान् जीवः
जीवोविशो विराट् इति चोच्यते । तत्र स्थूलाऽभिमानीश्वरः
तत् समष्ट्य भिमानी विराट् ॥ सूक्ष्म प्रपञ्चाभिमानीस्व
वस्थावान्जीवस्तैजसो हिरण्यगर्भ इत्युच्यते सूक्ष्मव्यष्टचभि

मानीतैजसः। तत् समष्ट्यभिमानी हिरण्यगर्भः। अव्याकृत व्यष्टिप्रपञ्चाभिमानी सुषुप्त्यवस्थावान् जीवःप्राज्ञ इत्युच्यते। अव्याकृत समष्ट्युपहितस्तदनाभिभूतस्वरूपोऽवस्थात्रयरहितः परमेश्वरः सच सर्व्वज्ञः सर्व्वशक्तिमान् सर्व्वनियन्ता जगत्कारणं प्रणववाच्यं तं प्रणवेन समुपास्य तमेव चाहं ब्रह्मास्मीति साक्षात् कृतजीवः कृत कृत्यः संसारान्मुक्तो भवेदिति। पञ्चीकरणप्रकारः॥

अत्रवेदान्त महावाक्यविचारः तत्रापि तत्त्वमसीत्युपदेशवाक्यविचारेण सर्व्वस्यापि विचारितत्वात्तदेव प्रथमं विचार्य्यते॥ तत्र त्रीणिपदानि तत् त्वंअसीति तत्र तत् पदार्थो ब्रह्मैव त्वं पदार्थो जीवः असीतिपदेन तत्वं पदयोः पदार्थ द्वयाभेदपर्य्यवसितं सामानाधिकरण्ये द्योत्यते॥अन्यथाइत्यादि गौरश्ववन्निरा कांक्षत्वमेव कदाचित् स्यात्॥ननुतत्त्वं पदार्थयोः संसार्य्यसंसारिणो रत्यन्त विरुद्धयोः कथमभेद इति चेदुच्यते॥ तत् पदार्थो द्विविधः। वाच्यो लक्ष्यश्चेति। तत्राविद्या सवलं सर्व्वज्ञत्व जगत्कारणत्वादिविशिष्टं चैतन्यं वाच्यार्थः शुद्धचैतन्यं लक्ष्यार्थः एवं त्वं पदार्थोऽपि द्विविधः॥ वाच्यो लक्ष्यश्चेति। तत्र बुद्धीन्द्रियादि सवलं ज्ञातृत्व कर्तृत्व भोक्तृत्वादि संसार विशिष्टं चैतन्यं वाच्यार्थः शुद्धचैतन्यं लक्ष्यार्थः। तत्र वाच्यार्थयो र्भेद संभवेऽपि अखण्डवाक्यतात्पर्य्यवशाद्भाग लक्षणायोपस्थापित शुद्धचैतन्ययोरैक्यमखण्डार्थ पर्य्यवसित तत्त्वमसीति वाक्येन प्रतिपाद्यते यथा सोऽयं देवदत्त इत्यत्र शब्दार्थ तद्देशतत्काल विशिष्ट

देवदत्त व्यक्ते रयं शब्दार्थै तद्देशैतत्काल विशिष्ट देवद
व्यक्ते श्चैक्या संभवे भागलक्षणया स शब्दायं शब्दो
स्थापित शुद्ध देवदत्त व्यक्तेरैक्य मखण्डं वाक्यतात्पर
वशात् सोऽयं देवदत्त इति वाक्येन प्रतिपाद्यते तद्वत् न
नील मुत्पलमित्यत्र भागलक्षणां विनैव नीलत्वोत्पलत
धर्म्मिणो रभेद वाक्यार्थवत् प्रकृतेऽपिस्यादिति कथं भा
लक्षणेति वाच्यं । तत्रनीलोत्पलत्वयो र्विरोधाभावेनैक
संभवेन लक्षणां विनैवोपपत्तेः । अतएव नीलत्वा
ऐक्यासंभवेन तत्रगौणं सामानाधिकरण्यं व्यवह्रियते प्र
प्रकृतेतु संसारित्वा संसारित्वयोः सर्व्वथा विरूद्धत्वेन
सारि भागं परित्यज्य शुद्धचैतन्यै भागलक्षणाया आवश्य
कत्वात् । तस्मात् सोऽयं देवदत्त इत्यत्र सोऽयं पदयोर्भा
लक्षणया शुद्ध देवदत्त व्यक्तिवत् प्रकृतेऽपितत्त्वं पदयोर्भाग
लक्षणयाखण्डवाक्यतात्पर्य्यवशात् शुद्धं चैतन्यं वा
क्यार्थतया सिध्यति ॥ तदेव च चैतन्यं स्वगत सजाती
बिजातीय भेद रहित मित्य खण्ड ब्रह्माखण्डत्वेनाभिम
घटादिषु च स्वगत स्वसजातीय स्व विजातीय भेद
त्रयं प्रसिद्धं तद्राहित्यं ब्रह्मणीति समन्वयः । अत्र स्वग
स्वजातीयबिजातियत्रय संभेदप्रतियोगित्वेनाभिमतं स्व
समान सत्ताकमेव ग्राह्यं ॥ तेन व्यावहारिक स्वगतादिभेद
त्रयमादाय पारमार्थिक सद्रूपे ब्रह्मणि नासंभवः । न
तत्त्वं पदयोर्भाग लक्षणया आवश्यकत्वे पदार्थ वाक्यार्थयो
रपि शुद्ध चैतन्य रूपयोस्तुल्यत्वात् कृतमुभयपदार्थज्ञान

सापेक्षवाक्यार्थ ज्ञानेनेति वाच्यं शुद्धस्यापि तत् पदार्थस्यान्यं प्रति परोक्षत्वाराद्दशत्वं पदार्थस्यच साद्वयत्वाच्च ज्ञानस्या द्वितीय ब्रह्मात्म गोचर मलाज्ञान निवर्तकत्वा सम्भवात्॥ज्ञानाज्ञानयोः समान विषयकत्वेनैवनाश्य नाशकभावाभ्युपगमेन वाक्यार्थ ज्ञानस्या द्वितीय ब्रह्मात्मगोचरस्याहं ब्रह्मास्मी त्याकारस्य तथा विध मूलाज्ञान निवर्त्तकत्वसंभवेन तस्यादरात् ॥ तदुक्तं ॥

तादात्म्य मत्र वाक्यार्थ स्तयोरेव पदार्थयोः ।
प्रत्यग् वोधो य आभाति सोद्वयानन्द लक्षणः ॥१॥
अद्वयानन्दरूपश्च प्रत्यक् वोधैक लक्षणम् ।
इत्थमन्योन्य तादात्म्य प्रतिपत्तिर्यदा भवेत् ॥२
अब्रह्मत्वं त्वमर्थस्य व्यावर्त्तेत तदैवहि ।
तदर्थस्यच पारोक्ष्यं यद्येवं किं ततः शृणु ३॥
पूर्णानन्दैकरूपेण प्रत्यक् वोधोऽवतिष्ठते ।
तत्वमस्यादिवाक्यञ्च तादात्म्यप्रतिपादने ॥४
लक्ष्यौतत्त्वं पदार्थौ द्वावुपादाय प्रवर्त्तते ।
हित्वाद्वौ सवलौ वाच्यौ वाक्यं वाक्यार्थवोधने ॥५
यथा प्रवर्ततेऽस्माभि स्तथा व्याख्यातमादरात् ।
आलम्वनतयाभातियोऽस्मत् प्रत्यय शब्दयोः ॥६
अन्तः करण संभिन्न वोधः सत्वं पदाभिदः ।
मायोपाधि जगद् योनि सर्व्वज्ञत्वादि लक्षणः ॥७
परोक्षसवलः सत्यं शुद्धार्थ स्तत् पदाभिधः ।
प्रत्यक् परोक्षतैकस्य सद्वितीयत्व पूर्णता ॥८

विरूध्यते यतस्तस्माल्लक्षणा संप्रवर्त्तते ।
मानान्तरविरोधेतु मुख्यार्थस्यापरिग्रहः ॥९॥
मुख्यार्थेनाविना भूते प्रतीतिर्लक्षणोच्यते ।
तत्त्वमस्यादिवाक्येषु लक्षणा भागलक्षणा ॥१०॥

इत्यनयैव दिशा अहं ब्रह्मास्मीत्यादि सकल महावाक्ये
ऽपि वर्णनीयइत्युपदेशः शेषः ॥ अलमिति विस्तरेण ।
अथ यतीनां नमस्कारविधिः बह्वृच परिशिष्टे ॥
यो भवेत् पूर्व्वसन्न्यासी तुल्यो वै धर्म्मतो यदि ।
तस्मै प्रणामः कर्त्तव्यो नेतराय कदाचनेति ॥१॥
अस्यार्थः धर्म्मत इति धर्म्मश्चात्म विषयक श्रवण म
नादिरेव । सन्न्यासानन्तरं तस्यैवानुष्ठेयत्वात् ॥ नेत
सन्न्यास पूर्व्वत्वेपि श्रवणादि धर्म्मरहिताय सन्न्यासि
प्रणामो न कर्त्तव्य इत्यर्थः ॥ न ञिवयुक्तमन्यसदृशे त
ह्यर्थगतेरिति शाब्दिकानुशासनात् ॥ नञिवयुक्तं पदं स
सदृशमेव प्रतिपादयति ॥ तथैवार्थ प्रतीतेरिति तदर्थः
यथा अब्राह्मणो यं ब्राह्मण इवायमित्यादौ ब्राह्मण
तत् सदृशः क्षत्रिय एव प्रतीयते॥तेन तस्यैव प्रणाम नि
न तु दैवत प्रतिमायाःप्राचीन विद्यागुरु पित्रादेश्चेति मन्त
॥ माधवीये अत्रिः ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि य आच
यतेःस्मृतः । अभ्युत्थान प्रियालापै गुरुवत् प्रति पूजनं
यतीनांव्रत वृद्धानां स्वधर्म्ममनु वर्तिनां विष्णुरूपेण
कुर्य्यान्नमस्कारं विधानतः ॥ २ ॥
इतिव्रतंवृद्धानामिति व्रतशब्दो यद्यपिकर्त्तव्यार्थवाचक

थापि अत्रसन्न्यासपरः तथाच सन्न्यास वृद्धानामित्यर्थः ।
स्वधर्म्ममितिस्वधर्म्मश्रवणादिरेव तन्निष्ठाना मित्यर्थः ॥
विष्णुरूपेणेति नमोवा हरि स्वामिन् इत्यष्टाक्षरेण नमस्कारं
कुर्य्यादित्यर्थः ॥ यत्याचारोप्येवं दृश्यते अयञ्च यतिवृद्ध
नमस्कारः॥ प्रत्यवाय परिहारायावश्यकृत्य अन्येषान्त्विच्छयैव॥
अतएव यति वृद्धैः प्रणीत योगपट्ट विधौ शिष्याय गुर्व्वादीनां
वन्दनमुक्तं सङ्गच्छते । स च नमस्कारः त्रिविध इत्युक्तं ।
यति धर्म्म समुच्चये ॥

दण्डेन वापि वस्त्रेण व्यापकेन शरीरतः ।
एवंतु त्रिविधं प्रोक्तं यतीनां वन्दनं भवेत् ॥१॥
अभिख्यातानां यतिर्द्द्याद्दाशिषं व्यास शासनात् ।
नारायणेतिच ब्रूयात् प्रख्यातायुर्व्विवृद्धये ॥इति ॥२॥

शरीरत इति तृतीयान्तात्तसिल् ॥ शरीरेणेत्यर्थः ॥
व्यापकेनेति शरीरविशेषणं दीर्घ प्रसारितेनेत्यर्थः ॥ दण्डेन
वापि वस्त्रेणेत्युभयत्र तृतीया न करणत्वार्थिका । हस्त
मस्तकादि व्यापार विशेषरूप नमस्क्रियां प्रति हस्तादेरेव-
करणत्वेन दण्डादेस्तथात्वाभावात् ॥ किन्तु साहित्यार्थिका
एवञ्च दण्ड सहितेन वा वस्त्रसहितेन वा व्यापकेन वा शरी-
रेण नम स्क्रिया कर्त्तव्येति त्रैविध्यं वोध्यमित्यर्थः ।
इदानीं तना यस्तु गुरो ज्येष्ठस्य वा नमस्कार प्रसङ्गेपूर्व्वंदिग्
देवता वन्दनमपि कुर्व्वन्ति तच्चिन्त्यं ॥ मूलप्रमाणानुप
लम्भात् ॥ किञ्चधर्म्म निवन्धेष्वापि गृहस्थादीनां सन्ध्यान्ते
तर्पणान्ते वा दिग् देवता वन्दनमित्येवोक्तं । अथ मध्यान्हे

प्रातर्वत् स्नात्वा मध्यान्हे सन्ध्यां प्रातः सन्ध्यावदेव
विधाय इति ॥ विश्वेश्वरपद्धतौ नमस्कार विधिः । आ
न नमेत् । आतुरोवा न नमेत् । अत्र संप्रदाय विद
सर्व्वदा वन्दनं कुर्य्यात् गुरोर्ज्येष्ठ यतेस्तथा । आपञ्च
नमस्कुर्य्याद्व्यतिक्रान्तेऽपि पर्व्वणि॥१॥इति ततो भिक्षार्थग्र
प्रविशेत् यतीनां भिक्षा प्रकरण विधिःभिक्षास्वप्याह॥उश
माधूकरमसंक्लृप्तं प्राक् प्रणीत मयाचितम् । तात् का
चापपन्नं भैक्ष्यं पञ्च विधंस्मृतम् ॥ इति असं क्लृप्तमि
माधूकर विशेषणं । क्रमेण पञ्चानां स्वरुपमाह । सप्तु
मनः संकल्परहितान् गृहान् त्रीन् पञ्च सप्तवा ।
मधुवदाहरणं यत्तन्माधूकर मितिस्मृतम् ॥१॥
शयनोत्थापनात् प्राक्च प्रार्थितं भक्ति संयुतम् ।
तत् प्राक् प्रणीत मित्याहुर्भगवानुशना मुनिः ॥२॥
भिक्षाटन समुद्योगात् प्राक्केनापि निमन्त्रितम् ॥
अयाचितन्तु तद्भैक्ष्यं भोक्तव्यं मनुरब्रवीत् ॥३॥
उपस्थानेन यत् प्रोक्तं भिक्षार्थं ब्राह्मणेनहि ।
तात्कालिकमितिख्यात मदनीयं मुमुक्षुणा ॥४॥
सिद्धमन्नंभक्तजनै रानीतं यन्मठं प्रति ।
उपपन्नं तदित्याहु र्मुनयो मोक्षकांक्षिणः ॥५॥
भिक्षाःपञ्च विधाह्येताः सोमपानसमाःस्मृताः ।
तासामेकतमां वापि वर्त्तयन् सिद्धिमाप्नुयात् ॥६॥
भिक्षाविधौ दत्तात्रेयः । याचितायाचिताभ्यांञ्च भिक्षा
कल्पयेत् स्थितिं॥माधूकं याचितं स्यात् प्राक्प्रणीत मया

चितं ॥१॥ प्राक् प्रणीत मित्ययाचितादेरप्युपलक्षणं ।
स्कान्दे । माधूकर मथैकान्नं परहंसः समाचरेत् ॥२॥
इति स्मृत्यन्तरे ॥ क्रतुः ॥ संप्रार्थित मुपस्थानाद संक्लृप्त-
मयाचितम् । तत् सदैकान्न मप्यद्याद् भैक्षान् माधुकराद्वरम् ३
अयाचितं यथालाभं भोजनाच्छादनं भवेत् ॥
निमंत्रितोथवा श्रेयान् स्वगुणान् न प्रकाशयेत् ॥४॥
पराशरः ॥ यतीनामातुराणान्तु वृद्धानां दीर्घरोगिणां ।
एकान्नेन न दोषोऽस्ति एकस्यैव दिने दिने ॥५॥
क्रतुः ॥ सजीर्णोतिकृशो योगी दशान्तो विकलेन्द्रियः ।
पुत्रमित्रगुरुभ्रातृपत्नीभ्यो भैक्षमाहरेत् ॥६॥
एतत् सर्व्वं यतिविषयं ॥ मनुसंहितायां ।
जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः ।७
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥
आपोमूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहनकर्म्मणा ॥८
न वायुःस्पर्शदोषेण नाऽन्नदोषेण मस्करी ॥
एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे ॥९
भैक्षे प्रसक्तो हि यति र्विषयेष्वपि सज्जति ॥
विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ॥१०
वृत्ते सरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥
अलाभे न विषादीस्याल्लाभे चैव न हर्षयेत् ॥११
प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥
अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्व्वशः ॥१२
अभिपूजितलाभैश्च यति र्मुक्तोपि बध्यते ॥

अल्पान्नाभ्यवहारेण रहः स्थानासनेन च ।
ह्रियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्त्तयेत् ॥१३
॥ सन्न्यासिनां भोज्याभोज्यनिर्णायः सन्न्यासोपनिषदि
एरण्डतैलफेनवत् सर्व्वं परित्यजेत् ॥न देवताप्रसादग्रह
न वाह्य देवताभ्यर्च्चनं कुर्य्यात् ॥स्वव्यतिरिक्तं सर्व्वं त्य
मधुकर वृत्याहार माहरन् कृशी भूत्वा मेदो वृद्धि मकु
विहरेत् । माधुकरेण करपात्रेणास्यपात्रेण वा
नयेत् ॥ आत्म सम्मित माहरेदात्मवान् यतिः ॥
आहारस्य च भागौ द्वौ तृतीय मुदकस्यच । वायोः सञ्चार
र्थाय चतुर्थमवशेषयेत्॥१
भैक्षेणावर्त्तयेन्नित्यं नैकान्नाशी भवेत् क्वचित् ॥
निरीक्षन्तेऽत्वनुद्विग्नास्तद्गृहं यत्नतो व्रजेत् ॥२
पञ्चसप्तगृहाणान्तु भिक्षामिच्छेत् क्रियावताम् ।
गोदोहमात्र माकाङ्क्षे न्निष्क्रान्तो न पुनर्व्रजेत् ॥३
नक्ताद्वरश्चोपवास उपवासाद्वयाचितः ।
अयाचिताद्वरं भैक्षं तस्मात् भैक्षेण वर्त्तयेत् ॥४॥
नैव सव्यापसव्येन भिक्षाकाले विशेद् गृहान् ।
नातिक्रामेद्गृहं मोहाद् यत्र दोषोन विद्यते ॥५
श्रोत्रियान्नं न भिक्षेत श्रद्धाभक्तिवहिष्कृतम् ॥
व्रात्यस्यापि गृहेभिक्षेच्छ्रद्धाभक्तिपुरस्कृते ॥६
माधूकर मसंकॢप्तं प्राक् प्रणीतमयाचितम् ।
तात्कालिकं चोपपन्नं भैक्षंपञ्चविधंस्मृतम् ॥७
इति माधूकरमसंकॢप्त विशेषण क्रमेण पञ्चानां स्वरुपंपूर्व्व

चरेन्माधूकरं भैक्षं यति र्म्लेच्छकुलादपि ।
एकान्नं नतु भुञ्जीत बृहस्पतिसमादपि ॥८ इति ।
॥ इदंच वाक्यं यस्मिन् देशे चातुर्वर्ण्यं भैक्ष्यं न लभ्यते तद्विषयक मित्यवधेयं ॥
नापो मूत्र पुरीषाभ्यां नान्नदोषेण मस्करी ॥
विधूमेसन्नमूसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ॥९
कालेऽपरान्हभूयिष्ठे भिक्षाचरणमाचरेत् ।
अभिशस्तञ्चपतितं पाषण्डं देवपूजकम् ॥१०
वर्ज्जयित्वा चरेद्भैक्षं सर्व्ववर्णेषु चापदि ।
घृतंश्वमूत्रसदृशं मधुस्यात् सुरयासमम् ॥११
तैलं शूकरमूत्रं स्यात् सूपं लशुनसम्मितम् ।
माषापूपादि गोमांसं क्षीरंमूत्रसमं भवेत् ॥१२
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन घृतादीन् वर्जयेद् यतिः ॥
घृतसूपादिसंयुक्तमन्नं नाद्यात् कदाचन ॥१३
आस्येन तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः ।
तदासमः स्यात् सर्व्वेषु सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१४॥
आज्यं रुधिरमिव त्यजेदेकान्नं पललमिव गन्धलेपनम् अशुद्ध-लेपनमिव क्षारमन्त्यजामिब ।वस्त्रमुच्छिष्टपात्रमिव ।अभ्यङ्गं स्त्रीसङ्गमिव।मित्राह्लादकं मूत्रमिव स्पृहां गोमांसमिव।ज्ञात-चरदेशं चाण्डालवाटिकामिव॥ स्त्रियमहिमिव ॥ सुवर्णं कालकूटमिव । सभास्थलं श्मशान स्थलमिव ॥ राजधानीं कुम्भीपाकमिव ॥ शवपिण्डवदेकत्रान्नं न देवताऽर्च्चनम् । प्रपञ्चवृत्तिं परित्यज्य जीवन्मुक्तो भवेत् ॥ इति ॥

वशिष्ठसंहितायां ॥भोज्याभोज्यश्च वर्णायिष्यामः ॥ चिकि
सक मृगयु पुंश्चली दाण्डिक स्तेनाभिशस्तषण्डक पतिताना
भोज्यं ॥ कदर्य्यंचित वद्धातुर सोमविक्रयि तक्षक रेज
शौण्डिक सूचक वार्द्धषिक चर्म्मावकृत्तानाम् ॥ शूद्रस्य चा
स्योपयज्ञे यश्चोपपतिंमन्यते यश्च गृहीततद्धेतुर्यश्च व
नोपहन्यात् कौवन्धमोक्षौ इति चाभिक्रुश्येत् ॥ गण
गणिकान्नमथाप्युदा हरन्ति श्लोकम् ।
नाश्नन्ति श्वपतेर्देवा नाश्नन्ति वृषलीपतेः ॥
भार्य्याजितस्य नाश्नन्ति यस्य चोपपति र्गृहे ॥१५ इति
एघोदकसवत्सकुशलाभ्युद्यतपानाऽवसथ शफरिप्रियङ्गुस्र
मधुमांसानि नैतेषां प्रति गृह्णीयाद्यथाप्युदाहरन्ति ॥ गु
दारमुज्जिहीर्षन्नार्चिष्यन् देवतातिथीन् ॥ सर्व्वतः प्र
गृह्णीयान्नतु तृपेत् स्वयं तत इति ॥ न मृगयोरिषुचारि
परिवर्ज्ज्यमन्नं । विज्ञायते ह्यगस्त्यो वर्षसहास्रिके सत्रे मृ
यां चकार तस्या संस्तु रसमयाः पुरोडाशा मृगपक्षिणां
स्तानामपिह्यन्नं प्राजापत्यानु श्लोकान् उदाहरन्ति ॥
उद्यतामाहृतां भिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम् ।
भोज्यां प्रजापतिर्म्मेने अपि दुष्कृतकारिणः ॥१
श्रद्दधानैर्न भोक्तव्यं चौरस्यापि विशेषतः ।
नत्वेव वहुधातस्य यावानऽपहृतो भवेत् ॥२
न तस्य पितरोऽश्नन्ति दश वर्षाणि पञ्चच ।
न च हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥३
चिकित्सकस्य मृगयोः शल्यहस्तस्य पाशिनः ।

पराडस्य कुलटायाश्च उद्यतापि न गृह्यते ॥४॥ इति ॥
उच्छिष्टम गुरो रभोज्यं स्वमुच्छिष्ट मुच्छिष्टोपहतञ्च ।
यदशनं केश कीटोपहतञ्च ॥ कामन्तु केशकीटानुद्धृत्याद्भिः
प्रोक्ष्य भस्मनावकीर्य्य वाचा च प्रशस्त मुपयुञ्जीतापिह्यन्नम्-
प्राजापत्यान् श्लोकानुदाहरन्ति ॥
त्रीणिदेवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ।
अदृष्टमद्भि र्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥५॥
देवद्रोण्यां विवाहेषु यज्ञेषु प्रकृतेषु च ।
काकैः श्वभिश्च संस्पृष्टमन्नं तन्न बिसर्जयेत् ॥६
तस्मात् तदन्नमुद्धृत्य शेषं संस्कारमर्हति ।
द्रवाणांप्लावनेनैव घनानांत्तरणेनतु ॥७
पाकेन शुकसंस्पृष्टं शुचिरेवहि तद्भवेत् ।
अन्नं पर्य्युषितं भावदुष्टं हृल्लेखं पुनः ॥८
सिद्धमाममृजीश पक्कञ्च कामन्तु दध्याद्घृतेनचाभिघारित-
मुपयुञ्जीतापि ह्यन्नं । प्राजापत्यान् श्लोकानुदाहरन्ति ॥
हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणं व्यञ्जनानिच ।
दातारंनोपतिष्ठन्ते भोक्ता भुङ्क्ते च किल्विषम् ॥ इति।६
लशुन पलाण्डु केमुक गृञ्जन श्लेष्मातक वृक्षनिर्यास लोहिता
वश्चनाश्वपश्व काकावलीढ़ शूद्रोच्छिष्ट भोजनेषु कृच्छ्राति-
कृच्छ्र इतरेऽप्यन्यत्र मधुमांस फल विकर्षेष्वग्राम्य पशव-
विषयः । सन्धिनीक्षीरमवत्सासक्षीरं गोमहिष्यऽजातरो-
मानिर्द्दशाहानामनाम्नेयं । नाप्युदकमपूपाधाना करम्भ-
शकुचरक तैलपायसशाकानि लशुनादीनि वर्जयेदन्यांश्चक्षीर-

यवपीष्ठवीरान् श्वाविच्छल्लकशश कच्छप गोधाः पञ्च
रवाः नाभक्ष्याः अनुष्ट्राः पशूनामन्यतोदतश्च मत्स्या
वा वेहगवय शिशुमार नक्रकुलीरा विकृतरूपाः सर्प शीर्षा
गौरगवय शलभाश्चानुद्दिष्टा स्तथाधेन्वनडाहौमेध्यौ वाज
नयेने ॥ खड्गेतु विवदन्त्य ग्राम्यशूकरेच शकुनानाञ्च वि
विविष्किर जालपादाः कलविङ्कप्लवहंसचक्रवाकभा
मद्गुटिट्टिभाटवान्धनक्तञ्चरा दार्व्वा घाटाश्वटक वैल
कहारीतखञ्जरीटग्राम्यकुक्कुट शुकसारिका कोकिलाक्रव्य
ग्राम चारिणाश्च इति निषिद्धम् ॥ नारदपरिव्राजकोपनि
भिक्षाविधिः ॥

प्राणयात्रानिमित्तञ्च व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ॥
काले प्रशस्ते वर्णानां भिक्षार्थं पर्य्यटेद् गृहान् ॥१
पाणिपात्रश्चरन् योगी नासकृद्भैक्ष माचरेत् ।
तिष्ठन् भुञ्ज्याच्चरन् भुञ्ज्यान् मध्ये नाचमनं तथा॥२
अब्धिवद्धृतमर्य्यादा भवन्ति विशदाशयाः ।
नियतिं न विमुञ्चन्ति महान्तो भास्कराइव ॥३॥
आस्येन तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः ।
तदासमः स्यात् सर्व्वेषु सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥४
अनिन्द्यं वै व्रजन्गेहं निन्द्यं गेहन्तु वर्जयेत् ।
अनावृते विशेद्द्वारि गेहेनैवावृते व्रजेत् ॥
पांसुनाच प्रतिच्छन्न शून्यागार प्रतिश्रयः ॥५ इति ।
विश्वेश्वर पद्धतौ परमहंसस्य विशेषमाह । पितामहः
अयाचितमसंक्लृप्त मुपपन्नं यदृच्छया ।

जोषयीतसदा भोज्यं ग्रासमागतमस्पृहः ॥१॥
सौवर्णलोह रुप्येषु ताम्राद्यश्ममयेषु च ।
अश्नन्भिक्षु र्न दुष्येत दुष्यते तु परिग्रहात् ॥२॥
माधूकरमथैकान्नं परहंसः समाचरेत् ॥ बृहदारण्यके ॥
अथ भिक्षाचर्य्यंचरन्तीति मैत्रायणी श्रुतिः ॥
त्रीन् वैणवान् दण्डान् दक्षिणे पाणौ धारयेदेकं वा यद्येकं
तदा सशिखं वपनं कृत्वा विसृज्य यज्ञोपवीतिंच त्रिषु
वर्णेष्वेकागारं भैक्षमश्नीयान् मधुकरी चेति ॥
काठकब्राह्मणे॥चतुर्षु वर्णेषु भैक्षाचर्य्यं चरेत्। पाणिपात्रेणा-
शनं कुर्य्यात् औषधवत् प्राश्नीयात् प्राणसंधारणार्थं यथा
मेदोवृद्धिर्न जायेतेत्यादि मैत्रायणी श्रुतिः ॥ यथान्यः परि
व्राडेक शाटीक परिहितो मुण्डउदर पात्रोऽरण्य नित्यो भि-
क्षार्थी ग्रामं प्रविशेत् ॥ सायं प्राग् दक्षिणे नाविचिकित्सं
सार्व्ववर्णिकं भैक्षचरणमभिशस्तपतितवर्जमिति ॥
आरुणी श्रुतिः । ततो भिक्षार्थं ग्रामं प्रविशति पाणि-
पात्रमुदर पात्रंवा ॐ हिं ॐ हिं ॐ हिं एतदुपनिषदं विन्य-
सेद्विद्वान् य एवं वेद ॐ औषधवदशन माचरेत् । इति ॥
गौतमः ॥ हविः प्राश्ययथाचम्य निराहारो भवेद् गृही ।
प्राश्याचम्य तथा भिक्षुः निराहारो गृहे गृहे ॥१
पात्रमास्यं भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहान्चरेत् ।
उदरपात्र विषये यतिधर्म्म समुच्चये विशेषः॥
आस्येनतु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः ॥ इति-
माण्डुकोर निषदि॥ पाणिपात्रमुदरपात्रं वा गृहे गृहे विशेत्

कवल मात्रेण नापरं गृह्णीयात् पदे पदे ।
भुञ्जन् गच्छन् कुला कुलेषु सर्व्वाशीति ॥ शौनकः ॥
पाणिपात्रं चरन् योगी नासकृद्भैक्षमाचरेत् ।
तिष्ठन्भुञ्ज्याच्चरन् भुंज्यान् मध्येनाचमनं तथा ॥
शौनक गौतम वचनाभ्यां आचमने विकल्पः ॥ पराश
ग्रामैक रात्रि वासिनः । नगरे तीर्थेऽवसथेषु पञ्चरात्रि
सिनः ॥ उदरादि पात्रिणः अभिशस्त पतितवर्ज्जं चातुर्
भैक्ष्यं चरन्त आत्मनात्ववतिष्ठन्त इति ॥ बौधायन
भैक्षं वा सर्व्व वर्णेभ्य एकान्नं वा द्विजातिषु ॥ ननूदर
त्रिणः परमहंसस्य वाह्य पात्रा भावात् कथं भैक्षं माधु
उच्यते ॥ आयसादि पात्रं गृह्णीयात् पाणिनाशन का
वेत्यादि वचनात् परमहंसस्यापि यतेः कदाचित्तादृश प्र
प्राप्तिः स्यात् तत्ररिक्त हस्ते गृह मागतेयतौ किमर्थमा
ऽयमिति न विन्दन्ति प्राकृताजनास्तत उपवासः स्या
दिने तस्मिन् प्रदेश इती यमापत् स्यात्त स्यामापदि प्रा
पांशुचिदेशस्थ वेणवादिशकलमादाय शीर्णपर्णपुटं
कृत्वा तेन भैक्ष्यमादायाश्नीयात् । भैक्षं माधुकरी मश्न
पि परम हंसो निर्नैवेद्यं विसर्जयेत्॥कुतोग्रासादाच्छादनाद
न्नं गृह्णीयात् कथंचन यावदाहारयेत्तावत् प्रतिगृ
अन्यथे त्यादि वचनात् ॥ माधूकरं भैक्षं चरन् न संक
तेषु गृहेषु चरन् तद्विमुक्तं सप्तागाराणया संकल्पितानि
भैक्षं विधूमेसन्नमुशले एकशाटीपरिहितोऽजिनीवेति॥
॥याज्ञवल्क्यः ॥ यति पात्राणि मृद्वेणुदार्व्व लाम्बु मया

सलिलैः शुद्धिरेतेषां गोवालैश्चावघर्षणं ॥ इति अल्पोपघाते तु गोवालैर्घर्षणं ॥ मृदादि प्रकृतिकानि यतिपात्राणि भवेयुः ॥ तेषां सलिलं गोवालावघर्षणञ्च शुद्धिसाधनं ॥ इयञ्च शुद्धिः भिक्षाचरणादि प्रयोगाङ्गभूतानाम मेध्या-द्युपहतविषया तदुपघातेद्रव शुद्धि प्रकरणोक्ता द्रष्टव्या॥ अत-एव मनुना॥ अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानिच। तेषामद्भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे इति॥ चमस-दृष्टान्तोपादानेन प्रायोगिकी शुद्धिर्दर्शिता।

पात्रान्तराभावे मृद्वंशालावु पात्राणां गृह्णन् भिक्षार्थ मुत्तमम्।
पात्रमेकतमं शुद्धमव्रणं पंकवर्जितम् ॥

भोजनमपि तत्रैव कार्य्यं ॥ तद्भैक्षं गृहीत्वैकान्ते तेन पात्रेणा-न्येन वा तुष्णीमादाय भुञ्जीतेति देवलस्मरणात्॥ मृत्पात्रं तु भिक्षां विधायत्यज्यमेव तथा शिष्टाचार दर्शनात् । कलौ स्वपात्रभोजन निषेधाच्च॥ द्वापरादि युगेष्वेवपात्रभोजी भवेद् यतिः। कलौनैवतु भुञ्जीत स्वपात्रेयोगवित्तमः ॥ इति ब्रह्म बचनेन ॥ कण्वः ॥ तार्णं पर्णञ्च पाषाणमिति अत्रिः ॥ मृद्दार्वालावुजं पात्रं वैणवं तांतवौपलम्।
तार्णं तार्णं तथा क्षौमं पात्रंपर्णपुटं तथा ॥१
उक्तानि यतिपात्राणि ब्रह्मणाविश्वयोनिना ।
करेकर्पटकेचैव आयसे ताम्रभाजने ॥
भुञ्जन् भिक्षुर्न लिप्येत लिप्यन्ते गृहमेधिनः ॥२
एवमाहृत्य पर्णानि कृत्वा पर्णमयं पुटीम् ।
भिक्षार्थं पर्य्यटेद्भिक्षु स्तैजसेन कदाचन ॥

॥ विष्णु पुराणे ॥ संस्कृत्य प्रणवेणाथ भिक्षापात्रं य
विधि। भास्कराभिमुखो भूत्वा संस्मरन् मनसा हरिम्॥
सव्येनादाय पात्रन्तु दण्डं वै दक्षिणेन तु।
॥कण्वः॥ नमस्कृत्य तथा द्यन्त्यं समाक्रान्त मुपानहौ॥
सर्व्वदोपानहौ भिक्षु र्न त्यजेत्तु कदाचन।
उदपात्रञ्च भिक्षाञ्च दुष्येदुतउपानहौ ॥३
यः काष्ठपादुकारूढो गृहादन्यगृहं व्रजेत्।
छेत्तव्यो चरणौतस्य नान्यो दण्डो विधीयते ॥४
विधूमेसन्नमूसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने।
काले परान्हभूयिष्ठे भिक्षाटनमथा चरेत् ॥इति॥५
॥ आदित्य पुराणे ॥ मेध्यं भैक्षं चरेन्नित्यं सायान्हे व
यतःशुचिः॥ एकवासा विशुद्धात्मा मन्दगामी युगान्तद
यथा लब्धं तदश्नीयात् प्रजासंस्कारवर्ज्जितः।
॥ अत्रिसंहितायां ॥ अनिन्द्यं वै व्रजेद्गेहं निन्द्यं गेह
व्रजेत्॥७॥अनावृते विशेद्द्वारि गेहे नैवावृते व्रजेत्।
नवीक्षेद्द्वाररन्ध्रेण भिक्षां लिप्सुः क्वचिद्यतिः ॥८
न कुर्य्याद्वै क्वचित् घोषं न द्वारं ताडयेत् क्वचित्।
प्राणवृत्यैव सन्तुष्येन्मुनि र्नैवेन्द्रियप्रियैः ।९
ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः।
अलब्ध्वा न विषीदेत काले कालेऽशनं क्वचित् ॥१०
यदृच्छया चोपपन्न मद्यान्छ्रेष्ठ मुतापरम्।
तथा वासस्तथा शय्या प्राप्तं प्राप्तं भजेन्मुनिः॥११
लब्ध्वा न हृष्येद्धृतिमानुभयं दैवतं त्रितम् ॥

आहारार्थं समीहेत युक्तंतत् प्राणधारणम् ॥१२
तत्त्वं विमृशते तेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥ इति ॥
अत्रिः ॥ नैव सव्यापसव्येन भिक्षाकाले व्रजेद्गृहान् ॥१३
अनिन्द्यातिक्रमे योगी प्राणायामशतं चरेत् ।
अदुष्टापतितं साधुंयतिर्यः परिवर्ज्जयेत् ॥१४
स तस्य सुकृतं दत्त्वा दुःकृतं प्रतिपद्यते ।
तथैवच गृहस्थस्य निरासो भिक्षुको गतः ॥१५
हुतंदत्तं तपोधीतं सर्व्वमादाय गच्छति ।
असंस्कृता तु या कन्या उदक्या चोदिता तु या ॥१६
तया दत्तं न गृह्णीयात् प्राणयज्ञेनायसेन वा ॥
पृथक् कृत्वा तु याभिक्षा घ्रातामार्जारमूषकैः ।१७
वातोप हत शुष्कान्ना भिक्षा चोपहता भवेत् ।
॥शौनकः॥ पीडयित्वापिचात्मान मल्पान्नं संप्रयच्छति ॥१८
सा भिक्षाहिंसकाज्ञेया तादृशीं वर्ज्जयेद् यतिः ।
पञ्चाहं सप्तरात्रं वा यत्र भिक्षा न लभ्यते ॥१९
तद्गृहं वर्ज्जयेद्भिक्षुश्चण्डालगृहवत् सदा ॥ इति
अत्रिः॥हितं मितं सदाश्नीयात् यत् सुखेनैव जायते ॥२०
धातुः प्रकुप्यतेयेन तदन्नं वर्जयेद् यतिः ।
यातु पर्युषिता भिक्षा नैवेद्यादिषु कल्पिता ॥२१
तामभोज्यां विजानीयाद्दत्त्वा च नरकं व्रजेत् ।
आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते ॥२२
भोक्ता बिष्ठासमं भुंक्ते दाता च नरकं व्रजेत् ॥

॥ अथ भैक्षप्रशंसा विष्णुः ॥

न भिक्षायां भवेद्दोषो न च भिक्षा प्रतिग्रहः ॥२३
सोमपानसमा भिक्षा तस्मादहरहश्चरेत् ।
॥शातातपः॥ भिक्षां माधूकरीनाम सर्व्वपापप्रणाशिनी ॥
अवधूताच पूताच सोमपानं दिने दिने ।
भिक्षाहारो निराहारो भिक्षानैव प्रतिग्रहः ॥२५
श्रोत्रियान्नञ्च भैक्ष्यञ्च हुतशेषञ्च तद्धविः ।
आनखाच्छोधयेत् पापं तुषाग्निरिव काञ्चनम् ॥२६
गङ्गायाः सलिलं पुण्यं शालग्रामशिला तथा ।
भिक्षान्नं पञ्चगव्यञ्च पवित्राणि युगे युगे ॥ इति ॥२७
॥कण्वः॥ अप्बिन्दुं यः कुशाग्रेण मासिमासि समश्नुते
निरपेक्षस्तु भिक्षाशी सतु तस्माद्विशिष्यते ॥२८
॥मेधातिथिः॥आकार्ण्यगण्यन्तु वह्नन्नं मन्यन्ते यत्रमानवा
निरीक्षन्तेत्वनुद्विग्ना स्तद्गृहं यत्नतो व्रजेत् ।
गोदोहमन्नपाकं वा सक्तु पेषणमेव वा ॥
एककालं प्रतीक्षेत दर्शनेन विना यतिः ॥३०
क्षणमेकं न तिष्ठेद्वै गृहीणां दर्शनाद्यतिः ॥
संभ्रमञ्च नावेक्षेत भिक्षादानार्थ मुत्तमम् ॥३१
नकुप्येत नकंपेत न हृष्येत् नैव कुत्सयेत् ॥
अतिक्रम्य गृहान् लोभान्न पुनस्तद् गृहं विशेत् ॥३२
यथा मध्वाददानोऽपि भृङ्गःपुष्पं नबाधते ।
तद्वन्माधुकरी भिक्षामाददीत गृहाधिपात् ॥३३
यावतोदरपूर्त्तिः स्यात् तावद् भैक्ष्यं समाचरेत् ।
शिकूथमप्यधिकं भिक्षुराददानो व्रजत्यधः ॥इति ॥३४

।।अनु।। पञ्चसप्त गृहाणाञ्च भिक्षामिच्छेत् क्रियावताम् ।
गोदोहमात्रमाकाङ्क्षी निःक्रान्तो न पुनर्विशेत् ।।इति।।३५
।। वसिष्ठ संहितायां ।। ब्राह्मण कुलेवा यल्लभेत्तद् भुञ्जीत ।।
सायंप्रात मधुमांस सर्पि वर्ज्जं यतीन् साधुन् व गृहस्थान्
सायं प्रातश्च तृप्येत् ।। तुशब्दः अशक्त भिक्षु विषयः।।
एककालं चरेद्भैक्ष्य मित्यादि बहु वचन विरोधात् ।।इति।।
बह्वन्नं पच्यते यत्र मन्यन्ते यत्र मानवाः ।
अनुद्विग्नाः प्रयच्छन्ति तं देशंयत्नतो व्रजेत् ।।१
भिक्षाटनं प्रकुर्व्वाणो ह्यमेध्यं श्वादि वास्पृशेत् ।
भिक्षां गृहीत्वा स्नात्वाच प्राणायामान् षड़ाचरेत् ।।२
अमेध्य निचयंचैव स्पृष्ट्वा देवलकं यतिः ।
सपात्रो विधिवत् स्नात्वा विष्णुं ध्यात्वा विशुध्यति ।।३
उदक्याशव चण्डाल चौरनग्न कपालिभिः ।
स्पृष्टो भिक्षां त्यजेद्भिक्षुः सचैलं जलमाविशेत् ।।४
तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविप्लवे ।
प्रवासे ग्रामदाहेच स्पृष्टास्पृष्टं न दुष्यति ।।५
कुड्येकाष्ठे रथेमञ्चे नौकायां गजवृक्षयोः ।
तृणौघजलसंघाते स्पृष्टास्पृष्टि न विद्यते ।।६।।
सूतकेतु नखेपापं ग्रहणे वस्त्रयुग्मके ।
तीर्थे तिष्ठति केशाग्रे हलजे हरिवासरे ।।७
पादत्राणस्थितो पादावस्पृशंस्पृशते यदि ।
पादत्राणपरित्यागे आचान्तः शुचितामियात् ।।८
विना दण्डोदपात्रन्तु नगच्छेद् यतिसत्तमः ।

भिक्षाकाले दण्डमेकं नोदपात्रं कदाचन ॥ इति॥९
॥याज्ञवल्क्यः॥ अप्रमत्तश्चरेद्भैक्ष्यं सायान्हे नाभिरक्षितः।
रहिते भिक्षुके ग्रामे यात्रामात्रमलोलुपः ॥१०
अप्रमत्तो वाक् चक्षुरादि चापल्य रहितः ॥
नक्तात् परश्चोपवास उपवासा दयाचितम् ॥
अयाचितात् परंभैक्ष्यं तस्माद्भैक्षेण वर्त्तयेत् ॥११
अत्रिः॥नैवसव्यापसव्येन भिक्षाकाले व्रजेद् गृहात् ।
अनन्तरं क्रमाद्भिक्षां प्रशस्तां नतु कीर्त्तयेत् ॥१२
सम्भवे वहुगेहानां नतु तेष्वेव नित्यशः ।
शूद्रशेषं न चाश्नीयात् श्राद्धान्नं शिशुकैः सह ॥१३
दम्पत्योर्भुक्तशेषं च भुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ।
भिक्षाटन मुपक्रम्य क्वचिल्लोभेन भैक्ष्यभुक् ॥१४
नातिक्रामेद्गृहान् मोहाद् यत्र वाधो न विद्यते ।
गृहातिक्रमणं कुर्य्याद्यत्र लोभादिना यतिः ॥१५
प्राणायामशतं कुर्य्यात् प्रायश्चित्तं तथा यतिः ।
नक्तभोजी भवेद्भिक्षु र्मोक्षधर्म्मानुशासनात् ॥१६
मृद्वार्य्यन्नं दिवादाय रात्रौ शौचादिकं यतिः ।
मृद्वार्य्यन्नं सदा भिक्षू रात्रौ चैवाहरेत् क्वचित् ॥१७
निशायाः प्रथमे यामे जपहोमार्च्चनं श्रुतौ ।
स्वाध्यायो भोजनं प्रोक्तं वर्ज्जयित्वा महानिशाम् ॥१८
पश्चिमे तु तथायामे ब्रह्माभ्यासो विधीयते ।
जपस्नानादिकं होमः वर्ज्जयित्वा तु भोजनम् ॥१९
देवोद्याने साधुगहे महालये सरित्सुच ।

ात्रौ गच्छन्न दुष्येत तड़ाके विमले ह्रदे ॥२०
।जमदग्निः॥ अश्नन् माधूकरीं भिक्षां नैवेद्यन्तु विसर्ज्जयेत्।
रपाकेन गृह्णीयात् किंचिदन्न मुपस्थितम् ॥२१
न्र्व माधुकर रूपे नैवेद्ये भगवति समर्पिते सतीत्यर्थः॥
्यासः॥ अश्रद्धानस्य भोक्तव्यं चारस्यापि विशेषतः।
त्वेवं वहुयाज्यस्य यश्चोपनयते वहून् २२॥
अत्रिः॥उद्यता माहुतां भिक्षां पुरस्ताद प्रचोदिताम्।
ोज्यां प्रजापति र्मेनेऽपि दुष्कृतकारिणः २३॥
त्तात्रेयः॥ कृतेदेशं त्यजेद्ग्रामं त्रेतायां द्वापरे कुलम्।
कर्त्तारन्तु कलौदुष्टं त्यक्त्वा भैक्ष्यश्चरेद् यतिः ॥२४
ैक्षादन्यन्न याचेत नचैवोपविशेत् क्वचित्।
उद्यतां नावमन्येत न चैतां श्रावयेत् पुनः ॥२५
भिक्षाटने स्त्रियः काश्चिच्छ्रोत्रियाणां गृहे गृहे।
ासां विलोकनं कार्य्यं यथा मातुः स्वसुस्तथा ॥२६
आत्मसंमितमाहार माहरेदात्मवान् यतिः।
अत्यन्तक्षुधितस्यापि समाधिर्नैव जायते ॥२७॥ इति
।कात्यायनः ॥ आहारस्य तु द्वौ भागौ तृतीयमुदकस्यतु।
ायोः संचारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत् २८॥
यमः॥ आहारस्य चतुर्भागं अर्द्धंवाप्याहरेद् यतिः।
ुवाचैवारुजः शक्तः प्रसङ्गं तत्र वर्ज्जयेत् ॥२९
अन्नसङ्गाद्बलं दर्पो विषयासक्तिरेवच।
कामः क्रोधस्तथा लोभः पतनं नरके ध्रुवम् ३० इति
ताव ज्जितेन्द्रियो न स्याद्विजितान्निन्द्रियः पुमान्।

नजयेद्रसनं यावत् जितं सर्व्वं जितेरसे ॥१
अष्टौग्रासामुनेः प्रोक्ताः षोडशारण्यवासिनः ।
द्वात्रिंशत्तु गृहस्थस्य यथेष्टं ब्रह्मचारिणः ॥२
तत्र ग्रासप्रमाणन्तु व्याघ्रेण परिभाषितम् ।
भुक्ताभुक्तोपभुञ्जीत नियमार्थी यतिः सदा ॥३
भैक्षाद्युपावृतो भिक्षुः पश्चात् केनचिदाहृतम् ।
फलमूलं पयस्तक्रं दधि पुष्पंघृतं तथा ॥४
शाकादिव्यञ्जनंपेयं गृह्णन् भिक्षु र्न दुष्यति ।
॥जावालः॥एकपात्रन्तु भिक्षूणां निर्द्दिष्टं फलमुत्तमम् ॥
नैव दोषो द्विपात्रेण अशक्तौ व्याधिपीडिते । इति
॥आश्वलायनः॥उपावृत्त स्ततो भैक्षादूगत्वा तीर्थमकर्द्दम
प्रक्षाल्यांतर्हिते देशे भैक्षपात्रं विधायतु ।
मृत्तोयेन पृथक् पादौ हस्तौ प्रक्षालयेदथ ॥७
आचम्याथ त्रिराचम्य प्राणांस्तु पुनराचमेत् ।
आपोशनविधिं कृत्वा पञ्च प्राणाहुतीः परम् ॥८
केशकीटादिभिर्व्याप्तं पिण्डमुत्सृज्य दूरतः ।
हस्तं प्रक्षाल्य भस्माथ क्षिप्त्वा श्नीयात्ततः पुनः ॥९
केशादि मुख संलग्नं क्षिप्त्वा ग्रासन्तु तत् क्षणात् ।
अपां द्वादश गण्डूषैः क्षाल्य संभोजनं ततः ॥१०
वामनाङ्गेन संसक्तं निधायैव कमण्डलुम्इति ।
॥विष्णुः॥ सर्व्वेषामेव भिक्षूणां त्यक्तं सर्व्वममत्वतः॥
अतैजसानि पात्राणि भुक्त्यर्थं क्लृप्तवान् मनुः ।
॥मनुः॥ एककालं चरेदू भैक्षं न प्रसह्येतविस्तरम् ॥१२

भैक्ष्ये प्रसक्तोहि यति र्विषयेष्वपि सज्जति ।
॥ वौधायनः॥ पादौ प्रक्षाल्याचम्य त्रीन् प्राणायामान् धारयित्वा भैक्ष्यमोमिति वारिणा संप्रोक्ष्य दक्षिणेन संस्पृश्य प्रणवेनाभिमन्त्र्याश्नीयादित्यर्थः ॥ यमः॥
प्रोक्षितं प्रणवेनैव हुतमध्यात्मिकादिषु ।
शरीरं व्रणवत् पश्येदन्नन्तु व्रणलेपवत् ॥१॥
॥यतिधर्म्म समुच्चये॥गंगातोयाभिषिक्तान्तु भिक्षांयोऽश्नाति योगवित् । तस्वक्रतुशतैरिष्टा फलं प्राप्नोति मानवः ॥२
सान्तपन सहस्रन्तु चान्द्रायणशतानि च ।
अश्वमेधाष्टकञ्चैव तद्विष्णोः शेषमुत्तमम् ॥३
विष्णोः शेषमुत्तमं॥विष्णो र्नैवेद्य संशुद्धं मुनिभिर्भोज्यमुच्यते। अन्यदेवस्य नैवेद्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥४
गङ्गातोयञ्च भैक्ष्यञ्च वैष्णवान्नं विशेषतः ।
आनखान् मोचयेत् पापं मन्त्रपूतहवि र्यथा ॥ इति ॥ ५
छान्दोग्य श्रुतिः॥ आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः सत्त्व शुद्धौ ध्रुवास्मृतिः स्मृति लाभे सर्व्वग्रन्थीनां विप्रमोक्ष इति ॥६
हारीतः॥गुरवे निवेदित मनुज्ञात ममृतं समितं प्राहुर्यदश्नीयात् ब्रह्मचारीति॥ ब्रह्मसिद्धि मवाप्नोति मोक्षसिद्धिन्तु भिक्षुकः॥७
विष्णुः ॥ भैक्ष्यं यवागु तक्रं वा पयो यावक मेव वा ।
फल मूल विपक्कं वा कण पिण्याक सक्तवः ॥ ८
इत्येते वै शुभाहारा योगिनः सिद्धिकारकाः ॥
वङ्मूलं पत्र पुष्पाणि ग्राम्यारण्यफलानि च ॥ ९
कण यावक पिण्याक शाक तक्र पयोदधि ।

भिक्षांसर्व्वरसोपेतां हिंसावर्ज्जं समाचरेत् ॥ १०
उत्तानवन्दनं कृत्वा ब्रह्मभावेन भाषितः ।
पञ्चप्राणाहुती र्द्यान्मन्त्रै स्तु श्रुतिचोदितैः ॥ ११
ॐकारपूर्व्वाः स्वाहान्ता मन्त्रै स्तै स्तत् समाचरेत् ॥
नैवाहुतीः स्पृशेद् योगी दन्तोष्ठाभ्यां कदाचन ॥ १२
न स्वादयेद्रसं तत्र जिह्वयाधर्म्मवित्क्वचित् ।
अनेन विधिना हुत्वा पञ्च प्राणाहुतीः पृथक् ॥ १३
शेषमौषधवत् प्राश्य स्थित्यर्थं श्रुतिशासनात् ॥
मृष्टामृष्टे न कुर्व्वीत रागद्वेषौ च चेतसा ॥ १४
मिताशनो भवेन्नित्यं भिक्षुर्मोक्षपरायणः ।
कामदर्पादयोदोषा न भवन्ति मिताशिनः । १५
अन्तर्जानु तथा कृत्वा बाहूपादौ तथा भुवि ।
भोजनं वै समादाय भिक्षुः सव्यकरेण तु । १६
दक्षिणेन करेणैव चिन्मयेनान्तरात्मना ॥
ध्यायन् स भोजनं कुर्य्याद् यावन्नावभृतो भवेत् ॥ १७
न स्पृशन् सव्यहस्तेन भुञ्जानोऽन्नं कदाचन ।
न पाद्यौ न शिरो वास्ति न पद्मभोजनं स्पृशेत् ॥ १८
पात्रमधि कृत्य यो विधिरुक्तः तस्यापवादमाह ॥
॥ मनुः ॥ गायत्र्या प्रोक्षितं पात्रं यतेः संस्कारवर्जितम्
तत् पात्रं यतिनात्याज्यं न भुक्त्वा च कदाचन ॥ १९
प्रणव प्रोक्षितं पात्रं यतेः संस्कार संयुतम् ।
तत् पात्रं यतिना ग्राह्यं स्वधर्म्मनिरतो भवेत् ॥ २०
अन्ये पात्रे हवि र्भुङ्क्ते हव्य कव्येष्व नुज्ञया ।

राजते ताम्रे सौवर्णे तत्रायं नास्ति वै विधिः ॥
सौवर्णेषु च पात्रेषु ताम्ररुप्यमयेषु च ।
भुञ्जन् भिक्षु र्न दुष्येत दुष्यते तत् प्रतिग्रहात् ॥ २०
भुक्त्वा पात्रं यतिर्नित्यं क्षालयेन्मन्त्र पूर्व्वकम् ।
न दुष्येत्तस्य तत् पात्रं यज्ञेषु चमसो यथा ॥ इति ॥ २१
क्रतुः ॥ अवीरा स्वैरिणी कुष्ठीगर्भ भर्त्तृद्रुहासती ॥
कन्याधात्री पुनर्भूभ्यो नाददीतोद्यतामपि ॥ १२
॥मनुः॥ न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया २२॥
नानुशासनवादाभ्यां भिक्षांलिप्सेत कर्हिचित् ।
॥ अत्रिः ॥ कुटुम्बसंकटं चैव मलेनापहृतं गृहं । २३
पीडयान्नं प्रयच्छेत तद् गृहं वर्ज्जयेद् यतिः ।
उदक्याचोदितं चान्नंद्विजान्नं शूद्रचोदितम् । २४
प्राणयज्ञेचायसे क्लृप्तं भिक्षुर्यत्नेन वर्ज्जयेत् ।
नाश्नन्ति ह्यशुचेर्देशे नाश्नन्ति वृषलीपतेः ॥ २५
स्त्रीजितान्नं नचाश्नन्ति तदन्नं वर्ज्जयेद् यतिः ॥
चिकित्सकस्य मृगयोः शल्यहर्त्तुश्च पाशिनः ॥ २६
कुलटाषण्डयोरन्न मुद्यतं संत्यजेद्यतिः ॥
श्रौत्रियान्नं नभिक्षेत श्रद्धाभक्तिवहिस्कृतम् ॥ २७
व्रात्यस्यापि गृहे भिक्षेच्छ्रद्धाभक्तिपुरस्कृतम् ।
दर्व्यादेयं घृतं चान्नं लवणं व्यञ्जनं तथा ॥ २८
अपक्कं तैलपक्क ञ्च नतु दर्व्याकदाचन ॥
हस्तदेयन्तु यद्दर्व्या दर्व्यादेयन्तु हस्ततः ॥ २९
एतद्यो ब्राह्मणोऽश्नीयात् सोऽश्नीयान्मूत्ररेतसी ॥

विष्णुपुराणे॥ यदि भैक्ष्यं समादाय पर्य्युषेद्योगवित्तमः॥
सपर्य्युषितदोषेण भिक्षु र्भवति वै कृमिः॥
तस्माद्भिक्षां समादाय पर्य्युषेन्न कदाचन॥ ३१
भिक्षार्थं प्रविशेद् ग्राममभावे वनवासिनाम्।
स्ववृत्तस्य गृहे भिक्षेन्न तु तेष्वेव नित्यशः। ३२
अभावे वहुगेहानां तेषु भिक्षेदलोलुपः॥ इति॥
देवलः॥ उदक्याशवचाण्डालचौरनग्नकपालिकान्॥३३॥
पतितान् पिशुनान् स्पृष्ट्वा भिक्षां भिक्षुः परित्यजेत्॥
एतद्व्यतिरिक्तास्पृश्यमात्रस्पर्शे परित्यजेत्। जावालः॥
भिक्षाटने च संन्यासी अमेध्यं यदि संस्पृशेत्॥३४
भिक्षां गृह्य ततः स्नात्वा प्राणायामान् षडाचरेत्।
जमदग्निः॥श्वकाक क्रोड़वेश्यादि विट्खरोष्ट्रस्पर्शनेसतिः
सभैक्ष्यस्तु जलेमग्नः शुद्धोजप्त्वाघमर्षणम्।
निमन्त्रितस्तु सन्न्यासी यदा भैक्ष्यं समाचरेत्॥ ३५
लोभात्तत्र प्रवर्त्तेत पतते न च संशयः॥
यत् किञ्चिद्दीयमानन्तु गृहिणी करसंस्थितम्॥ ३७
भिक्षां भिक्षु र्न गृह्णीत काकयोनिषु जायते।
॥अत्रिः॥ उपस्थानाद् यदा पूर्व्वं भिक्षार्थं देशिको भवेत्
न गच्छेत्तद् गृहं भिक्षु स्तदह र्वै कथञ्चन।
द्वावेवाश्रमिणौ भोज्यौ वानप्रस्थो गृही तथा॥ ३८
अभोज्यमन्न मित्येषा मितरेषान्तु लिङ्गिनाम्।
मेधातिथिः॥ ब्राह्मणक्षत्रियविशांमेध्यानां भैक्ष्यमाचरेत्
तत्राप्यसंभवे पूर्व्वादाददीतोत्तरोत्तरम्॥

द्विजाभावे तु संप्राप्ते उपवासत्रयं गते ॥ ४१
भैक्ष्यं शूद्रादपि ग्राह्यं रक्षेत् प्राणं द्विजोत्तमः ॥
भिक्षानन्तरं शेष कालं पुराणश्रवणेननयेत् । तथाचदक्षः ॥
इतिहासं पुराणाभ्यां षष्ठ सप्तमकौ नयेत् । इति ॥ ४२
॥ यतिसारसमुच्चये यदुक्तं तदाह ॥जावालः ॥
एकान्नं मधुमांसञ्च अन्नं विष्ठादिदूषितम् ।
हन्तकारञ्च नैवेद्यं प्रत्यक्षं लवणं तथा ॥१
एतान् भुक्त्वा यति र्मोहात् प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ इति
अस्यार्थः॥ एक स्वामिकमनापदि सर्व्वदा निरन्तरं न भोक्त-
व्यमित्यर्थः प्रत्यक्षं लवणमिति कृत्रिमलवणको निषेधः ॥
तथाच स्मृत्यन्तरे॥सैन्धवंलवणं यच्च यच्च सामुद्रिकंभवेत् ॥
पवित्रे परमेह्येते प्रत्यक्षेऽपिपतत्यशः ॥ इति १
गरुडपुराणे॥भिक्षु र्भिक्षां न गृह्णीयाद् यावन्नस्यात् सपिण्डनम्।
सगोत्रोऽप्यशुचि स्तावद्यावत् पिण्डं न मेलयेत् ॥२ इति॥
केचित्तु गेहपते स्तत् पत्न्या वा मृतौ सपिण्डने कृतेऽपि वर्ष
तदर्धं वा तत्रभिक्षां न कुर्व्वन्ति तन्निर्मूलत्वादुपेक्ष्यं।मेधातिथिः॥
तीर्थश्राद्धं मघाश्राद्धमष्टकापार्व्वणं तथा ।
मासिकं चाब्दिकं श्राद्धमेकोद्दिष्टं महालयम् ।
अवश्यं भिक्षुरेतानि वर्ज्जयेत् परदारवत् ॥ इति ३
॥पराशरः॥ अन्नदोषेण चित्तस्य कालुष्यं सर्व्वदा कृतं ॥
कलुषीकृतचित्तानां धर्म्मः सम्यङ् न भासते ॥४
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म्मशुभाशुभम् ।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म्म कल्पकोटिशतैरपि ॥५

पित्रोरब्दमशौचं स्यात्तदर्द्धं मातुरेवच ।
मासत्रयन्तु भार्य्यायास्तदर्द्धं भ्रातृपुत्रयोः ॥६
त्रिपक्षञ्च त्रिमासञ्च षण्मासं वत्सरं तथा ।
भ्रातृपुत्रौच भार्य्यायाः पिता माता तथैवच ॥७
एतेषां मरणे प्राप्ते भिक्षुर्भैक्षं विवर्ज्जयेत् ।
रजस्वलापतेरन्न मन्नञ्च क्षौरकर्म्मणः ॥८
दीर्घरोगयुषामन्नं सर्व्वत्र वर्जयेद् यतिः ।
शुष्कमन्नं पृथक्पाकं यो यतिभ्यः प्रयच्छति ॥६
समूढो नरकं याति तेन पापेन तत् क्षणात् ।
॥सूतकेत्वत्रिः॥सगोत्रमसगोत्रंवा यद्गृहे सूतकं भवेत्१०॥
न तावच्छुध्यते भूमिर्यावत्र स्यादनिर्दशम् ॥
ज्ञानत स्तु कुले भिक्षुर्न भिक्षेत कथञ्चन ॥११
आचरेत्तु यदाभिक्षां तदाचान्द्रायणञ्चरेत् ॥ इति

सूतकेऽपि तद्गृहे मासंमात्रं विंशति दिनमात्रं वा भिक्षां कुर्व्वन्ति तदपि निर्मूलत्वादुपेक्ष्यं ॥ यावद् वचनं वाचनिमिति न्यायेन दशदिन मात्रंवर्ज्यपुत्र प्रसूतिक विंशति रात्रिण कर्म्माणि कारयेत् ॥ स्त्री प्रसूतिंषट् रात्रेणेत्यादि स्मरणान्तु सूतिकायास्तावत् कालं कर्म्माऽनधिकारमात्रं प्रतिपादयति ॥ अन्यथा तत्र नित्याद्यनुष्ठानमपि नस्यादिति ध्येयं ॥ गृहीनित्यमनुष्ठायी यदि दाराजस्वलाः ॥ तदन्नं दुष्येत भिक्षु भैक्ष्यं समाचरेत् ॥ एवं रजस्वलायाश्चतुरहमस्पृश्यत्वं कर्म्माऽनधिकारश्च तत् प्रति पुत्रादेस्तुशुद्धत्वं श्च तद्गृहे भैक्षाचरणेऽपि नदोष इति दिक् ॥

अशक्तान् प्रत्याह । पाराशरः ॥
यतीनामातुराणान्तु वृद्धानां दीर्घरोगिणां ।
एकान्नेन न दोषोऽस्ति एकस्यैव दिने दिने ॥१२
॥क्रतुरपि॥ सजीर्णोऽति कृशोरोगी दशान्तो विकलेन्द्रियः ।
पुत्रमित्रगुरुभ्रातृ पत्नीभ्यो भैक्ष्यमाहरेत्इति ॥१३
॥स्मृत्यन्तरे॥ जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१४
नापोमूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहनकर्म्मणा ।
न वायुस्पर्शदोषेण नान्नदोषेण मस्करी ॥१५
॥लिप्यते इति शेषः ॥ ब्रह्मपुराणे ॥
प्राणयात्रानिमित्तञ्च व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।
काले प्रशस्तग्रामेषु भिक्षार्थं पर्य्यटेद् गृहान् ॥१६
अलाभे न विषादी स्याल्लाभत्वे नतु हर्षयेत् ॥
प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥१७
अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि वध्यते ॥
॥कृत्वाग्निहोत्रं स्वशरीरसंस्थं शरीरमग्निंस्वमुखे जुहोति ॥
विप्रस्तु भैक्ष्योपगतै र्हविर्भिश्चिताग्निना सव्रजति स्म लोकान्॥
॥पद्मपुराणे॥ भैक्ष्येण वर्त्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेत् क्वचित्।
यस्तुमोहेन वान्यस्मादेकान्नादी भवेद् यतिः ॥१८
नतस्य निष्कृतिः काचिद्धर्म्मशास्त्रेषु दृश्यते ।
एवन्त्वाश्रमनिष्ठानां यतीनां नियतात्मनाम् ॥१९
भैक्ष्येण वर्त्तनं प्रोक्तं फलमूलैरथापिवा ॥
एककालं चरेद्भैक्ष्यं न प्रसज्येत विस्तरम् ॥२०

भैक्ष्ये प्रसक्तोहि यति र्विषयेष्वपि मज्जति ॥
सप्तागारं चरेद्भैक्ष्य मलाभे न पुनश्चरेत् ॥२१
गोदोहमात्रं तिष्ठेत कालं भिक्षुरधोमुखः ।
भिक्षेत्युक्त्वासकृत्तुष्णी मश्नीयाद्वाग्यतः शुचिः ॥२२
प्रक्षाल्य पाणिपादौच समाचम्य यथा विधिः ॥
आदित्ये दर्शयित्वान्नं भुञ्जीत प्राङ्मुखोनरः ॥२३
हुत्वाप्राणाहुतीः पञ्च ग्रासानष्टौ समाहितः ।
आचम्य देवं ब्रह्माणं ध्यायेत परमेश्वरम् ॥ इति २४
॥विष्णुपुराणे॥ प्राणयात्रा निमित्तञ्च व्यङ्गारे भुक्तवज्जना
काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थं पर्य्यटेद् गृहान् ॥२५
भिक्षाभुजश्च ये केचित् परिव्राट् ब्रह्मचारिणः ।
तेऽप्यत्रैव प्रतिष्ठन्ते गार्हस्थं तेनवैपरं ॥ इति २६
॥ भागवते एकादशस्कन्धे ॥
भिक्षां चतुर्षु वर्णेषु विगर्ह्यान् वर्ज्जयंश्चरेत् ॥
सप्तागारान् असंक्लृप्तां स्तुष्येल्लब्धेन तावता ॥२७
वहिर्ज्जलाशयं गत्वा तत्राऽपःस्पृश्यवाग्यतः ।
विभज्यपावितं शेषं भुञ्जीता शेषमाहृतम् ॥२८
मधुकर महासर्पौ लोकेऽस्मिन्नो गुरूत्तमौ ।
वैराग्यं परितोषश्च प्राप्ता यच्छिक्षया वयम् ॥२६
क्वचिदल्पं क्वचिद्भूरि भुञ्जेऽन्नं स्वाद्वस्वादु वा ।
क्वचिद्भूरि गुणोपेतं गुणहीन मुत क्वचित् । ४०
श्रद्धयोपाहृतं क्वापि कदाचिन्मानवर्ज्जितम् ।
भुञ्जे भुक्त्वाथ कस्मिंश्चिद्दिवानक्तं यदृच्छया । ४१

कौपीनयुगलं वासः कन्थां शीतनिवारिणीम् ।
पादुके चापि गृह्णीयात् कुर्य्यान्नान्यस्य संग्रहम् ।- . ४२
दण्डात्मनोस्तु संयोगः सर्व्वदैव विधीयते ।
न दण्डेन विना गच्छेदिषुक्षेपत्रयं बुधः ॥ इति । ४३
प्रायश्चित्तमपि दण्डनाशेप्राणायाम शतंस्मर्य्यतेदण्डत्यागेशतं
चरेत्॥इति॥अतएव ज्ञानहीनस्ययते र्भिक्षानियममाह॥मनुः॥
४ नचोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया ।
नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥१
एककालं चरेद्भैक्ष्यं न प्रसज्जेत विस्तरे ।
भैक्ष्ये प्रसक्तो हि यति र्विषयेष्वपि मज्जति ॥२
इति ॥ ज्ञानाभ्यासिनंप्रति त्वेवं स्मर्य्यते ॥
एकवारं द्विवारं वा भुञ्जीत परहंसकः ।
येन केन प्रकारेण ज्ञानाभ्यासी भवेत् सदा ॥ इति ।३
आशादिशस्ता एवाम्बरं वस्त्रमाच्छादनं यस्य असा वाशाम्वरः॥
॥ यत्तु स्मृति वचनं॥ जानोरूर्द्धमधो नाभेःपरिधायैक मम्बरं।
द्वितीय मुत्तरं वासः परिधाय गृहानटेत् ॥ इति ॥४
स्मृत्यन्तरे ॥ योभवेत् पूर्व्व सन्न्यासी तुल्यो वै धर्म्मतो यदि।
तस्मै प्रणामः कर्त्तव्यो नेतराय कदाचन ॥५॥
यत्तुदेव पूजायां निवन्धे स्मर्य्यते॥ भिक्षाटनं जपःशौचं स्नानं
ध्यानं सुरार्च्चनं।कर्त्तव्यानि षडेतानि सर्व्वथा नृप दण्डवत्।इति।६
तदेवाभिप्रेत्य परमहंसविषये गौडपादाचार्य्या आहुः ॥
निःस्तुतिर्निर्नमस्कारो निःस्वधाकार एव च ।
चलाचलनिकेतश्चयति र्यादृच्छिको भवेत् ॥७

॥ यमः॥ हिरण्मयानिशात्राणि कृष्णायसमयानि च।
यतीनां नान्यपात्राणि वर्ज्जयेत्तानि भिक्षुकः ॥८
।मनुसंहितायां।अतैजसानि पात्राणि तस्य स्यु र्निर्व्रणानि
तेषां मृद्भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥६
अलाबुदारुपात्रं वा मृण्मयं वैणवं तथा।
एतानि यतिपात्राणि मनुःस्वायम्भुवो ब्रवीत् ॥१०
॥ बौधायनोऽपि॥स्वयमाहृतपर्णेषु स्वयंशीर्णेषु वा पुनः
भुञ्जीत न वटाश्वत्थ करञ्जनाञ्ज पर्णके ॥११
आपद्यपि न कांस्येषु मलाशी कांस्यभोजने ॥
सौवर्णेराजतेताम्रे मृण्मये त्रपुसीसयोः ॥१२
अग्निपुराणे ॥ विधूमे न्यस्तमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने।
वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यति श्चरेत् ॥१३
माधूकरमसंक्लृप्तं प्राक्प्रणीतमयाचितं।
तात्कालिकञ्चोपपन्नं भैक्ष्यंञ्चात्रिविधंस्मृतं ॥१४
पाणिपात्री भवेद्वापि पत्रे पात्रं समाचरेत्।
अवेक्षेत गतिं नृणां कर्म्मदोषसमुद्भवाम् ॥१५
ब्रह्म वैवर्त्त पुराणे॥न याचेतचमिष्टान्नं नकुर्य्यात् कोपमेवच
न धनग्रहणं कुर्य्यादेकवासा निरीहितः ॥१६
अभक्ष्यं ब्राह्मणानाञ्च वैष्णवानां विशेषतः।
अनिवेद्यं हरेरेव यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।
भैक्ष्यनियममाह कूर्म्मपुराणे ॥ व्यास उवाच ॥
एवं स्वाश्रमनिष्ठानां यतीनां नियतात्मनाम्।
भैक्ष्येण वर्त्तनं प्रोक्तं फलमूलैरथापिवा ॥१८

एककालं चरेद्भैक्ष्यं न प्रसज्येत विस्तरे ।
भैक्ष्ये प्रसक्तोहि यति र्विषयेष्वपि सज्जते ॥१९
सप्तागारांश्चरेद्भैक्ष्य मलाभेतु पुनश्चरेत् ।
प्रक्षाल्य पात्रे भुञ्जीत अद्भिः प्रक्षालयेत् पुनः ॥२०
अथवाऽन्यदुपादाय पात्रे भुञ्जीत नित्यशः ।
भुक्त्वातत् संसृजेत् पात्रं यात्रामात्रमलोलुपः ॥२१
विधूमेसन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ॥
वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥२२
॥ अस्यार्थः ॥ विगताः शान्तानिर्व्वाणा अङ्गारा यस्मिन् भुक्तवन्तोजना यस्मिन् तस्मिन् काले प्रशस्ताः श्रेष्ठा त्रयोवर्णायेतेषाम् ॥ इति ॥ कूर्म्मपुराणे ॥
गोदोहमात्रं तिष्ठेत कालं भिक्षुरधोमुखः ॥
भिक्षेत्युक्त्वा सकृत्तूष्णी मश्नीयाद् वाग्यतः शुचिः ॥२३
प्रक्षाल्य पाणिपादौच समाचम्य यथाविधि ।
आदित्ये दर्शयित्वान्नं भुञ्जीत प्राङ्मुखो नरः ॥२४
हुत्वा प्राणाहुतीः पञ्च ग्रासानष्टौ समाहतः ।
आचम्य देवं ब्रह्माणं ध्यायीत परमेश्वरम् ॥२५
अलावुपात्रं दार्व्वञ्च मृण्मयं वैणवं तथा ।
चत्वार्य्येतानि पात्राणि मनुराह प्रजापतिः ॥२६
प्राग्रात्रे पररात्रेच मध्यरात्रे तथैवच ।
सन्ध्यास्वग्निं विशेषेण चिन्तयेन्नित्यमीश्वरमिति ॥२७
काशीखण्डे यतीनां भिक्षाटनं निरुपयति स्कन्दपुराणे ॥
एककालं चरेद्भैक्ष्यं न कुर्य्यात्तत्र विस्तरम् ।

विधूमेसन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्त वज्जने ॥२८
वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं चरेद् यतिः ।
अल्पाहारोरहःस्थायीत्विन्द्रियार्थेष्वलोलुपः ॥२९
रागद्वेषविनिर्मुक्तो भिक्षुर्मोक्षाय कल्पते ॥
करपात्रीतिविख्यातो भिक्षापात्रविवर्ज्जितः ॥३०
तेषां शतगुणं पुण्यं भवत्येव दिनेदिने ॥इति
॥बृहद्धर्म्मपुराणे॥ एककालं चरेद्भैक्ष्यं न प्रसज्येत विस्तो
भैक्ष्ये प्रसक्तो हियति विषयेष्वपि सज्जते ॥
विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ॥३२
वृत्तेशरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥
अतिपूजां तथा लाभं गौरवं निन्दनं तथा ॥
इच्छन् यतिर्याति पापमिन्द्रियाणां सुखस्पृहाम् ।
निमन्त्रितो ब्राह्मणेन भिक्षां कुर्व्वीत वै यतिः ॥३४
अनिमन्त्रणतो वापि गृहस्थैः पूजितो भवेत् ॥
प्राणायामै र्देहदोषान् धारणाभिश्च किल्विषम् ॥३५
प्रत्याहारेण संस्पर्शान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥
गृहस्थस्य गृहेतिष्ठेद्गोदोहमात्रकालतः ॥३६
तेनदत्तञ्च भुञ्जीत मधुमांसविवर्ज्जितम् ॥
त्यजेदसत्कथां नित्यं क्रीडाञ्च परनिन्दनम् ॥३७
तीर्थसेवादेवपूजादिभिःकालं प्रपूरयेत् ॥
अयं भिक्षोर्विधिः प्रोक्तो जाबाले तुभ्यमुत्तमः ॥३८
ध्यानिकं सर्व्वमेवैतद् यदेतदभिशब्दितम् ।
गृहस्थप्रभवद्वारा आश्रमाः सर्व्व एवहि ॥३९

सर्व्वेषामाश्रमाणांहि गृहस्थः श्रेष्ठ उच्यते ॥
तेषांहि सेवयागेही तद्गतिं समवाप्नुयात् ॥४०
॥अत्रिसंहितायां॥ ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः॥
अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षडेते भिक्षुकाः स्मृताः ॥४१
यस्तु भोजनशालाया मासनस्थ उपस्पृशेत् ।
तस्यान्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥४२
पात्रोपरिस्थितं पात्रं यः संस्थाप्य उपस्पृशेत् ।
तस्यान्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ॥४३
हस्तं प्रक्षाल्य यस्त्वापः पिवेद् भुक्त्वा द्विजोत्तमः ।
तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशाः पितरो गताः इति ४४
॥परमहंसानां भिक्षाटनमाह॥ आश्रमोपनिषदि ॥ अप्य-
न्नमात्राहाराश्चातुर्व्वर्ण्ये भैक्षाचर्य्यं चरन्त आत्मानं मोक्ष-
यन्त इति ॥ क्रतुः ॥
विनादण्डोदपात्रन्तु न गच्छेद् यतिसत्तमः ॥
भिक्षाकाले दण्डमेकं नोदपात्रं कदाचन ॥१
वहिर्दण्डं प्रतिष्ठाप्य गृह्णानः शोडशैवतु ॥
अन्नं भैक्ष्यं प्राणयात्रामात्रच इतिशेषः ।
अत्रइषुक्षेपत्रयादित इत्युक्तिवशात्तावन्मध्ये दण्डं विनैव
भिक्षाचरणेऽपिन दोष इति लभ्यते ॥ आपस्तम्बः ॥
श्राद्धभोजी यतिर्नित्यमाशु गच्छति शूद्रताम् ।
तादृशं कश्मलंदृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥२
निमन्त्रितस्तु सन्न्यासी यदा भैक्ष्यं समाचरेत् ॥
लोभातत्र प्रवर्त्तेत पततेयेवन संशयः ॥३

यत् किञ्चिद्दीयमानन्तु गृहीतकरसंस्थितम् ।
भैक्ष्यं भिक्षुर्न गृह्णीयात् काकयोनिषु जायते ॥४
अत्रिसंहितायां॥उपस्थानाद् यदापूर्व्वं भिक्षार्थं देशितोभवे
नगच्छेत्तद्गृहं भिक्षुस्तदहर्वै कथञ्चन ॥५
उपस्थानात् भिक्षाप्राक्कालीनसूर्य्योपस्थानात् ॥
द्वावेवाश्रमिणौ भोज्यौवानप्रस्थो गृही तथा ।
अभोज्यमन्न मन्येषा मितरेषान्तु लिङ्गिनां ॥६
॥मेधातिथिः॥ ब्राह्मणात्क्षत्रियविशां मेध्यानां भैक्ष्य माहरेत्
तत्राप्यभावे पूर्व्वस्य आददीतोत्तरोत्तरात् ॥७
द्विजाभावेतु संप्राप्ते उपवासद्वये गते ॥
भैक्ष्यंशूद्रादपिग्राह्यं रक्षेत् प्राणान् द्विजोत्तमः ॥८
॥जावालः॥सन्न्यासं कुरुतेयस्तु श्राद्धं तस्य विधीयते ॥
तदन्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥९
॥अथप्रसङ्गात् पात्राण्यऽपि विविच्यन्ते॥याज्ञवल्क्यः॥
यतिपात्राणिमृद्वेणुदार्व्वलाबुमयानिच ।
सलिलैः शुद्धिरेतेषां गोवालैश्चावघर्षणम् १०
इति अल्पोपघाते गोवालैर्घर्षणं चाण्डालाद्युपघातेतुत्यागए
स्मृत्यन्तरेपि॥करे कर्पटकेचैव आयसे ताम्रभाजने ।
भुञ्जन् भिक्षुर्न दुष्येत दुष्यन्ते गृहमेधिनः ॥११
तार्णपात्रं तथा क्षौमं पात्रंपर्णपुटन्तथा ।
उक्तानि यतिपात्राणि ब्रह्मणा विश्वयोनिनेति ॥१२
अत्रमृद्दारुमयादीनि तार्णपर्णपुटादीनिच यथायथं जल
भिक्षा भोजनोपयोगीनीति वोध्यं ॥ पराशरमाधवीये ॥

बौधायनः॥ विधूमेसन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ॥
काले परान्हभूयिष्ठे यति भिक्षाटनं चरेत् ॥१२
उर्द्ध्वजानो रधोनाभेः परिधायैक मम्बरम्।
द्वितीयमुत्तरं वासः पात्रीदण्डीच वाग्यतः ॥१३
सव्येचादायपात्रन्तु त्रिदण्डं दक्षिणेकरे ।
उपतिष्ठेत्तु सूर्य्यन्तु ध्यात्वा चैकत्वमात्मनः ॥१४
उक्त्वाविराज संमन्त्रमात्म कृष्णे प्रदक्षिणाम् ।
कृत्वापुनर्जपित्वातुयतेः पन्थान इत्यपि ॥१५
योसौ विश्वेश आदित्ये पुरुषोऽन्त हृदिस्थितः ॥
सोऽहं नारायणो देव इति ध्यात्वा प्रणम्यताम् ॥१६
भिक्षापात्रविशुद्ध्यर्थं उपमुच्याप्युपानहौ ।
ततो ग्रामं व्रजेन्मन्दं युगमात्रावलोककः ॥१७
ध्यायं भूरि तथाश्विरा इदञ्च समुदीरयेत् ।
विष्णुस्तिर्य्यगधोर्द्ध्वमे वैकुण्ठो विदिशं दिशं ॥१८
पातुमां सर्व्वतोरामो धन्वीचक्रीच केशवः ॥
अभिगम्य गृहाद् भिक्षां भवतूपूर्व्वं प्रचोदयेत् ॥१९
गोदोहंमात्रं तिष्ठेच्च वाग्यतोऽधोमुखस्तथा ॥
दृष्ट्वा भिक्षां दृष्टिपूतां दातुश्च करसंस्थिताम् ॥२०
दण्डञ्च दक्षिणेत्वङ्के ततः सन्धाय बाहुना ।
उत्पाटयेच्च कवचं दक्षिणेन करेण सः ॥२१
पात्रं वामकरे कुर्य्यात् शेषयेद्दक्षिणेन तु ॥
प्राणयात्रिकमन्नन्तु भिक्षेत विगतस्पृहः ॥२२
॥ अत्र त्रिदण्ड मित्येक दण्डस्या प्युपलक्षणं

त्रित्वस्योद्देशविशेषणतया गृहैकत्ववदविवक्षितत्वात् ॥
भवत् पूर्व्वं प्रचोदये दित्यनेन च भवति भवन्
भिक्षांदेहीति वदेत् । विष्णुरपि संस्कृत्य प्रणवेना
भिक्षां पात्रे यथा विधि भास्कराभिमुखो भूत्वा संस्मरे
मनसाहरिं । सव्येचादाय पात्रन्तु दण्डं वैदक्षिणेकरे
भिक्षार्थं प्रविशेद् ग्रामं रागद्वेषै र्विवर्जितः ॥ इति । २३
माधूकरादि प्रागुक्ता पञ्च भिक्षाः मृदादि वाह्यपात्र संभ्र
वत एव भवन्ति नतु कर पात्रिणः तथोदरपात्रिणश्च त
च स्कान्दे ॥ कर पात्री ति विख्यातो वाह्य पात्र विवर्जित
तस्य पुण्यं शत गुणं भवत्येव दिने दिने ॥२४
मुण्डकेपि । पाणि पात्रं उदरपात्रं वा आदाय
गृहे गृहे विशेत् कवल मात्रं गृह्णीयान्ना परं
गृह्णीयात् पदे पदे भुञ्जान इति । मध्येप्याचमन पक्षमा
॥ गौतमः ॥ हविःप्राश्य यथाचम्य निराहारो भवेद्गृही
प्राश्याचम्य तथा भिक्षु र्निराहारो गृहे गृहे ॥२६
पात्रमस्य भवेत् पाणि स्तेन नित्यं गृहानटेत् ।
उदरं पूरणं कृत्वा सचैलं स्नान माचरेत् ॥२७
आपद्यपि न भोक्तव्यं एकान्नं पाणिपात्रिणा ।
लौल्या त्तु यदि भुञ्जीत प्राणायाम शतं चरे दिति ॥२८
अत्र सचैलं स्नानं अस्पृश्य स्पर्श सन्देहादि निमित्तकं न
कर भिक्षाशन निमित्तकं तस्य माधूकरापेक्षयाप्युत्तमत्वा
भिधानादिति शिष्टाः ॥एत न्मते प्रति गृहमा दावन्ते चा
मनस्या नुष्ठिते रस कृद्भिक्षाशनं पूर्व्व मते तुप्रथम गृह एव

द्वावाचमनं चरमगृह एव चान्ते आचमनं ॥ इति सकृदेव भिक्षाशिनः॥ इति भेदः ॥ उदरपात्रिणस्तुयतिधर्म्मसमुच्चये विशेषः। आस्येन तु सदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः॥ इति २९ करपात्र्यादिसंज्ञाच पाचकपाठकादिवत् यौगिकी ॥

करेणैव पात्री उदरेणैव पात्रीति करोदरभिक्षाकाले ॐ हिं इत्यध्यक्षरा मुपनिषदं त्रिरावृतां पठेदित्युक्त मारुणिक-श्रुतौ ॥ यतयो भिक्षार्थंग्रामं प्रविशन्ति पाणिपात्र मुदर पात्रं वा ॐ हिं ॐ हिं एतदुपनिषदं न्यसेद्विद्वान् य एवं वेद ॥ इति ॥ ३० ॥ पाणि पात्र मुदरपात्रं वेत्यनेन पात्रस्याभावः सूचितः एतेन करोदर पात्रिणो भिक्षाकाले दण्ड धारण मपि प्रत्युक्तं। तयो र्विशेषतो भिक्षा विधा-यक वाक्येषु तत् काले दण्ड धारणस्यानुक्त त्वात्। सामा-न्यतो भिक्षा विधायक वाक्येषुच तत् काले दक्षिणकरेणाच दण्ड धारणस्योक्त त्वेन मध्ये चा चमनाभाव पक्षे दण्ड-स्योच्छिष्टदोषप्रसङ्गाच्च किञ्चात्र वाह्यपात्राभावेन तत्-सहचरितदण्डस्याप्यभाव इति ॥ विश्वेश्वरपद्धता व-च्येव मेव सिद्ध मिति करोदर पात्रिणां वाह्यपात्राभावा-न्माधुकरादिभिक्षा न सम्भवतीति। तस्माद्दण्ड पात्र संग्र-हवतां न करोदरपात्रभिक्षा करोदरपात्रिणाञ्च न माधु-कर भिक्षा। पात्रभेदापत्तेरित्युक्तं ॥

गृहस्थः पाकभेदेन पात्रभेदेन मस्करी ॥
नारी पुरुषभेदेन रौरवं नरकं व्रजेत् ॥३१

इति स्मृतिवाक्यमतः पात्रभेदो व्याख्यातः॥ त्रिविधं यति-

पात्रं । वाह्यमेकं मृदू वैणवादि । अपरं करपात्रं ॥ अन्यच्चो
दरपात्रमिति । एतन्नयाणामेकपात्रस्वीकारेणापरपात्रसं
कारः अतएव पात्रमस्य भवेत् पाणिस्तेन नित्यं गृहा
चरेदिति शास्त्रं सङ्गच्छते । नचपात्रभेदवाक्येवाह्यपात्रं
दस्य वौधायनादिभि रुक्तत्वात्॥एकस्यैव पात्रस्य यावज्जी
मवस्थाना संभवाच्चेति । इत्थं विलोचित पात्र भेदस्याश
प्राति अपवादमाह ॥ जावालः ॥ एक पात्रेणभिक्षूणां
द्दिष्टंफलमुत्तमं । नैव दोषोद्विपात्रेण ह्यशक्ते व्याधि पीा
॥३२ इति एव मुक्त प्रकारेण माधुकरभिक्षां विधाय भो
व्यं तदाह आश्वलायनः । उपावृत्तस्ततो भैक्ष्यादूगत्वा
र्थमकर्द्दमं । प्रक्षाल्यान्तर्हिते देशे भिक्षापात्रं निधायतु॥
मृत्तोयेन पृथक्पादौ हस्तौ प्रक्षालयेत्ततः । केश कीटादि
व्यार्पितं पिण्ड मुत्सृज्य यत्नतः । हस्तं प्रक्षाल्य भस्म
क्षिप्त्वाश्नीयात्ततः पर मिति ३४ माधवीये नृसिंह पुरा
ततो निवर्त्य तत्पात्रं संस्थाप्याचम्य संयमी
चतुरङ्गुलं प्रक्षाल्य ग्रासमात्रं समाहितः ॥३५
सर्व्वव्यञ्जनसंयुक्तं पृथक्पात्रं निवेदयेत् ।
सूर्य्यादिदेवभूतेभ्यो दत्वान्तं प्रोक्ष्यवारिणा ॥३६
भुञ्जीतपर्णपुटके पात्रेवा वाग्यतो यतिः ।
इति पात्रेवा ताम्रादि पात्रेवा अत्रकेचित् भिक्षांमाधू
मश्नन् कुटीचकादि देवतानैवेद्यं समर्पयेत्।परमहंसस्तु
ग्रासादाच्छादनादन्यन्न गृह्णीयात् कथञ्चन ॥३७
यावदाहारं तावत् प्रतिगृह्णीत नान्यथेति ॥

स्मृतेरपीत्याहुः ॥ तच्चिन्त्यं सर्व्वसाधारणस्यान्न वाक्यस्य परमहंस मात्र विषयत्वे नियामका भावात्। किञ्चैवं परम-हंसं प्रत्यापि शालग्रामादि सुरार्चनस्य स्मृत्यादिषूक्तत्वेन तद्विरोधापत्तेः नैवेद्य समर्पणस्यापि सुरार्चनान्तःपातित्वात्। तस्मादिदं वाक्यं सर्व्वेषामपि यतीनामधिक संग्रह निषेधक-मितितत्वं ॥ कूर्म्म पुराणेऽपि ॥ आदित्ये दर्शयित्वान्नं भुञ्जीत प्राङ् मुखोत्वरः॥हुत्वाप्राणाहुतीः पञ्च ग्रासानष्टौ समाहितः॥३८ आचम्य देवं ब्रह्मण्यं ध्यायीत परमेश्वरं।इति ब्रह्मण्यं ब्रह्मणे ब्राह्मणाय हितं श्रेयस्करं देवं स्वप्रकाश-चैतन्य स्वरुपं परमेश्वरं जगदुत्पत्ति स्थितिलय हेतु भूतं ध्यायीत सर्व्वोत् कृष्टत्वेन स्वाभिन्नत्वेन वा चिन्तयेदित्यर्थः॥ विश्वेश्वरपद्धतौ विष्णुः ॥

उत्तानं वदनं कृत्वा ब्रह्मभावेन भावितः ॥३९

पञ्च प्राणाहुतीरश्नन् मन्त्रैस्तु श्रुतिचोदितैः ।

ॐ कारः पुर्व्वाः स्वाहान्ता मन्त्रास्तैस्तत् समाचरेत् ॥४०

नैवाहुतीः स्पृशेद्दुयोगी दन्तौष्ठाभ्यां कदाचन ।

नस्वादयेद्रसं तत्र जिव्हया कर्म्मवित् क्वचित् ॥४१

अनेनविधिनाहुत्वा पञ्चप्राणाहुती र्यतिः ।

शेषमौषधवत् प्राश्यास्थित्यर्थं स्मृतिशासनात् ॥इति ॥४२

॥अत्रब्रह्म भावेन भावितः इत्यनेन ।

अन्नं ब्रह्म रसो विष्णु र्भोक्ता देवो महेश्वरः ।

एवं ध्यात्वा द्विजो भुंक्ते सोऽन्नदोषैर्न लिप्यते ॥४३

इति मन्त्रः स्मारितः॥ अत्रायं क्रमः ॥

प्रणावेनान्नं संप्रोद्य प्रणावेन सत्यं तत्त्वेन
इति मन्त्रेण वा परिषिच्यान्नं ब्रह्मेति मंत्रेणाभिमन्त्र्या
न्नोपस्तरणार्थ ममृतोपस्तरण मसिस्वाहेत्यपः पीत्
ॐ प्राणायस्वाहा इत्यादिपञ्च प्राणाहुती हुत्वा शेषमन्
भुक्त्वा ततोऽन्नस्य प्रत्युपस्तरणार्थ ममृतापिधानमसि स्
हेत्यपः पीत्वा हस्तौमुखञ्च मृत्तोयाभ्यां संशोध्य पा
प्रक्षाल्य अष्टौ अङ्ग प्रक्षाल्यनि द्विराचम्य प्राण
यामत्रयं कुर्य्यात् । अत्र इदमपि वोध्यं ॥ पञ्चप्राणाहु
रद्यादिति हिउत्सर्गापवादन्यायेनसन्न्यासिनं प्रति प्राप
ग्निहोत्राभ्यनुज्ञा तथाच तदङ्गभूतोवलिरपि तत्र प्राप्ने
प्रधान विधे रङ्गापेक्षकत्वस्य सर्व्वत्र सिद्धत्वादिति । स्मृत्य
सारेतु ॥ भूर्भुवः स्वरिति व्याहृतीभि र्व्यस्त समस्ताभिर्न
ऽन्ताभिर्वलिचतुष्टयं स्पष्ट मेव लिखितम् ॥ यतीनांभोज
काले विशेषमाह ॥ विश्वेश्वर पद्धतौ ॥ मृद्वार्य्यन्नं दि
दाय रात्रौ शौचं भुजिं चरेत् इत्यादि पूर्व्वोक्तं वोद्धव्
नक्तभोजी भवेद्भिक्षुरिति तत्र नक्तेतिन रात्रिपरं किन्तु दि
सस्याष्टमभागपरं ॥ तदुक्तं धर्म्मनिवन्धेषु ॥ दिवसस्य
मेभागे यतिनक्तं विधीयते । इतिकैश्चिदुक्तं॥ वस्तुतस्तुभ
नक्तशब्दो रात्रेः प्रथमयामपर एव निशायाः प्रथमोष
इति प्रकृत वाक्य शेषानुरोधात् ॥ धर्म्म निवन्ध वा
कुटीचकादि विषयं । अशक्त विषयं वेति न विरोध
ध्येयं ॥ मोक्ष धर्म्मेति । निवृत्ति धर्म्मानु शासनादित्य
प्रायेण दिवसे ज्ञानतत्साधनश्रवणाद्यभ्यासं विधाय

शेषेरात्रिप्रथमयामे वा भिक्षाशनं कार्य्यमिति निवृत्तिधर्म्मः ॥ मनुसंहितायां ॥ नक्तं वान्नं समश्नीयाद्दिवा वाहृत्य शक्तिमान्। चतुर्थ कालिकोवास्यात् स्याद्वाप्यष्टमकालिकः ॥ इति ४५ अयञ्च नक्तादिनियमो निवृत्ति धर्म्मिणामेव ॥ चतुराश्रमेषु द्वावेव निवृत्तिधर्म्माणौ वानप्रस्थो यतिश्चेति प्रसिद्धं ॥ अथ भोजनानन्तरं सति दिवसशेषे पुराणश्रवणं कार्य्यं ॥ तथाच दक्षः॥ इतिहास पुराणाभ्यां षष्ट सप्तमकौ नयेत् ॥ अङ्गिराः ॥

पुराण श्रवणंभक्तिं मूर्खस्यापि प्रवर्त्तयेत् ।
भक्त्याविच्छिन्नया मुक्तिस्तस्मात् पौराणमभ्यसेत् ॥४६
तदभ्यासात् परंब्रह्मभावमापद्यते मुनिः ।
नैवेद्यार्थंमहाविष्णोः साधुमाधुकरं शुचि ॥४७
आनयिष्यामि भगवन् भुक्तिमुक्तिफलप्रदं ॥
परान्नविमुखो भिक्षुः परंज्ञान मवाप्नुयात् ॥४८
तस्मात् परित्यजेद्भिक्षुः परान्नं नृपदण्डवत् ॥
परान्नं नैव गृह्णीयाद्भिक्षुः स्वाश्रमपालकः ॥४९
परान्नवर्ज्जनादेव भिक्षु र्भिक्षुरिति स्मृतः ॥इति॥

विश्वेश्वरपद्धतौ अथेदानीं यतीनां माधुकरादि व्यतिरिक्तान्ने दोषदर्शकानि लिख्यन्ते ॥आदित्य पुराणे ॥

भेदयेद्वावर्त्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेत्क्वचित् ॥
अप्येकपंक्त्यानाश्नीयात् संयुक्तः स जनैरपि ॥
कोहि जानाति किंकस्य प्रच्छन्नं पातकं भवेत् ॥ १
भस्मस्तम्भजलद्वारमार्गैः पंक्तिश्च भेदयेत् ॥

एकान्नादी भवेद् यस्तु कदाचिल्लम्पटो यतिः ॥५२

निष्कृतिर्नैव तस्यास्ति धर्म्मशास्त्रेषु सर्व्वदा ॥

परान्नं नैव गृह्णीया द्भिक्षुः स्वाश्रम पालकः ॥५३

परान्नवर्ज्जनादेव भिक्षु भिक्षुरिति स्मृतः ॥

परान्नविमुखोभिक्षुः परं ज्ञानमवाप्नुयात् ॥

अस्यार्थः॥परान्नं नाम माधुकरं विहायैकत्र भिक्षाकरणं॥

यदि श्राद्धे तथैकान्ने रागाद्यस्तु प्रवर्त्तते ।

नाममात्रे भवेद्भिक्षुः सएव परवञ्चकः ॥५५

तस्मात् परित्यजेद्भिक्षुः परान्नं नृपदण्डवत् ।

श्रवणंब्रह्मचर्य्यञ्च वैराग्यं ज्ञानमेवच ॥

चत्वार्य्येतानि नश्यन्ति परान्ननिरतस्य वै ॥ इति५६

अथ सन्न्यासिनां श्राद्ध भोजन निषेध प्रकरणं महाभा

नारदः ॥

हव्यं कव्यञ्च राजेन्द्र नाश्नीयादात्मवान् यतिः ।

हव्यकव्यपरो भिक्षुः पतत्येव न संशयः ॥१

॥आपस्तम्भः॥ श्राद्धभोजीयति र्नित्यं आशु गच्छति

ताम् तादृशं कश्मलं दृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत् ॥२

॥जैमिनिः॥श्राद्धान्नं यस्य कुक्षौतु मुहूर्त्त मपि वर्त्तते॥

भिक्षोश्चत्वारि नश्यन्ति आयुः प्रज्ञायशो वलम् ॥३

॥मेधातिथिः॥ भवतुस्त्वावाहयामीति यावदुच्चारयेद् द्विज

तावत् प्रेतत्व माप्नोति भिक्षोः सुकृतसंक्षयात् ॥४

॥वृहस्पतिः॥श्रवणं मननं ध्यानं ज्ञानं स्वाध्याय एवच

सद्यो निष्फलतां याति सकृच्छ्राद्धान्नभोजनात् ॥५

अन्तः करणाशुद्धिस्तुन तस्यैव तु सर्व्वदा ॥
तदन्नं प्रेतयोग्यञ्च भवेत् संकल्पमात्रतः ॥६
तीर्थश्राद्धममाश्राद्धमष्टका पार्व्वणं तथा ।
मासिश्राद्धं गयाश्राद्धं एकोद्दिष्टं महालयम् ॥७
अवश्यं भिक्षुरेतानि वर्ज्जयेत् परदारवत् ॥
संक्रान्तौ पर्व्वणि शुभे व्यतिपातेच संक्रमे ॥८
एकान्नञ्च यतिर्भुक्त्वा ऐन्दवं तद्विशोधनम् ।
यत्यन्नं ब्रह्मचार्य्यन्न मवीरान्नं तथैवच ॥९
शूद्रान्नञ्च सदाभिक्षु र्वर्ज्जयेत् परदारवत् ॥
चरेन्माधूकरीं वृत्तिं यतिर्म्लेच्छकुलादपि ॥१०
एकान्नन्तु न भुञ्जीत बृहस्पति समोयदि ।
भैक्ष्यं वा सर्व्ववर्णेभ्य एकान्नं वा द्विजातिषु ॥११
नचैकान्नं द्विजेषुस्यात् कामं स्यात् सार्व्व वर्णिकम् ।
भिक्षार्थञ्च पृथक्पक्वं संस्कार परिवर्ज्जितम् ॥१२
तदन्नं सर्व्वथात्याज्यं यतीनां मेध्यवद्भवेत् ॥
माधूकरादि व्यतिरिक्तान्न दोषकारणमाह ॥पराशरः॥
अन्नदोषेण चित्तस्य कालुष्यं सर्व्वदा भवेत् ॥१३
कलुषीकृतचित्तानां धर्म्मः सम्यक्न भासते ॥
अधर्म्मो धर्म्मरूपेण विभातिच न संशयः ॥१४
स्वयं भातं परंब्रह्म न भातिचाव भासते ॥
ब्रह्मविद्याभिवाञ्छाच कदाचिन्न नैव जायते ॥१५
मणिमन्त्रौषधैर्वन्हिः सुदीप्तोपि यथेन्धनम् ।
प्रदग्धुं नैव शक्तः स्यात् प्रतिवन्ध स्तथैवच ॥१६

ज्ञानाग्निरपि संजातः सुदीप्तः प्रवृद्धो पिवा ।
प्रदग्धुंनैव शक्तः स्यात् प्रतिवन्धस्तुकिल्विषम् ॥१७
अस्यार्थः प्रतिवन्धोनामदुष्टान्नाऽसत्य भाषण निन्दाविषय
लापन मित्यादि । तदुक्तं ॥ कर्त्तव्याशयशुद्धिस्तु भिक्षुके
विशेषतः । ज्ञानोत् पत्ति निमित्तत्वात् स्वातन्त्र्य करण
च ॥ इति ॥१८॥ तथाच श्रुतिः ॥ आहारशुद्धौ सत्व शु
सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ॥
स्मृति लम्भे सर्व्वग्रन्थीनां विप्रमोक्ष इति ॥१९
आत्मनो मित माहार माहरेदात्मवान् यतिः ।
अत्यन्त क्षुधितस्यापि समाधिर्नैव जायते ॥२०
मिताशनो भवेत् नित्यं भिक्षुर्मोक्ष परायणः ॥
कामक्रोधादयो दोषान भवन्ति मिताशिनः ॥२१
अन्नसङ्गाद्बलं दर्पो विषयाशक्ति रेवच ।
कामः क्रोधस्तथा लोभः पतनं नरके ध्रुवम् ॥२२
यावज्जितेन्द्रियो नस्याद्विजितान्येन्द्रियःपुमान् ।
नजयेद्रसनं तावज्जितं सर्व्वं जितेरसे ॥२३
स्तोकं स्तोकं ग्रसेद्ग्रासं देहोवर्त्तेत यावता ।
गृहानहिंसानातिष्ठेद्वृत्तिं माधूकरीं मुनिः ॥२४
प्राणवृत्त्यैव सन्तुष्येत् मुनि र्नैवेन्द्रिय प्रियेः ।
ज्ञानं यथा न नश्येतनावकीर्य्येत वाङ्मनः ॥२५
हितंमितं सदाश्नीयाद् यत् सुखेनैव जीर्य्यते ॥
धातुः प्रकुप्यते येन तदन्नं वर्ज्जयेद् यतिः ॥
याचितायाचिताभ्याञ्च भिक्षाभ्यां कल्पयेत् स्थितिम्

विष्णवालये शिवस्थाने यति र्भिक्षां न कारयेत् ॥१६
कारयेत्तां यदा मूढः पतत्येव न संशयः ।
चान्द्रायणद्वयं कुर्य्यात्तस्माच्छु ध्यर्थमात्मनः ॥१७
देवालये शिवस्थाने गङ्गागर्भे तथैवच ।
यतिश्च ब्रह्मचारीच नाश्नीयाच्च द्विजोत्तम ॥१८
नभोनभस्ययो र्मध्ये यावदाक्रमते जलम् ।
गङ्गागर्भं विजानीयाद न्यत्रतीरमुच्यते ॥१६

॥ अथ दातृ सम्बन्धि वर्ज्यदिनादीनि ॥

विवाहे पशुवन्धेच मौञ्जी वन्धन कर्म्मणि ॥
पक्षस्त्याज्यः शुभेष्टयांच दिनमेकं त्यजेद् यतिः ॥२०
निषेकपुंसवनयोः सीमन्ते जातकर्म्मणि ।
नामकर्म्मणिं चौलेच कर्णवेधे तथैवच ॥२१
दिनत्रयं परित्यज्य भिक्षां कुर्य्याद् यतिस्तदा ।
मासिश्राद्धे तथा क्षौरे पक्षश्राद्धे तथैवच ॥२२
षण्वत्यां शुभेऽष्टादौ दिनमेकं परित्यजेत् ।
मातृश्राद्धे पितृश्राद्धे श्राद्धे पार्व्वणकर्म्मणि ॥२३
दिनत्रयं परित्यज्य भिक्षां कुर्य्याद् यतिस्तथा ।
संकल्पश्राद्धमेवस्या त्तीर्थ श्राद्धमथापिवा ॥२४
सकृन्महालयं कुर्य्याद्दिनमेकं परित्यजेत् ॥
वृषोत्सर्गेच सीमन्ते प्राशने क्षौरकर्म्मणि ॥२५
उपनीते विवाहेच यति र्भुक्त्वा व्रतञ्चरेत् ॥
नागवलौ नारायणवलौ वापि पक्षं भिक्षांत्यजेत् ॥२६
दीक्षास्तु विषये त्रिरात्रं यावत् कर्म्मवा ॥

गर्भेतु प्रथमे जाते त्रिमासा द्वर्ज्जयेत् परम् ॥२७
पञ्च मासाधिके गर्भे गर्भिण्या यदि पच्यते ॥
हविर्देवान गृह्णन्ति कव्यञ्च पितरस्तथा ॥२८
पञ्चमासाधिके गर्भे तद्भर्त्ता सूतकी भवेत् ॥
तदन्नं यतिभिर्नैवग्राह्यञ्चापि जलादिकम् २९ प्रथम इति
शेषः ॥ सप्त मासाधिकोगर्भो वर्द्धमानो भवेद्यदि ॥
तद्गृहेनैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥३०
यस्यगेहेस्नुषा ज्येष्ठा भार्य्या वाथ रजस्वला ।
गर्भिणीवाथ वास्याञ्चेत्तत्र भिक्षांन कारयेत् ॥३१
कन्यकायां प्रसूतायांचत्वारिंशद्दिनं त्यजेत् ।
तथैवच कुमारस्य मासमेकं त्यजेद्बुधः ॥३२
आचतुर्थाद्भवेत् स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः ।
अतउर्द्धं प्रसूतिः स्यात्तदहं सूतकं भवेत् ॥३३ इति
अस्यार्थः गर्भपाते तन्मास संख्या तुल्य दिनपर्य्यन्तं
स्तौ भिक्षांन कुर्य्यात् पञ्चषट् वा दिनानीत्यर्थः ॥
पित्रोरब्दमशौचंस्यात् मातुः षाण्मासिकं विदुः ॥
अस्यार्थः मातापित्रोरब्दं ॥ पुनर्मातृपदं विमातृ
तत्र षाण्मासिकं इति शेषः ॥ पितामह पितामह्यो स
परिकीर्त्तितम् ।
मासत्रयन्तु भार्य्यायास्तदर्द्ध भ्रातृपुत्रयोः ३४
इतरेषां सपिण्डानां मासमेकं विशिष्यते ॥ इति
॥पाठान्तरं॥ ज्ञातीनांमासमेकन्तु वालानां मरणेदश
असंस्कृतामृताकन्या पक्षमेकं परित्यजेत् ॥

तद्वत् पुत्रादिके कुर्य्यात् न कुर्य्यात् पतितो भवेत् ॥३६
॥अन्यच्च॥पुत्रेयातेऽर्द्ध मेकन्तु तथैव प्रेतकर्म्मके ।
भार्य्यामृतौ त्रिमासं स्यात् मासैकं गोत्रजे मृते ॥३७
कन्यापुत्र भ्रातृ याते सार्द्ध मासं निगद्यते ।
भिक्षुणा तद्गृहे त्याज्यं भिक्षार्थंतद् विशेषतः ॥३८
॥अन्यच्च मनुः॥ असंस्कृता मृताकन्या पक्षमेकं परित्यजेत्
तद्वत् पुत्रादिके कुर्य्यान्न कुर्य्यात् पतितो यतिः ॥३९
भिक्षु र्भिक्षां न गृह्णीयाद्यावन्नस्यात् सपिण्डनम् ।
स्वगोत्रोऽप्यशुचिस्तावद्यावत् पिण्डे न मेलयेत् ॥४०
वैश्वदेवस्य यः कर्त्तातस्य भार्य्यारजस्वला ।
तद्गृहं वर्ज्जयेद्भिक्षुर्यावत् पञ्चादिनावधि ॥४१
मृद्भस्मोदकमन्नं वाक्षभोज्यान्नाददद्यतिः ।
आददानः प्रमादेन प्रायश्चितं समाचरेत् ॥४२
इतिप्रतिबन्धप्रकरणं समाप्तम्। अथभिक्षाप्रकरणं आरभ्यते॥
गौतम शौनक वचसोराचमन विकल्पः ॥
निधायांघ्रिद्वयं भूमौ चासनेऽनु प्रविश्यच ॥१
आच्छादितांगो मौनेन पाणिपात्रं चरेद्बुधः ।
पाणिपात्रं चरन् भिक्षुर्द्दण्डसंयोगसङ्गतः ॥२
यावच्छुद्ध्याचमं कुर्य्यात्तावच्छिष्येत् सदण्डकः ॥
उदरपूरणंकृत्वा सचैलोस्नान माचरेत् ॥३
अस्यार्थः । अत्रसचैलस्नानमस्पर्शस्पर्श सन्देहादि निमि-
त्तकं नतु कराभिक्षाशननिमित्तिकं तस्य माधूकर पक्षा-
पेक्षया प्युनमत्वाभिधानादिति शिष्टाः ॥ माधूकर भिक्षा-

प्रशंसा. ॥ माधूकरं पाणिपात्रं यतीनामुत्तमोत्तमं ॥
माधूकरेण षण्मासं करपात्रं तथैव च ॥ ४ ॥
चरेद्धृदयशुद्ध्यर्थं मादौ सन्न्यस्यमस्करी ॥
तत्रापि नवभिक्षूणां विनामाधूकरेण च ॥ ५ ॥
चित्तशुद्धि र्न भवतीत्येवं वै मनुरब्रवीत् ॥
संवर्त्तः । माधूकरीं चरेद्भिक्षां ब्राह्मणानां गृहे सदा ॥६॥
न चायं बहुभोज्येषु पतितादिगृहेष्वपि ॥
अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् ॥ ७
वैश्यान्नंचान्नमित्याहुः शूद्रान्नं रुधिरं स्मृतं ॥
ग्रासनियमः॥अष्टौग्रासामुनेःप्रोक्ता इत्य परिमाणेव्याघ्र
चतुरङ्गुल मुत्सेधं चतुरङ्गुलमायतं ॥ ८
एतद्ग्रास प्रमाणन्तु व्याघ्रेण परिभाषितम् ॥
भुक्त्वाभुक्त्वोपभुञ्जीत नियमार्थं यतिः सदा ॥ इति ९
माधूकर्य्यादिभिक्षाहरणविधिः ॥
भिक्षार्थी प्रविशेद्ग्रामं शिखी मुण्डी तु बुद्धिमान् ।
जानोरुर्द्ध मधोनाभेः परिधायैकमम्बरम् । १
द्वितीयमुत्तरं वासः परिधायगृहानटेत् ।
आचम्यपादौप्रक्षाल्य प्राणायाम मनुस्मरेत् ॥ २
वारिणा ॐमितिप्रोक्ष्य द्विषट्वारंस्पृशन् जपेत् ।
गुर्व्वादि वन्दनं कृत्वा पर्य्यटेत्तदनुज्ञया ॥ ३
संस्कृत्यप्रणवेनाथ भिक्षापात्रं यथाविधि ॥
भास्कराभिमुखोभूत्वा संस्मरन् मनसा हरिम् ॥ ४
नैवेद्यार्थं महाविष्णोः साधुमाधूकरंशुचि ॥

॥ आनयिष्यामि भगवन् भक्ति मुक्ति प्रदायकं ॥
सव्येनादाय पात्रन्तु दण्ड ञ्च दक्षिणेन तु ॥
प्रोञ्छणं नाम यथा उत्तानेनतुहस्तेन कर्त्तव्यंप्रोञ्छणं भवेत्॥६
अर्व्वाचीनेन हस्तेन कर्त्तव्यं स्यादवेक्षणम् ।
मुष्टी कृतेन हस्तेन कृतमभ्युक्षणं भवेत् ।
॥६ ॥प्रयोगसारे॥ तिष्ठेन्नचिरमादित्य मुपस्थायैव भिक्षया ।
स्थित्वा द्वादशसंयच्छेत् प्राणायामां स्तदैवतु ॥८
वाचं विसृज्यचाभाष्य त्रिरेवतु विनिश्चयः ।
विधूमेसन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवर्ज्जने ॥६
ाग्र कालेपरान्ह भूयिष्ठेभिक्षाटनमथाचरेत् ॥ इति
भिक्षाग्रहणविधिः॥यथा मध्वाददानोपि भृङ्गः पुष्पंनवाधते।
तद्वन्माधूकरीं भिक्षा माददीत गृहाधिपात् ।
दृष्ट्वा भिक्षां दृष्टिपूतां दातुश्च करसंस्थिताम् ॥११
दण्डञ्च दक्षिणेत्वङ्के ततः सन्धाय वाहुना ।
उत्पाटयेच्च कवचं दक्षिणेन करेणसः ॥१२
पात्रं वामकरे कुर्य्याच्छेषयेद्दक्षिणेनतु ।
एकाग्रमनसाचैव नारायण मनुस्मरन् ॥१३
प्राणयात्रिक मन्नन्तु ।भिक्षेत विगतस्पृहः ।
अद्भिस्तारेण संप्रोक्ष्य पात्रे भिक्षाच गृह्यते ॥१४
विष्णुपुराणे॥ भिक्षादाने सदाभिक्षोः सलिलं दक्षिणे करे ।
दत्वा भिक्षां प्रयच्छेत पात्रे सव्ये करे स्थिते ॥१५
अकार्पण्यन्तु वह्वन्नं मन्यन्ते यत्र मानवाः ।
निरीक्षन्ते त्वनुद्विग्ना स्तद्गृहं यत्नतो व्रजेत् ॥ १६

वह्वन्नं पच्यते यत्र मन्यन्ते यत्रमानवाः ।
अनुद्विग्नाः प्रयच्छन्ति तं देशं यत्नतो व्रजेत् ॥ १७
यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ ॥
तयोरन्नमदत्वातु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१८
अकृते वैश्वदेवेतु भिक्षुके गृहमागते ॥
उद्धृत्यवैश्वदेवार्थं भिक्षुकन्तु विसर्ज्जयेत् ॥१९
वैश्वदेवेऽकृते दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति ॥ इति
॥मेधातिथिः॥अदुष्टापतितं साधु यतिं यदि परित्यजेत्
स तस्य सुकृतं दत्वा दुष्कृतं प्रतिपद्यते ।
तथैवच गृहस्थस्य निराशो भिक्षुको गतः ॥२१
हुतं दत्तं तपोधीतं सर्व्वमादाय गच्छति ।
यावदुदरपूर्त्तिः स्यात्तावद्भैक्ष्यं समाचरेत् ॥२२
सिक्थमप्यधिकं भिक्षुराददानो व्रजत्यधः ।
पञ्चसप्तगृहाणाञ्च भिक्षामिच्छेत् क्रियावताम् ॥२३
गोदोहमात्रमाकाङ्क्षी निष्क्रान्तो न पुनर्विशेत् ।
श्रोत्रियान्नं न भिक्षेत शुद्धंभक्तिविवर्ज्जितम् ।
बालस्यापि गृहेभिक्षेच्छ्रद्धाभक्ति पुरस्कृते ।
॥व्यासः॥पञ्चार्द्रो भोजनं कुर्य्यात् प्राङ्मुखो मौनमास्थि
हस्तौपादौ तथैवास्यमेषु पञ्चार्द्रता मता ॥ इति
अस्यार्थः भैक्ष्याशने गृहस्थगृहेवा यथा संभवं मण्डल
कर्त्तव्यः तत् प्रमाणमाह ।
यातुधानाः पिशाचाश्च राक्षसाः क्रूरकर्म्मिणः ॥२६
हरन्ति रसमन्नस्य मण्डलेन विवर्ज्जिते ।

अस्यार्थः ॥ याचितं माधुकरादि अयाचितं प्राक् प्रणीतादि भैक्ष्यं पञ्चविधं स्मृतमितिच यद्यपि विहितं तथापि निवृत्तिरेव श्रेयसीत्याह प्रवृत्तिरेषा भूतानांनिवृत्तिस्तुमहाफला॥ निवृत्तं कर्म्मसेवेत सतत मित्यादिना च ॥इति॥ अथ मृद्भस्म जलादि ग्रहणे प्रतिबन्धकानि । अत्र वस्तुविषये । यति धर्म्म संग्रहे यदुक्तं तदाह ॥ विश्वेश्वर पद्धतौ यतीनां भिक्षानिषेधप्रकरणे गोप्रसूतिश्चदासी चाजामहिष्य स्तथैवच ॥

तद्गृहेच यतिर्भिक्षां द्वादशाहं विवर्ज्जयेत् ॥१

अजागावोमहिष्यश्च ब्राह्मणीच प्रसूतिका ।

दशरात्रेण शुध्यन्ति भूमिष्ठञ्च नवोदकम् ॥२

शुनीमार्जार प्रसवे पञ्चरात्रञ्च वर्ज्जयेत् ।

स्वगोत्रस्यान्यगोत्रस्य यद्गृहे सूतकं भवेत् ॥३

तद्गृहं भिक्षुणात्याज्यं यावद्दशदिनावधि ।

पक्षिमार्जार मूषाश्च श्वान वानर मेषकाः ॥४

कदाचिन्मृत्यु माप्नोति त्रिदिनं वर्जयेद्यतिः ।

पक्षिणां दिनमेकंस्यात् पशुमृतौ दिनत्रयं ॥ इति ॥५

॥नारदः॥अर्भकेच दिनत्रयं चतुर्दिनं रजस्वलायाम् ।

एकादशगर्भपाते भिक्षां वर्जेत मस्करी ॥६

पक्षिणां दिनमेकंस्यात् पशुमृतौ दिनद्वयं ॥

दिनद्वयं पशूनां वैपक्षिणां दिनमेवच ॥७

दन्तहीनस्य वालस्य दिनत्रयमुदाहृतम् ।

आपञ्चमम्भवेद्वालस्ततः पौगण्डएवच ॥८

कुमारः स्यात् पञ्चदशवत्सराच्चरुणास्ततः ॥ इति ॥

॥मनुः॥ असंस्कृतामृता कन्या पक्षमेकं परित्यजेत् ॥९
तद्वत्पुत्रादिके कुर्य्यात् न कुर्य्यात् पतितो यतिः ॥
शिशुर्वत्सरमेकन्तु बालःस्याद्वत्सरद्वयं ॥१०
त्र्यब्दे कुमारकाः प्रोक्ता ह्यष्टाब्दे ब्रह्मचारिणः ॥
अस्यार्थः ब्राह्मणादि वर्णानां सूतकद्वये
उक्त सूतकदिनात् त्याज्य दिनानि
विप्रगृहे विप्रमरणे दिनानिदश॥१०॥ क्षत्रिय मरणेदिना
विंशतिः॥२०॥ वैश्य मरणेदिनानि त्रिंशत् ॥३०॥ शूद्रमर
दिनानि विंशतिद्वयं॥४०॥परित्यजेत् भिक्षूणां त्याज्यानि
उक्त ञ्च ॥ श्वशूद्रपतिताश्चान्त्योमृताश्च द्विजमन्दिरे ॥ शौ
तत्रप्रवक्ष्यामिमनुना भाषितं यथा ॥१०॥ दश रात्राच्छुनि
ते मासाच्छुद्रेभवेच्छुचि ॥ द्वाभ्यान्तु पतिते गेहमन्त्ये मा
चतुष्टयात् ॥११ अन्त्यान्ते वर्ज्जयेद् गेहमित्येवं मनुरब्रवी
॥१२॥ अस्यार्थः अन्त्योम्लेच्छः अन्त्यान्त्यः श्वपाकः
वाचस्पतिः ॥ गो प्रसूतौतु वपने अशौचे क्रय कारके।
श्राद्ध दिने परे पूर्व्वे भिक्षुर्भिक्षाञ्च वर्ज्जयेत् ॥१३
श्राद्धात् पूर्व्वदिने परेहनि सिनीवालीकुहूवासरे ॥
कुष्माण्डे गणहोम कर्म्मणि तडागाराम देवार्च्चने ॥
तीर्थे सन्नमहालया ध्वरगणान्नान्यत्र नान्दी मुखे।
एतेष्वेव निवेशने प्रतिदिनं भिक्षांत्यजेन्मस्करी ॥१४
बालानां शीतलास्फोटोद्गमे यतिभि र्नवदिवस पर्य
तद्गृहे भोज्यं त्याज्यमित्यपि रूढ़िरस्ति अथ त्याज्यस्था
दीनि दीक्षागारे विवाहेच सूतके वनभोजने ।

उपलिप्तेसमेस्थाने शुचौश्लक्ष्णा समन्विते ॥२७
चतुरस्रं त्रिकोणंवा वर्त्तुलं चार्द्धचन्द्रकम् ।
कर्त्तव्यान्यानुपूर्व्वेण ब्राह्मणादिषु मण्डल मिति ॥२८
ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्च श्री हुताशन एवच ।
मण्डलान्युपतिष्ठन्ति तस्मात् कुर्व्वीत मण्डलम् ॥२९
आपोशनञ्चासनञ्च तैलाभ्यङ्गञ्च मण्डलम् ।
स्वेन हस्तेनयः कुर्य्यात्तस्यापिश्रियं हरेत् ॥३०
अधः पर्णं प्रोक्षणञ्च मण्डलञ्चाभिघारणम् ।
प्रणवप्रोक्षणञ्चैव पात्र शुद्धिश्च पञ्चभिः ॥ इति ३१
॥त्याज्यपात्राणि॥गायत्र्या प्रोक्षितंपात्रं यतेःसंस्कारवर्ज्जितम्।
तत्पात्रं यतिनात्याज्यंन भुंज्याञ्च कदाचन ॥३२
विशीर्णञ्च सलेपञ्च पात्रञ्चोपहतञ्चयत् ।
तत्रमोहाद्यति भुंक्ते चरेदिन्दुव्रतं सकृत् ॥३३
प्राणयङ्के चायसे क्लृप्तं भिक्षुर्यत्नेन वर्ज्जयेत् ।
भिक्षार्थं पर्य्यटेद् भिक्षुस्तैजसेन कदापिन ॥३४
गद्यं ॥ वटार्काश्वत्थकुम्भी तिन्दुकोविदार करञ्जवल्ली यम पत्र कदलीगर्भपत्र कार्पाश शाणातान्त वायस ताम्रमृण्मय पर्णपृष्ठ मणिमयशिलामयादि निन्दित पात्राणि विहायोक्त-पात्राणि प्रक्षालितान्यपि स्वयं प्रक्षालयेत् ॥
प्रणवप्रोक्षितं पात्रं यतेः संस्कार संयुतम् ।
तत् पात्रं यतिना ग्राह्यं स्वधर्म्म निरतो भवेत् ॥३५
हस्तोदकस्य योबिन्दुः पात्रान्तरेच गच्छति ।
तत् पात्रं यतिभि स्त्याज्यं प्राणायामं षडाचरेत् ॥३६

अन्यत् पात्रं गृहीत्वातु प्रोक्षयेद्विधि पूर्व्वकम् ।
कर्त्तव्या भिक्षुभि र्भिक्षा यावदुदरपूर्त्तिका ॥३७

॥ परिवेशनं स्मृत्यन्तरे ॥ शाकादीन् पुरतः स्थाप्य भ
भोज्यञ्च वामतः ।
अन्नं मध्ये प्रतिष्ठाप्य दक्षिणे घृतपायसे ॥३८
तदन्ने परमान्नेच आज्यपात्रं यदि स्थितम् ।
तदाज्यश्च भवेद्रक्तं तदन्नं मांसमुच्यते ॥३९

घृतमपि भोजनात् प्रागेव ग्राह्यं ॥ पैठीनसिः ॥
लवणं व्यञ्जन ञ्चैव घृतं तैलं तथैवच ।
लेह्यं पेयश्च विविधं हस्तदत्तं न भक्षयेत् ॥४०

॥भविष्ये॥ सैन्धवं लवणं यच्चयच्च सामुद्रिकं भवेत् ।
पवित्रे परमेह्येते प्रत्यक्षे चापि नित्यशः ॥४१

॥भक्षयेदिति शेषः॥ दर्व्यादेयं घृतंचान्नं लवणं व्यञ्जनं त
अपक्वं तैलपक्वश्चनतु दर्व्याकदाचन ॥४२
हस्तादेयन्तु यद्द्रव्यं दर्व्यादेयन्तु हस्ततः ।
एतद्भूयो ब्राह्मणो श्नीयात् सोऽश्नीयान्मूत्र रेतसी ॥४३
भैक्ष्याद्दुपावृतो भिक्षुः पश्चात् केनचिदाहृतम् ।
फलंमूलं पयस्तक्रं दधिपुष्पं घृतं तथा ॥४४
शाकादि व्यञ्जनं पेयं गृह्णन् भिक्षुर्न दुष्यति ॥इति

विचारः यथा विध्यन्न परिवेषणोत्तरं द्विषट्वारं प्रणवा
मंत्रितजलेन पात्रं परिषिच्य पात्रं धृत्वोर्ध्वमूलमिति गीत
ध्यायं पठेत्॥ ततः श्रीविष्णवे निवेद्य प्रणवेनोक्तप्रकारे
न्नं प्रोक्ष्यहस्तोदकमभि मन्त्रितं पिवेत् ॥

॥ विष्णुपुराणे इत्युक्तं ॥

उत्तानवदनं कृत्वा ब्रह्मभावेन भावितः इत्यादि
मन्त्रेण पञ्चग्रासं कुर्य्यात् ॥ पूर्व्वेणोक्तं ॥ आश्वमेधिके ॥
यथारसं न जानाति जिह्वाप्राणाहुतीषुच ।
नोच्छिष्टस्य भवेद्दोषः स्मृतश्च बचनं यथा ॥४५
॥यमः॥ प्रोक्षणं प्रणवेनैव हुतमध्यात्मिकादिषु ।
शरीरं व्रणवत् पश्येदन्नञ्च व्रणलेपवत् ॥४६
यावद्रुष्यन्न मश्नीयान्न ब्रूयात्तद्गुणागुणान् ।
अतो मौनेनयो भुंक्ते सभुंक्तेकेवलामृतम् ॥४७
अन्तर्जानु तथा कृत्वा वाहु पादौ तथा भुवि ।
भाजनंहि समादाय भिक्षुः सव्यकरेणतु ॥४८
दक्षिणेन करेणैव चिन्मयेनान्तरात्मना ।
ध्यायन् सभोजनं कुर्य्यात् यावन्नावभृथो भवेत् ॥इति ४६
॥वौधायनः॥ भोजनं हवनं दानमुपहारः प्रतिग्रहः ।
नवहिर्जानुना कार्य्या स्तद्वदाचमनं स्मृतम् ॥५०
आपोशनविधिं कृत्वा पञ्चप्राणाहुतिं पराम् ।
केशकीटादिभिर्व्याप्तं पिण्डमुत्सृज्यदूरतः ॥५१
प्रक्षाल्य भस्मनाहस्तं क्षिप्त्वाश्नीयाततः पुनः ॥
केशादि मुखसंलग्नं क्षिप्त्वा ग्रासन्तु तत्क्षणात् ॥५२
अपां द्वादशगण्डूषैः प्रक्षाल्यास्यन्तु भोजयेत् ॥
नस्पृशेत् सव्यहस्तेन भुंजानोऽन्नं कदाचन ॥५३
नपादौ न शिरोवस्तिं नपदाभाजनं स्पृशेत् ॥
विनाङ्गुष्ठेन नाश्नीयान्न लिहेज्जिह्वया करम् ॥५४

अश्नन् यदि लिहेद्धस्तं तदा चान्द्रायणं चरेत् ॥
आज्यधारा नीरधारा तैलं तक्रं तथा पयः ॥५५
नदोषः पञ्चधाराणामन्या धारा विवर्जयेत् ॥
मक्षिका शिशुमार्जार स्त्रीमुख स्वेदविंदवः ॥५६
पंक्त्यां सन्तत धाराच स्पर्शदोषोन विद्यते ॥ इति
॥ संकरस्तत् पंक्ति भेदश्च ॥
आलापाद्गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात् सहभोजनात् ॥५७
सहशय्यासनाद्यानात् पापं संक्रमते नृणाम् ।
एकशय्यासनं पंक्ति भाण्डं पंक्त्यान्नमिश्रणम् ॥५८
याजनाध्यापने योनिस्तथावसन भोजने ॥
नवधासंकरः प्रोक्तोन कर्त्तव्योऽधमैःसह ॥ इति ॥५९
अस्यार्थः ॥ योनिः पातकिने कन्यादानं तत्कन्या परि
यनञ्चेति पतितन सहैकशय्यासनादिभिःसम्वत्सरेण पत
भोजनाध्ययनाध्यापन योनि संवन्धैः सद्यएव ॥
अप्येकपंक्त्या नाश्नीयात् संयुक्तैः स्वजनैरपि ॥

॥ अथ त्याज्य पंक्तिः ॥

यतिपंक्तौयदा भुंक्ते सूतकीच कदाचन ।
तदा चापोषणं कुर्य्यात् प्राणायाम शतत्रयम् ॥१
रजस्वलायाश्चतुर्थ दिवसेपि पंक्तौ भोजने
प्रायश्चित्तंत्याज्यान्नानि तत् प्रायश्चित्तानिच ।
शूद्रशेषं न चाश्नीयाच्छूद्रान्नं शिशुकैः सह ।
दम्पत्यो र्भुक्तशेषन्तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥२
याच पर्य्युषिता भिक्षा नैवेद्ये याच कल्पिता ।

तामभोज्यां विजानीयाद्भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥३
अवीरास्वैरिणी गुर्व्वी गर्भभर्त्तृद्रुहासती ।
कन्याधात्री पुनर्भूश्चनाददीतोद्यतामपि ॥४
उदक्या चोदितंह्यन्नं द्विजान्नं शूद्रचोदितम् ।
प्राणयज्ञे चायसे चान्नं पित्रर्थं कल्पितं तथा ॥५
देवादि कर्म्मणिक्लृप्तं तथा पापै रुदाहृतम् ।
नोत्पन्ना संततिः काचित् स्त्रियः पुंसोपिवा गृहे ॥६
नाश्नीयात्तद् गृहे भिक्षुरश्नन् चान्द्रायणं चरेत् ।
अस्यार्थः । योनिः पातकिने कन्यादानं तत् कन्या परिणायन ञ्चेति पतितेन सहैकशय्यासनादिभिः संवत्सरेण पतति भोजनाध्ययनाध्यापनयोनिसंवन्धैः सद्यएव। अप्येकपंक्तया नाश्नीयात् संयुक्तैः स्वजनै रपि । कोहि जानाति किं तस्य प्रच्छन्नं पातकं भवेत् ॥ भस्मस्तम्भ जलद्वार मार्गैः पंक्तिञ्च भेदयेत् ॥ इति ॥ वृहस्पतिः ॥ अग्निनाभस्मनाचैव स्तम्भेन सलिलेनच ॥ द्वारेणैवच मार्गेण पङ्क्तिभ भेदो वुधैः स्मृतः ॥
॥यमोऽपि॥उदकञ्च तृणं भस्मद्वारंपन्था तथैवच ।
एभिरन्तरितं कृत्वा पंक्ति दोषो न विद्यते ॥६
॥पराशरः॥ एक पंक्त्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने ।
यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥१०
मिताशनो भवेन्नित्यं भिक्षुर्मोक्षपरायणः ।
कामदर्पादयो दोषान भवन्ति मिताशिनः ॥११
हितं मितंसदाश्नीयाद्यत् सुखेनैव जीर्य्यते ।

धातुः प्रकुप्यते येन तदन्नं वर्ज्जयेद् यतिः ॥१२
यथेष्टं भुंक्ष्वमाभैषी स्त्यक्तं सलवणं पिवा ।
यथेष्टं वदमाभैषी रन्ते नारायणं स्मरन् ॥१३
भिक्षाशेषन्तुयः कश्चिद् यदि भिक्षुः समुत्सृजेत् ।
ग्रासेग्रासेतु कर्त्तव्या प्राणायामा स्त्रयस्त्रयः ॥१४
अस्यार्थः एव मिन्द्रिय चापल्य वर्ज्जन पूर्व्वकं भुक्त्वा
शनं प्रणवेन पिवेत् ॥ आननं मृज्जलाभ्यां हस्तौच प्र
ल्य दन्तधावनं कुर्य्यात् ॥
चूलकत्रितयेनैवपूर्व्वमास्यं विशोधयेत् ॥
पश्चात् करक्षालनं स्यादिति ॥
शोधयेन्मुख हस्तौच मृद्भिर्घर्षणै रपि ।
आचम्यच ततः कार्य्यं दन्तकाष्ठस्य भक्षणं ॥१५
तत्रदन्तधावने प्रकारः ॥
भोजने दन्त लग्नानि निर्हृत्याचमनञ्चरेत् ।
दन्तलग्नमसंहार्य्यं लेपमन्नन्तुदन्तवत् ॥ इति १६
नतत्रवहुशः कुर्य्याद् यत्न मुद्धरणे पुनः ।
भवेच्चाशौचमत्यर्थं तृणवेधाद्व्रणे कृते ॥१७
प्रयान्त्याचमतोयाश्च शरीरे विप्रुषोनृणां ।
उच्छिष्टदोषो नास्त्यत्र भूमि तुल्यास्तुतामताः ॥१८
ततः षोडश गण्डुषान् कृत्वाचमनद्वयं प्राणायाम षट्
कुर्य्यात् ॥ तत्र विशेषः ॥
॥मनुः॥दन्तवद्दन्तलग्नेषु जिह्वास्पर्शे शुचिर्नतु ।
परिच्युतेषु यत् स्थानात् निगिरन्नेव तच्छुचिः ॥१९

॥शातातपः॥भर्तृहीना तुयानारी स्वतन्त्रा बन्धुवर्जिता ।
तदन्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥
स्वधर्म्मात् प्रच्युतायेवै पुरुषा योषितो पिवा ॥
अवीरास्तु तदाज्ञेया नित्यंसद्भि र्विगर्हिताः ॥२१
पृथक् कृत्वाचया भिक्षा घ्राताम्मार्ज्जारमूषिकैः ॥
वातेनोपहताशुष्का भिक्षा सोपहता भवेत् ॥२२
पीडयित्वा य आत्मान मल्पान्नं यत्प्रयच्छति ।
सा भिक्षा हिंसिताज्ञेया तादृशीं वर्ज्जयेद्यतिः ॥२३
एकान्नंमधुमांसञ्च अन्नं विषादिदूषितम् ।
हन्तकारञ्च नैवेद्यं प्रत्यक्षलवणं तथा ॥२४
एतान् भुक्त्वा यतिर्मोहात् प्राजापत्यं समाचरेत् ।
यत्यन्नं यतिपात्रस्थं यतिना प्रेषितञ्चयत् ॥२५
अन्नत्रयंन भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।
ग्रासमात्रं भवेद्भिक्षा चातुर्ग्रासन्तु पुष्कलम् ॥२६
पुष्कलानिच चत्वारि हन्तकारः प्रकीर्त्तितः ।
स्त्रीशेषं पितृशेषं च शूद्रशेषं तथैवच ॥२७
विधवापुष्पिणीशेषं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।
श्वादिस्पृष्ट पात्राणि त्याज्यानि ॥
श्वकाकगर्दभैरुष्ट्रै र्जम्बुकैर्वानरैस्तथा ॥२८
चाण्डालैः पतितैः स्पृष्टं यतिः पात्रं विसर्जयेत् ।
पूयशोणित मांसैस्तु स्पृष्टं मूत्रपुरीषयोः ॥२९
श्लेष्माऽश्रुपातसंस्पृष्टं यतिः पात्रं विसर्जयेत् ।
भग्ने यतिपात्रेतु तस्य त्यागो विधीयते ॥३० इति

॥याज्ञवल्क्यः॥ स्नानञ्च तर्पणंचैव करपात्रमुपोषणं।
न कदाचिद्यतिः कुर्य्यान्मातापित्रो मृतेहनि ॥३१
पित्रोर्मृतेऽहनिप्राप्ते यतिर्नैव समाचरेत् ।
नतत्रतस्य कर्त्तव्यं करपात्र मुपोषणम् ॥३२
तीर्थश्राद्धे गयाश्राद्धे प्रत्यब्देच महालये ।
पितॄनुद्दिश्यतीर्थेषु भक्तयास्नानञ्च तर्पणम् ॥३३
उपोषणादि कर्म्माणि नाचरेद्बुद्धिपूर्व्वकम् ।
आचरेद्यदि मूढात्मा सोऽधो याति न संशय इति
॥पराशरः॥भिक्षुः पितॄन् समुद्दिश्य क्वचित् कर्म्मन कारे
कारयेत् सर्व्वदा ध्यानं स्वयं नित्यं निरञ्जनम् ॥ इति
॥वसिष्ठः॥ पित्रोर्मृतेश्रुते भिक्षुः स्नानं नैव समाचरेत्
कथंमृतेहनि कुर्य्याद्दण्ड स्नानदि तर्पणम् ॥३६
लये जन्मनि संयुक्तः स्वाज्ञानात् त्रायते गुरुः ।
मृतेश्रुते तस्य भिक्षोः स्नान मात्रं नहि क्वचित् ॥३७
तस्मात् कर्त्तव्यता किञ्चित् नास्ति पित्रोर्मृतेहनि ॥
॥शातातपः॥ यते र्मातुर्मृतिं श्रुत्वा न स्नानञ्च विधिनां
कुर्य्यादुपोषणं भिक्षुर्वन्दनं न च बुद्धिमान् ।
॥ संवर्त्तकः॥पितॄनुद्दिश्य योभिक्षुः कुर्य्यात् कर्म्ममृतेहनि
रेतो मूत्र कृताहार स्तन्मासेच पितातत: ।
॥यमः॥ मातुर्मृतेऽहनि प्राप्ते भिक्षुः कर्म्म यदाचरेत्
सामाता रुधिराहारा द्वादशाहः सुनिश्चयः ।

॥ मार्कण्डेय पुराणे ॥

पित्रोर्मृतेहनि भिक्षुः कर्म्मोद्दिश्य यदा चरेत् ॥

पितरस्तस्य नरके विष्ठाहारा भवन्तिहि ॥४१
॥बृहस्पतिः॥दिनेमातु र्यतिः कर्म्म न कुर्य्यात् पोषणादिकं॥
कुरुते यदि मूढात्मातावुभौ नरकौकसौ ॥४२
॥अङ्गिराः॥ भिक्षुः स्वमात्रे दद्याच्चेदन्नवस्त्रादिकं यदि।
दाताभोक्ता महाघोरं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥४३
॥विष्णुपुराणे॥भिक्षामादाययो भिक्षुर्मातरं प्रतिदीयते।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते क्रिमिः ॥४४
॥व्यासः॥स्वयमेवाटनं कृत्वा समादाय माधुकरम्।
मातरं प्रति यो दद्यादन्नं वस्त्रं सकृद्यतिः ॥४५
स चाण्डालसमोज्ञेयः पातकी यतिवृत्तिहा।
अधोगतिं समाप्नोति पुनरावृत्तिवर्ज्जिताम् ॥४६
आपस्तम्बः॥ यो यतिर्वस्त्रमन्नं वा धनं वा मातरं क्वचित्।
दीयते यदि मूढात्मा सोऽधो याति न संशयः इति ४७
॥कात्यायनः॥सन्न्यस्ययो यतिः पश्चाद्दर्शनार्थं स्वमातरम्।
यदिव्रजेद् गृहं गच्छेत् सचाण्डाल समः स्मृतः ॥४८
तदाचान्द्रायणं कुर्य्यात् प्राजापत्य मथापिवा ॥ इति
॥पराशरः॥ स्वग्रामं प्रतियो गच्छेन्मातुर्दर्शनकाङ्क्षया। ४६
स भिक्षुर्नरकं याति पुनरावृत्तिवर्ज्जितम्।
॥ विष्णुपुराणे ॥ निः सङ्गतामुक्तिपदं यतीनां सङ्गादशेषाः
प्रभवन्ति दोषाः ॥ आरुढयोगोऽपि निपात्यतेधः सङ्गेन
योगी किमुताल्प बुद्धिः ॥ ५० ॥ इति विश्वेश्वर पद्धतौ।
कण्वः॥ तप्तकाञ्चनवर्णेन गवां मूत्रेणयावकम्।
पिवेद्द्वादश वर्षाणिनतद्भेदयसमं भवेत् ॥ १

शाकभक्षाःपयोभक्षायेच पावकभक्षकाः ।
सर्व्वेते भक्ष्यभक्षस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥५२
॥श्रुतिरपि॥ काम क्रोध लोभ मोह दम्भ दर्पाऽहङ्कार मा
काराऽनृतादींस्त्यजेत्॥चतुर्षु वर्णेषु भैक्ष्यश्चरेदभिशस्तपति
वर्ज्जं पाणिपात्रेणाशनं कुर्य्यादौषधवत् प्राश्नीयात् । प्रा
संधारणार्थं यथामेदोवृद्धिर्नजायते॥ अरण्यनिष्ठो भि
र्थी ग्रामं प्रविशेत् ॥५३
इदानीं यतिभिरशनवसनादिषु न कार्पण्यं कार्य्यं प्रा
कर्म्मणामवश्यंभावित्वा दित्याह ॥
भावितव्यं यथा येन न तद् भवति चान्यथा ।
नीयते तेन मार्गेण स्वयंवा तत्र गच्छति ॥१ अस्यार्थ
प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो देवोऽपि तं वारयितुं नशक्
तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मेयदस्मदीयं नहिं तत्
अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं गृहेस्थितं दैवहतं विनश्यति
जीवत्यनाथोऽपिवने विसर्ज्जितः कृतप्रयत्नोपि गृहेविनश्य
लिखिता चित्रगुप्तेन ललाटेऽक्षरमालिका ॥
न सा मार्ज्जयितुं शक्या पण्डितैस्त्रिदशैरपि ॥३
नाहारं चिन्तयेत् प्राज्ञो धर्म्ममेकन्तु चिन्तयेत् ।
आहारोपि मनुष्याणां जन्मना सहजा यते ॥४
योवै गर्भगतस्यापि वृत्तिं कल्पितवान् प्रभुः ।
शेषवृत्तिविधानाय स किं सुप्तोथवा मृतः ॥५
अवश्यंभाविभावानां प्रतिकारो भवेद् यदि ।
तदा दुःखैर्न लिप्येरन् नलरामयुधिष्ठिराः ॥ ६

इति भिक्षादि विषयो निवृत्तः ॥

मनुषष्ठाध्याये यतीनामाचारविधिः ॥

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेष क्षयेणच ।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥७
अवेक्षेत गतीर्नॄणां कर्म्मदोषसमुद्भवाः ।
निरयेचैव पतनं यातनाश्च यमक्षये ॥८
विप्रयोगं प्रियैश्चैव संयोगञ्च तथाऽप्रियैः ।
जरयाचाभिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥९
देहादुत्क्रमणञ्चास्मात् पुनर्गर्भेच सम्भवम् ।
योनिकोटिसहस्रेषु स्मृतीश्चास्यान्तरात्मनः ॥१०
अधर्म्मप्रभवञ्चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् ।
धर्म्मार्थप्रभवञ्चैव सुखसंयोगमक्षयम् ॥ ११
सूक्ष्मताञ्चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः ।
देहेषु च समुत्पत्तिमुत्तमेष्वधमेषुच ॥ १२
दूषितोऽपि चरेद्धर्म्मं यत्र तत्राश्रमे रतः ।
समः सर्व्वेषुभूतेषु न लिङ्गं धर्म्मकारणम् ॥ १३
फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥१४
संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावहनि वा सदा ।
शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत् ॥१५
अन्हाराञ्या च यान् जन्तून् हिनस्त्यज्ञानतो यतिः ।
तेषांस्नात्वा विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान् षडाचरेत् ॥१६
प्राणायामाब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत् कृताः ।

व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥१७
दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथामलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥१८
प्राणायामै र्दहेद्दोषान् धारणाभिश्चकिल्विषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥१९
उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ।
ध्यानयोगेन संपश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः ॥२०
सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्म्मभिर्न निबध्यते ।
दर्शनेनविहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥२१
अहिंसयेन्द्रियासङ्गै र्वैदिकैश्चैव कर्म्मभिः ॥
तपसश्चरणै श्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम्
अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ।
चर्म्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णंमूत्रपुरीषयोः ॥२३
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ।
रजस्वलमनित्यञ्च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥२४
नदीकूलं यथावृक्षो वृक्षं वा शकुनि र्यथा ।
तथा त्यजन्निमं देहं कृच्छाद्ग्राहाद्विमुच्यते ॥२५
प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषुच दुष्कृतम् ।
विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति सनातनम् ॥२६
यदा भावेन भवति सर्व्वभावेषु निस्पृहः ।
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्यचेह च शाश्वतम् ॥२७
अनेन विधिना सर्व्वा स्त्यक्त्वा सङ्गान् शनैः शनैः ।
सर्व्वद्वन्दविनिर्मुक्तोब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ २८

ध्यानिकं सर्व्वमेवैतद्यदेतदभिशब्दितम् ।
नह्यनध्यात्मवित् कश्चित् क्रियाफलमुपाश्नुते ॥२९
अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेवच ।
आध्यात्मिकञ्च सततं वेदान्ताभिहितञ्चयत् ॥३०
इदं शरणमज्ञाना मिदमेवविजानताम् ।
इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥३१
अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः ।
स विधूयेहपाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥३२
एष धर्म्मोऽनुशिष्टोवो यतीनां नियतात्मनाम् ।
वेदसन्न्यासिकानान्तु कर्म्मयोगं निबोधत ॥३३
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥३४
सर्व्वेऽपिक्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः ।
यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ॥३५
सर्व्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः ।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्त्ति हि ॥ ३६
यथा नदीनदाः सर्व्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।
तथैवाश्रमिणःसर्व्वेगृहस्थेयान्ति संस्थितिम् ॥ ३७
चतुर्भिरपि चैवैतै र्नित्यमाश्रमिभि र्द्विजैः ।
दशलक्षणकोधर्म्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥— ३८
धृतिःक्षमादमोऽ स्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्म्मलक्षणम् ॥३९
दशलक्षणानि धर्म्मस्य ये विप्राः समधीयते ।

अधीत्यचानुवर्त्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ।
दशलक्षणकं धर्म्ममनुतिष्ठन् समाहितः ।
वेदान्तं विविधच्छ्रुत्वा सन्न्यसेदनृणोद्विजः ॥४१
सन्न्यस्य सर्व्वकर्म्माणि कर्म्मदोषानपानुदन् ।
नियतो वेदमभ्यस्य पुत्रैश्वर्य्ये सुखं वसेत् ॥४२
एवं सन्न्यस्य कर्म्माणि स्वकार्य्यपरमोऽस्पृहः ।
सन्न्यासेनापहत्यैनः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥४३
एषवोऽभिहितो धर्म्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः ॥
पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राज्ञांधर्म्मं निबोधत ॥४४
वृहस्पतिः ॥ वन्धमोक्षविभागज्ञो वुद्धया चेन्मोक्षणेच्छ
उपायान्वेषणे युक्तः को न मुच्येत वन्धनात् ॥१ ।
यथा चित्तं समासक्तं जन्तोर्विषयगोचरे
यदि नारायणेप्येवं कोन मुच्येत वन्धनात् ॥ २
आदरेण यथा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया ।
तथा चेद्विश्वकर्त्तारं को न मुच्येत वन्धनात् ॥ ३
अशास्त्रदृष्टमार्गेषु यथा चित्तलयो भवेत् ।
यद्ययं शास्त्रदृष्टेषु कोन मुच्येत वन्धनात् ॥ ४
यावत् प्रलपने हृष्टो देशराज्यादिकं बहु ।
तावच्चेत् प्रलपेच्छास्त्रं कोन मुच्येत वन्धनात् ॥५
अर्थार्थे यानि कर्म्माणि करोति कृपणो जनः ।
तान्येव यदि मोक्षार्थी कोन मुच्येत बन्धनात् ॥ ६
यथा सुनिपुणः सम्यक् परदोषेक्षणं प्रति ।
तथा चेन्निपुणः स्वेनु कोन मुच्येत वन्धनात् ॥७

सुतां रूपवतीं दृष्ट्वा यथा चिरं न कम्पते ।
तथा चेत् परदारेषु कोन मुच्येत वन्धनात् ॥ ८
स्तूयमानो यथा नित्यं सुप्रसन्नो भवेन्नरः ।
यद्येवंनिन्द्यमानोपि कोन मुच्येत वन्धनात् ॥ ९
अपापमशठं वृत्तमजिह्मं नित्यमाचरेत् ॥
इन्द्रियाण्युपसंहृत्य कूर्म्मोऽङ्गानीव सर्व्वशः ॥१०
क्षीणेन्द्रियमनोबुद्धि र्निरीक्षेत निरिन्द्रियः ।
निर्द्वन्द्वो निर्नमस्कारो निः स्वधाकार एव च ॥ ११
निर्म्ममो निरहङ्कारो निरपेक्षोनिराशिषः ।
यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान् मनसः प्रियान् । १२
तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः ।
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥ १३
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूयएवाभिवर्द्धते ।
यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ॥ १४
एकस्यापि न पर्य्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत् ।
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्य्यतो या नजीर्य्यते ॥ १५
तां तृष्णां संत्यजन् प्राज्ञः सुखेनैवाभिपूर्य्यते ।
यथा बुद्धिरविद्यायामज्ञानात्तात जायते ॥ १६
काणोऽग्निं किं न खद्योतमसुरेश्वर मन्यते ।
तत् कर्म्म यन्न वन्धाय सा विद्या या विमुक्तये ॥ १७
आयासायापरं कर्म्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम् ।
कः केन रक्षते जन्तुः जन्तुः कः केन हन्यते ॥ १८
हन्ति रक्षति चैवात्मा असत् साधु समाचरन् ।

तापत्रयेणाभिहतं यदेतदखिलं जगत् ॥१६

तदा शोचिषु भूतेषु द्वेषं प्राज्ञः करोति कः ।

यदा न कुरुते भावं सर्व्वभूतेषु पापकम् ॥२०

समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्व्वाः सुखमया दिशः ।

अन्येषां यानि पापानि चिन्तयत्यात्मनो यथा ॥ २१

निराशःसर्व्वभूतेषु निराशी र्निष्परिग्रहः ।

सर्व्वज्ञः सर्व्वतो मुक्तो मुच्यते नात्रसंशयः । इति २२

॥ दत्तसंहितायां ॥ वैणवेन त्रिदण्डेन न त्रिदण्डीति चोच्य

अध्यात्मदण्डयुक्तो यः सत्रिदण्डीति कथ्यते ॥२३

वागादिदण्डयुक्तस्तु प्रत्यगात्मन्यवस्थितः ।

परब्रह्मणि लीनो यः स त्रिदण्डीत्यवस्थितः ॥ २४

॥ यमः ॥ श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः

नहृष्यति न च स्तौति स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥२५

॥ विष्णुपुराणेऽपि ॥

मनोरथानां न समाप्तिरस्ति वर्षायुतेनाप्यथ वापि लक्षैः

पूर्णेषु पूर्णेषु पुनर्भवानामुत्पत्तयः सन्ति मनोरथानां

कर्म्मणा मनसा वाचा परपीडां करोति यः ।

तद्बीजं जन्म फलति प्रभूतं तस्य चाशुभम् । २८

सोऽहं नपापमिच्छामि नकरोमि वदामि वा ।

चिन्तयन् सर्व्वभूतस्थमात्मन्यपि चकेशवम् ॥ २६

शारीरं मानसं दुःखं दैवं भूतमयं तथा ।

सर्व्वत्र समचित्तस्य तस्य मे जायते कुतः ॥३०

एवं सर्व्वेषु भुतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी ।

कर्त्तव्या पण्डितै र्ज्ञात्वा सर्व्वभूतमयं हरिम् ॥ ३१
सर्व्वभूतात्मके तात जगन्नाथे जगन्मये ।
परमात्मनि गोविन्दे मित्रशत्रुकथा कुतः ॥ ३२
त्वय्यस्ति भगवान् विष्णु र्मयि चान्यत्र च स्थितः ।
यतस्ततोऽयं मित्रं वै शत्रुश्चैव पृथक् कुतः ॥ ३३
देवामनुष्याः पशवः पक्षिवृक्षसरीसृपाः ।
रुपमेतदनन्तस्य विष्णोर्भिन्नमिवस्थितम्॥ ३४
एतद्विजानता सर्व्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
द्रष्टव्य मात्मवद्विष्णुर्यतोऽयं विश्वरूपधृक् ॥३५
एवं ज्ञाते सभगवाननादिः परमेश्वरः ।
प्रसीदत्यच्युतस्तस्मिन् प्रसन्ने क्लेशसंक्षयः ।३६
मनुसंहितायां॥ अस्थिस्थूणं स्नायुवद्धं मांसशोणितलेपनम्।
चर्म्मावनद्धं दुर्गन्धं पूर्णंमूत्रपुरीषयोः ॥३७
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ।
रजस्वलमनित्यञ्च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥ ३८
सान्तः करणेन्द्रियदेहेषु आत्मवुद्धिं विवेकवुद्ध्या त्यजेदिति
भेयःकार्य्यम्॥ नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनि र्यथा ॥
तथा त्यजन्निमं देहंकृच्छ्राग्रामाद्विमुच्यते ॥ ३९
कृच्छ्राग्रामाद् दुःखसमुदयात् ॥ विष्णुः ॥
त्यक्त्वालोकांश्च वेदांश्च विषयाणीन्द्रियाणि च ।
आत्मन्येव स्थितो यस्तु प्राप्नोति परमाङ्गतिम् ॥ ४०
दोषदर्शी भवेत्तत्र यत्र रागः प्रवर्त्तते ।
अनिष्टवद्धितं पश्येत्तथा क्षिप्रं विरज्यते ॥ ४१

यदनित्यस्य कामस्य पदं तस्माद्वहि र्भवेत् ।
दण्डमुद्यम्य लोकोऽयं शुनः काकांश्च वारयेत् ॥ ४२
यान्येव मलवाहीनि पूतिच्छिद्राणि योषिताम् ।
तान्येव खलुकाम्यानि अहो पुंसां विड़म्वना ॥ ४३
चर्म्मखण्डं द्विधाभिन्नं पुरीषोद्गारधूमितम् ॥
ये रमन्ति नरास्तेभ्यः साहसं किमतः परम् ॥ ४४
पृथिव्यां जीववत् पुंसि तिष्ठत्येव शुभाशुभम् ।
आब्रह्मणः परिज्ञानात् संसरत्येव ना ततः ॥ ४५
यथा पृथिव्यां वीजानि रत्नानि निधिपे यथा ।
एवमात्मनि कर्म्माणि तिष्ठन्ति च विशन्ति च ॥ ४६
नित्यज्ञानं समासाद्य नरो बन्धात् प्रमुच्यते ।
धर्म्मात् सुखञ्च ज्ञानश्च ज्ञानान् मोक्षोऽधिगम्यते॥ ४७
अनुदकातु या सन्ध्या वाक्कायक्लेशवर्ज्जिता ।
सन्धिनी सर्व्वभूतानां सासन्ध्याह्येकदण्डिनाम् ॥ इति याज्ञवल्क्यः॥
ध्यानयोगेन संपश्येत् सूक्ष्म आत्मात्मनिस्थितः॥ ४८
॥ पातञ्जले ॥ योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ अस्यार्थः ॥
आत्मैकाग्रता ध्यानंयोगेन निदिध्यासनापर पर्य्यायेण सू
प्राण शरीरादि व्यतिरिक्तःक्षेत्रज्ञ आत्मनि ब्रह्मण्यवि
इत्येवं तत्त्वंपदार्थयोरभेदं सम्यक् पश्येदपरोक्षं कुर्य्यात्
लोहितार्कमुपासीत सन्ध्यामातारकोदयात् ।
हृत्पद्मकोटरावासं चिन्मात्रज्योतिषं हरिम् १
ध्यायन्नारायणं ह्यादौ त्रीन् कृत्वा प्राणसंयमान् ।

तावद्ध्यायेत् पुनर्यावदभिद्रावमुपागतः ॥ २
सुप्तोत्थितः पुनर्ध्यायेत्तिष्ठन् ध्यायन् जपेत् पुनः ।
एकस्मिन्नप्यतिक्रान्ते मुहूर्त्ते ध्यानवर्ज्जिते ॥ ३
दस्युभि र्मुषितस्येदं युक्तमात्रं विदुर्भृशम् ॥
प्रागग्रे पररात्रे च मध्यरात्रे समाहितः ॥
सन्ध्यास्वपि विशेषेण चिन्तयेन्नित्य मीश्वरं ।
इत्येवं शरीरावस्था ज्ञातव्या ॥ अथपर्य्यटनविधिमाह ॥
अत्रिः ॥ हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये ख्यातः पुण्यतमः श्रुतौ ।
देशः सरस्वतीतीरे करोदायास्तु पश्चिमे । ६
ब्रह्मैवाहं न संसारी मुक्तोऽहमिति भावयेत् ॥
भावनेप्यसमर्थश्चे द्वाक्यमेतदुदीरयेत् ॥
दग्धोवै वह्निना पूर्वं पवित्रीकरणाय वै ।
योगध्यानतपोध्यानसिद्ध्यर्थं वै महात्मनाम् ॥ ८
तस्मिन् देशे सदा भिक्षुः स्वधर्म्ममनुपालयन् ।
पर्य्यटेत्तुसदा योगी वीक्षयन् वसुधातलम् ॥ ९
नरात्रौ नैव मध्यान्हे सन्ध्ययो र्नैव पर्य्यटेत् ॥
न शून्ये न च दुर्गे वा प्राणबाधकरेण च ॥ १०
अविमुक्ते वाराणस्यां विहारो नैव विद्यते ।
यत्र प्रभुर्भवोनाथ स्तत्र योगी बसेत् सदा ॥ ११
भिक्षार्थं प्रविशेद्ग्रामं वासार्थं वा दिनत्रयम् ।
एकरात्रं वसेद्ग्रामे पत्तने तु दिनत्रयम् ॥ १२
पुरे दिनद्वयं भिक्षुर्नगरे पञ्चरात्रकम् ।
वर्षास्वेकत्र तिष्ठेत स्थाने पुण्यजलावृते ।

आत्मवत् सर्व्वभूतानि पश्यन् भिक्षुश्चरेन्महीम् ।
अन्धवत् कुब्जवच्चापि वधिरोन्मत्तमूकवत् ॥ १४
नाम गोत्रादि चरणं देशं वा संश्रुतं कुलं ।
वयोवृत्तं व्रतं शीलं ख्यापयेन्नैव सद्यतिः ॥ इति १५
विष्णुः ॥ ग्रामान्ते निर्ज्जने देशे नित्यं वासनिकेतनः॥
पर्य्यटेत् कीटवद्भूमौ वर्षास्वेकत्र संवसेत् ॥ १६
वृद्धानामातुराणाञ्च भिक्षूणां सङ्गवर्ज्जिनाम् ।
ग्रामेऽथ वा पुरेवापि वासो नैकत्र दुष्यति ॥ १७
यमः ॥ एकवासा अवासा वा एकदृष्टिरलोलुपः ।
अदूषयन् सतां मार्गं ध्यानासक्तो महीं चरेत् १८
जलेजीवाः स्थले जीवा आकाशेजीव मालिनी ।
जीबमालाकुले लोके वर्षास्वेकत्र संवसेत् ॥ १९
चातुर्मास्यविधिः ॥ अत्रिसंहितायां ।
द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा कुर्य्यात् संकल्प मात्मवान् ।
आरुणी श्रुतिः ॥ बर्षासु ध्रुवशीलोऽष्टौमास्येकाकी
यतिश्चरेत् । द्वावेबाचरेद्द्वावेवा चरेदिति ॥ २०
कठ श्रुतिः ॥ चतुरो मासान् वार्षिकान् ग्रामेवा नगरे
दिति यावद्वर्षत्यकालेपि यावत् क्लिन्नाचमेदिनी ।
तावन्न विचरेद्भिक्षुः स्वधर्म्मं परिपालयन् ॥ २१ इति
अथ यतिधर्म्मसमुच्चये पर्य्यटन माह । पाराशर
वीये मात्स्य । गुरोरपि हित युक्त मनुसंवत्सरं वसेत्
नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदा भवेत् ॥ २२
प्राप्य चान्ते ततश्चैव ज्ञानयोगमनुत्तमम् ।

अविरोधेन धर्म्मस्य चरेत्तु पृथिवीमिमाम्। इति २३
धर्म्मस्येति स्नानसन्ध्याजपादेरित्यर्थः॥
लैङ्गेऽपि। आश्रमत्रयमुल्लंघ्य प्राप्तस्य परमाश्रमम्।
ततः संवत्सरस्यान्ते प्राप्य ज्ञानमनुत्तमम्। २४
अनुज्ञाप्य गुरुं चैव चरेत्तु पृथिवीमिमाम्।
गुरुमूलाः क्रियाः सर्व्वा भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः॥ २५
तस्मात् सेव्यो गुरुर्नित्यं मुक्त्यर्थं सुसमाहितैः।
न कुर्य्यान्नियमारम्भ मनिवेद्य स्वयं गुरुम्।
छायाभूतो परित्यागी नित्यमेव वसेद्गुरौ।
श्रद्धयापरया युक्तः सदा द्वादश सन्ध्ययोः॥ २७
दण्डप्रणामान् कुर्व्वीत देवतागुरु सन्निधौ।
नातिक्रमेत मर्य्यादां गुरुणा या प्रकीर्त्तिता॥ २८
गुरु शुश्रूषणं नाम धर्म्मो ज्येष्ठः प्रकीर्त्तितः।
गुरो नैवाप्रियं कुर्य्यात् पण्डिते पतिते पिवा॥ २९
नाभाषयेच्च तद्वाक्यं नावमानं समाचरेत्।
आचार्य्यस्य प्रियं कुर्य्यात् प्राणैरपि धनैरपि। ३०
कर्म्मणा मनसा वाचा सयाति परमां गतिम्।
अस्यार्थः। दण्डप्रणामानिति दण्डवत् प्रणामानित्यर्थः।
ननु दण्डेन प्रणामानिति कायिकादि त्रिविध-
नमस्कारं प्रति तस्य करणासंभवादित्युक्तमधस्तादेव।
देवतागुरु सन्निधावपि देवतावद् गुरुसन्निधावित्यर्थः।
गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्त्तते।
कर्णौतत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः॥ ३१

गुरोश्च चक्षु विषये नचोच्छिष्टासनो भवेत् ।
नदेशो न च कालस्तु न हिंसा गुरुकर्म्मसु ॥ ३२
सर्व्वत्रैवानुकूलः स्यादेतावान् धर्म्मसंग्रहः ।
नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलं नैव चास्यानुकुर्वी
गतिभाषणचेष्टितमिति । ३३
हितप्राप्तिमहितपरिहारञ्च गृणाति कथयतीति गुरुशब्दा
सएवाचार्य्य इत्युच्यते ॥ तल्लक्षणन्तु पुराणेषु दृश्यते।
आचिनोति हि शास्त्राणि आचारे स्थापयत्यपि ।
स्वयमाचरते यस्तु तमाचार्य्यं विदु बुधाः ॥ इति ॥३४

पर्य्यटने विशेष माह कण्वः ॥

एकरात्रं वसेद् ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम् ।
वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांश्च चतुरो वसेत् ॥३५
मत्स्यपुराणे॥अष्टौमासान् विहारःस्याद् यतीनां संयता
एकत्रचतुरोमासान् वार्षिकान्निवसेत् पुनः ॥३६
अविमुक्ते प्रविष्टानां विहारस्तुन विद्यते ।
न देहो भवितातत्रदृष्टं शास्त्रं पुरातनम् इति ३७
॥भविष्ये॥ ब्रह्मादिदेवलोकानां मुक्तेश्च प्राप्तयेनृणां ।
गङ्गैव परमोहेतुः कलिकाले विशेषतः ॥ इति ॥३८
गङ्गाचद्विविधाजाता भागीरथी गौतमीच तदुक्तं ब्रह्माण्डपु
एकमेव जटाजुटे शम्भोरासीन् महज्जलम् ।
अर्द्धं भगीरथानीतं अर्द्धं तद् गौतमाहृतम् इति ॥३९
॥ याज्ञवल्क्यः ॥ सर्व्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डीसकमण्डलु
एकारामः परिव्राट्च भिक्षार्थी ग्राममाविशेत् ॥४०

एतच्चव्याचख्यौ विज्ञानेश्वरः। तदपिच संक्षेपतोऽत्र लिख्यते॥ सर्व्वभूतेभ्यः प्रियाप्रियकारिभ्यो हितः समबुद्धि रुदासीन इति यावत् ॥ शान्तावाह्यान्तःकरणोपरताः त्रयोदण्डाअस्या स्तीति त्रिदण्डीतेच दण्डा वैणवा ग्राह्याः प्राजापत्ये ष्ट्यनन्तरं। त्रीन् वैणवान्न दण्डान् दक्षिणेन पाणिना धारयेत् सव्येन सोदकं कमण्डलु मिति। स्मृत्यन्तरे। एकंवादण्डं धारयेत् ॥ सूक्ष्येदण्डीत्रि दण्डी वेति वौधायन स्मरणात्। तथा शिखा धारणा मपि वैकल्पिकमेव। मुण्डी शिखीवेति गौतम स्मरणात्। यज्ञोपवीतधारणा मिति वैकल्पिक मेव। सशिखान् केशान्निकृत्य विसृज्य यज्ञोपवीतं इति काठकश्रुति दर्शनात्। शिखी यज्ञोपवीतीस्यादिति पुराणवचनाच्च॥ शौचाद्यर्थं सकमण्डलुश्च भवेदेकारामःप्रव्रजितान्तरेणासहायः सन्न्यासी त्रिभिस्त्रिभिश्चत्रीणिचैक इति वौधायनेनस्मरणात्। ॥तथाच दक्षः॥ एकोभिक्षुर्यथोक्तस्तु द्वावेव मिथुनंस्मृतम्।
त्रयोग्रामः समाख्यात ऊर्द्ध्वन्तु नगरायते ॥४१
राजवार्त्तादि तेषाञ्च भिक्षावार्त्ता परस्परम्।
स्नेहपैशुन्य मात्सर्य्यं सन्निकर्षात् प्रवर्त्तते ॥ इति ४२

अस्यार्थः॥ परिव्राट् परिपूर्व्वोव्रजि स्त्यागे प्रवर्त्तते अतश्चाहं ममाभिमानं तत्कृतं लौकिकं कर्म्मनिचयं वैदिकञ्चनित्यकाम्यात्मकं संत्यजेत् ॥ तदुक्तंमनुनापि ॥
कर्म्माभ्युदयिकञ्चैव नैःश्रेयसिकमेवच।
प्रवृत्तञ्च निवृत्तञ्च द्विविधं कर्म्म वैदिकम् ॥४३
इहचामुत्रवा काम्यं प्रवृत्तं कर्म्म कीर्त्त्यते।

निष्कामज्ञानपूर्व्वन्तु निवृत्तमुपदिश्यते ॥४४

तथोक्तानिच कर्म्माणि परिहाय द्विजोत्तमः।
आत्मज्ञाने शमेचस्याद्वेदाभ्यासेच यत्नवान् ॥४५

अत्रवेदाभ्यासः प्रणवाभ्यासः। तत्रयत्नवान् इत्यर्थः।
तथा भिक्षाप्रयोजनार्थी ग्राममाविशेत् प्रविशेत् पुनः स्था
निवासार्थं वर्षाकाले न दोषः। ऊर्द्धं वार्षिकाभ्यां मासाभ्यां
नैकत्रवासीति शङ्खोक्तेः॥ अशक्तेन पुनर्मासचतुष्टयम्
स्थातव्यं न चिरमेकत्र वसेदन्यत्र वर्षाकालादिति॥ आषा
दयश्चत्वारो वर्षाकाल इति देबलस्मरणात्। कथं भिक्षा
कार्य्यमिति स एवाह॥

अप्रमत्तश्चरेद्भैक्ष्यं सायान्हेनाभिलक्षितः।
रहिते भिक्षुकैर्ग्रामे यात्रामात्र मलोलुपः ॥४६

अप्रमत्तो वाक् चक्षुरादिचापल्यरहितो भैक्ष्यं चरेत्।
वशिष्ठेनात्र विशेषो दर्शितः। सप्तागाराण्य संकल्पिता
चरेद्भैक्षमिति। सायान्हे पञ्चमे भागे अभिलक्षि
ज्योतिर्ज्ञानोपदेशादिनाचिन्हितः। न चोत्पातनिमित्ता
भिक्षांलिप्सेत कर्हिचित्। इति मनूक्तत्वात् रहितै भि
रितिकेवल भिक्षणशीलैः पाषण्डादिभिः पतितैः रहितेग्रा
मनुनात्र विशेषो दर्शितः।

न तापसै र्ब्राह्मणै र्वा वयोभिरथवाश्वभिः।
आकीर्णां भिक्षुकै रेतै रगार मुपसंव्रजेदिति॥ ४७

यात्रामात्र मिति। यावता प्राण यात्रा सिध्यति तावन्
भैक्ष्यं चरेदित्यर्थः। तथा च संवर्त्तः।

अष्टौ भिक्षाःसमादाय सन्मुनिः सप्तपञ्चवा ।
अद्भिः प्रक्षाल्य ताः सर्व्वास्ततोऽश्नीयाच्च वाग्यतः ॥४८

इति संक्षेपेण विज्ञानेश्वरमत संग्रहः ॥

इति पर्य्यटनं समाप्तं । पुनरपि भिक्षा प्रकरणमाह ॥.

॥ हारीतसंहितायां ॥

सायंकालेतु विप्राणां गृहाण्यभ्यवपद्यतु ।
सम्यग् याचेत कवलं दक्षिणेन करेणवै ॥१
पात्रं वामकरे स्थाप्य दक्षिणेनतु शेषयेत् ।
यावताऽन्नेन तृप्तिः स्यात्तावद्भैक्ष्यं समाचरेत् ॥२
ततो निवृत्य तत्पात्रं संस्थाप्यान्यत्र संयमी ।
चतुर्भिरङ्गुलैश्छाद्य ग्रासमात्रं समाहितः ॥३
सर्व्वव्यञ्जनसंयुक्तं पृथक्पात्रे नियोजयेत् ।
सूर्य्यादिभूतदेवेभ्यो दत्वा संप्रोक्ष्य वारिणा ॥४
भुञ्जीत पात्रपुटके पात्रे वा वाग्यतो यतिः ।
वटकाश्वत्थपर्णेषु कुम्भीतैन्दुकपात्रके ॥५
कोविदारकदम्बेषु न भुञ्जीयात् कदाचन ।
मलाक्ताः सर्व्व उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः ॥६
कांस्यभाण्डेषुयत्पाको गृहस्थस्य तथैवच ।
कांस्ये भोजयतः सर्व्वं किल्विषं प्राप्नुयात्तयोः ॥७
भुक्त्वापात्रे यतिर्नित्यं क्षालयेन्मन्त्रपूर्व्वकम् ।
नदुष्यतेच तत्पात्रं यज्ञेषु चमसाइव ॥८
अथाचम्य निदिध्यास्य उपतिष्ठेत भास्करम् ।
जपध्यानेतिहासैश्च दिनशेषं नयेद्बुधः ॥६

कृतसन्ध्यस्ततोरात्रिं नयेद्देवगृहादिषु ।
हृत्पुण्डरीकनिलये ध्यायेदात्मानमव्ययम् ॥१०
यतिधर्म्मरतिः शान्तः सर्व्वभूतसमोवशी ।
प्राप्नोतिपरमं स्थानं यत् प्राप्य न निवर्त्तते ॥११
त्रिदण्डभृद्योहि पृथक् समाचरेच्छनैः शनै र्यस्तु वहि
श्चान्तः। संमुच्य संसार समस्त वन्धनं स याति विष्णो
रमृतात्मनः पदं ॥१२॥ इति हारीते धर्म्मशास्त्रे यतिध
षष्ठोऽध्यायः ॥ अत्रि संहितायां ॥
सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषुच ।
भुञ्जन् भिक्षुर्नदुष्येतदुष्येच्चैव परिग्रहात् ॥१३
यतिहस्ते जलं दद्याद्भिक्षां दद्यात् पुनर्जलम् ।
तद्भैक्ष्यं मेरुणातुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥१४
चरेन्माधुकरीं वृत्तिमपिम्लेच्छकुलादपि ।
एकान्नं नैव भोक्तव्यं वृहस्पतिकुलादपि ॥१५
अनापदि चरेद्यस्तु सिद्धभैक्ष्यं गृहेवसन् ।
दशरात्रं पिवेद्वज्रमपस्तुत्र्यह मेवच ॥
गोमूत्रेणतु संमिश्रं यावकं घृतपाचितम् ॥
एतद्वज्रमिति प्रोक्तं भगवानत्रिरब्रवीत् ॥१७
ये प्रत्यवासिताविप्राः प्रव्रज्याग्निजलादितः ।
अनाशकान्निवर्त्तन्ते चिकीर्षन्ति गृहास्थितिम् ॥१८
धारयेत्त्रीणि कृच्छ्राणि चान्द्रायणमथापिवा ।
जातकर्म्मादिकं प्रोक्तं पुनः संस्कारमर्हति ॥१९
देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च ।

उत्सवेषु च सर्व्वेषु स्पृष्टास्पृष्टिर्न विद्यते ॥२०
ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेणगर्व्वितः ।
तेनैव स च पापेन विप्रः पशुरुदाहृतः ॥२१
॥ विष्णुसंहितायाम् ॥
आत्मन्यग्नीनारोप्य भिक्षार्थं ग्राममियात् ॥१
साप्तगारिकं भैक्ष्यमादद्यात् ॥२॥ अलाभे न व्यथेत ॥३
न भिक्षुकं भिक्षेत ॥ ४ ॥ भुक्तवतिजनेऽतीते पात्रसंपाते भैक्ष्यमादद्यात् ॥५॥ मृण्मये दारुपात्रेऽलाबुपात्रेवा ॥६॥ तेषाञ्च तस्याद्भिः शुद्धिःस्यात् ॥७॥ अभि पूजित लाभादुद्विजेत ॥८॥ शून्यागार निकेतनः स्यात् ॥९॥ वृक्षमूलनिकेतनो वा ॥१०॥ न ग्रामे द्वितीयां रात्रिमावसेत्॥११॥ कौपीनाच्छादनमात्रमेव वसनमादद्यात् ॥१२
मरणं नाभिकामयेत जीवितञ्च ॥१३॥ अतिवादांस्तितिक्षेत ॥१४॥ न कञ्चनावमन्येत ॥१५॥ निराशीः स्यात्॥१६॥ निर्नमस्कारः ॥१७॥ वास्यैकं तक्षतो बाहुं चन्दनेनैक मुक्षतः नाकल्याणं न कल्याणं तयोरपिच चिन्तयेत् ॥१८
प्राणायाम धारणा ध्यान नित्यः स्यात् ॥१९॥
संसारस्यानित्यतां पश्येत् ॥२०॥ शरीरस्याशुचिभावम्॥२१ जरायारूप विपर्य्ययम्॥२२॥शारीर मानसागन्तुक व्याधिभिश्चोपतापं ॥२३॥ सहजैश्च ॥ २४॥ नित्यान्धकारे गर्भे वसतिं ॥२५॥ मुत्र पुरीषमध्येच ॥२६॥तत्र च शीतोष्णादुःखानुभवनं जन्मसमये योनि सङ्कट निर्गमात् महादुःखानुभवनम्॥२३॥ बाल्ये मोहं गुरुपरवश्यताम् ॥२७॥ अध्ययना

दनेकक्लेशं ॥२८॥ यौवनेच विषयाप्राप्तावमार्गेण तदवा
विषयसेवनान्नरके पतनम् ॥ २९ ॥ अप्रिये वसतिं प्रियै
विप्रयोगम्॥३०॥नरकेषु च दुःखसमूहम्॥३१॥संसार सं
तौ तिर्य्यग् योनिषु च॥एव मस्मिन् सतत तापिनि सं
न किञ्चित् सुखम् ३२ यद्यपि किञ्चिद्दुःखापेक्षया सुखं
तदप्यनित्यं ॥३३॥ तत् सेवाशक्तावलभने वा महद्दुःखं ॥
शरीरञ्चेदं सप्तधातुकं पश्येत् ॥३५॥वसारुधिर मांसा
मेदोमज्जशुक्रात्मकम् ॥ चर्म्मावनद्धं दुर्गन्धि च म
यतनं । सुख शतैरपिवृतं विकारि ॥ प्रयत्नाद्धृतमपि कि
शि ॥ काम क्रोधलोभमोहमदमात्सर्य्यस्थानं ॥ ३६॥

इदं शरीरं वसुधे क्षेत्र मित्यभिधीयते ।
एतद् यो वेत्ति तंप्राहु : क्षेत्रज्ञमिति तद्विदः ॥ ४१
क्षेत्रज्ञमेवमां विद्धिसर्व्व क्षेत्रेषु भाविनि ।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विज्ञानं ज्ञेयं नित्यं मुमुक्षुणा ॥ इति ॥४

॥याज्ञवल्क्यः॥ सर्व्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्ड
एकारामः परिव्राज्य भिक्षार्थीग्राम माश्रयेत् ॥१
अप्रमत्तश्चरेद्भैक्ष्यं सायान्हे नाभिलक्षितः ।
रहिते भिक्षुकैर्ग्रामे यात्रामात्रमलोलुपः । इति २
उशनःसंहितायां सजातीय गृहेष्वेवं सार्व्ववर्णिकमेव
भैक्ष्यस्याचरणंप्रोक्तं पतितादिषु वर्जितम् ।
वेदयज्ञाद्यहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्म्मसु ॥५
ब्रह्मचारी चरेद्भैक्ष्यं गृहेषु प्रयतोऽन्वहम् ।
गुरोःकुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलवन्धुषु ॥६

अभावेऽप्यथ गेहानां पूर्व्वंपूर्व्वं विवर्ज्जयेत् ।
पूर्व्वंवापि चरेद्ग्रामं पूर्व्वोक्तानामसम्भवे ॥७
नियम्य प्रयतो वाचं दिशश्चानवलोकयन् ।
समाहृत्यतु तद्भैक्ष्यं यावदर्थमिहाज्ञया ॥८
भुञ्जीत प्रयतो नित्यं वाग्यतो नन्यमानसः ।
भैक्ष्येणावर्त्तयेन्नित्यं कामनाशी भवेद्व्रती ॥९
भैक्ष्येण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमास्मृता ॥
प्रकृतेर्गुणतत्त्वज्ञोयोऽश्नातीह यति र्भवेत् ॥१८
फलं वेद विदां तस्य सहस्रादतिरिच्यते ॥ इति
॥अङ्गिरःसंहितायां निषिद्धान्न वर्ज्जनमाह ॥
यो भुंक्तेहिच शूद्रान्नं मासमेकं निरन्तरम् ॥१९
इहजन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वाचाभिजायते ।
शूद्रान्नं शुद्रसम्पर्कः शूद्रेणाच सहासनम् ॥२०
शुद्राज्ज्ञानागमः कश्चिज्ज्वलन्तमपि पातयेत् ॥
अप्रणामेतु शूद्रेपि स्वस्ति यो वदतिद्विजः ॥२१
शूद्रोपि नरकं याति ब्राह्मणोपि तथैवच ।
दशाहाच्छुध्यते विप्रो द्वादशाहेन भूमिपः ॥२२
पक्षेण वैश्य एवेह शूद्रो मासेन शुध्यति ।
अग्निहोत्रीचयो विप्रः शूद्रान्नञ्चैव भोजयेत् ॥
पञ्चतस्य प्रणश्यन्ति आत्मादेवास्त्रयोऽग्नयः ॥
शूद्रान्नेनतु भुक्तेन यो द्विजो जनयेत् सुतान् ॥२४
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रं प्रवर्त्तते ।
शूद्रेणस्पृष्ट मुच्छिष्टं प्रमादादथपाणिना ॥५

तद्द्विजेभ्योन दातव्य मापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः ।
ब्राह्मणस्य सदाभुंक्ते क्षत्रियस्यच पर्व्वसु ॥२६
वैश्यस्यापत्सु भुञ्जीत न शूद्रस्य कदाचन ।
ब्राह्मणान्ने दरिद्रत्वं क्षत्रियान्ने पशुस्तथा ॥२७
वैश्यान्नेन तु शूद्रत्वं शूद्रान्नेनरकं ध्रुवम् ।
अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् ॥२८
वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्नं रुधिरं ध्रुवम् ।
दुष्कृतंहि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठति ॥२६
यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्विषम् ।
सूतकेषु यदा विप्रो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥४०
पिवेत् पानीयमज्ञानाद्भुंक्ते भुक्तमथापिवा ।
याचकान्नं नवश्राद्धमपि सूतकभोजनम् ॥४१
नारीप्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।
अन्यदत्ता तु या कन्या पुनरन्यस्य दीयते ॥३२
तस्या श्चान्नं न भोक्तव्यं पुनर्भूः सा प्रणीयते ।
भर्तृशासन मुल्लङ्घ्य याच स्त्री विप्रवर्त्तते ॥ ३३
तस्याश्चैव न भोक्तव्यं विज्ञेया कामचारिणी ।
अनपत्यातु यानारी नाश्नीयात्तद्गृहे पि वै ॥३४
अथ भुंक्ते तु यो मोहात् पूयसंनरकं व्रजेत् ।
राजान्नं हरते तेजः शूद्रान्नं ब्रह्मवर्च्चसः ॥३५
सूतकेषुचयो भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् ।
पतितान्नं निषिद्धमाह यम संहितायाम् ।
श्वित्री कुष्ठी तथाचैव कुनखी श्यावदन्तकः ॥३६.

रोगीहीनातिरिक्ताङ्गः पिशुनो मत्सरस्तथा ।
दुर्भगो हि तथाषण्डः पाषण्डी वेदनिन्दकः ॥३७
नित्यं प्रतिग्रहं लब्धा याचको विषयात्मकः ॥
प्रयावदन्तोऽथ वैद्यश्च असदालपकस्तथा ॥३८
एते श्राद्धे च दानेच वर्ज्जनीया प्रयत्नतः ।
ततो देवलकश्चैव भृतको वेदविक्रयी ॥३९
एते वर्ज्ज्याः प्रयत्नेन एतद्भास्वतिरब्रवीत् ॥
एतान्नियोजयेद् यस्तु हव्ये कव्ये च कर्म्मणि ॥४०
निराशाः पितरस्तस्य यान्ति देवामहर्षिभिः ॥
॥संवर्त्तसंहितायां॥ वेदाभ्यासरतो नित्यमात्मविद्या परायणः
अरण्ये निर्ज्जने विप्रः पुनरासीत भुक्तवान् ।
एकाकी चिन्तयेन्नित्यं मनोवाक्कायसंयतः ॥४३
मृत्युञ्च नाभिनन्देत जीवितं वा कथञ्चन ।
कालमेव प्रतीक्षेत यावदायुः समाप्यते ॥४४
संसेव्य चाश्रमेष्वेतान् जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति वेदशास्त्रार्थविद्द्विजः ॥४५
आश्रमेषु च सर्व्वेषु ह्युक्तः प्रासङ्गिको विधिः ।
अथाभिवक्ष्येपापानां प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥ इति ॥४६
वसिष्ठसंहितायां अष्टौ ग्रासान् यते भुक्तं वानप्रस्थस्य षोडश
द्वात्रिंशत्तु गृहस्थस्य अमितं ब्रह्मचारिणः इति ॥ ४७
व्यास संहितायां॥ यत्यन्नं यतिपात्रञ्च यतिना प्रेरितञ्चयत् ।
तदन्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ॥४८
पलाशपद्मपत्रेषु गृहस्थो भोक्तु मर्हति ।

ब्रह्मचारी यतिश्चैव श्रेयो यद्भोक्तु मर्हति ॥इति ४६
अथ यतीनां क्षौरकर्म्मविधि माह ॥ आपस्तम्वः।
कक्षोपस्थशिखावर्ज्जं ऋतुसन्धिषु वापयेत्।
न त्रीनृतूनतिक्रामेन्न भिक्षुः संचरेत् क्वचित्॥ १
मेधातिथिः॥यावद्वर्षर्त्तुकालोहि यावत् क्लिन्नाच मेदिनी।
तावन्न विचरे द्भिक्षुः स्वधर्म्मं परिपालयेत् ॥२
कक्षोपस्थशिखावर्ज्जमृतु सन्धिषु वापयेत्।
न त्रीनृतूनतिक्रामेन्न भिक्षुः संचरेत् क्वचित्॥ ३
अत्रऋतु सन्धिषु वापयेदित्यनेन वर्षासु एकत्रवासे मास
पक्षोऽभिहितः॥ नत्रीनृतूनतिक्रमेदित्यनेन मासचतु
पक्षोऽभिहितः॥ आपस्तम्वः॥
मासिमासि गृहस्थस्य पक्षे पक्षे तु यज्विनाम्
ऋतौ मासे यतीनाञ्च यथेष्टं ब्रह्मचारिणाम् ॥४
पुराणान्तरेपि॥चतुरोऽयं वसेन्मासान् द्वौवा कौशिक वा
कक्षोपस्थ शिखावर्ज्जं मृतु सन्धिषु वापयेत्॥ ५॥
इति कौशिकेति सम्वोध्य सम्वोधनम्।
यदा च ऋतु र्मास त्रयात्मक स्तदा क्षौर द्वयं कार्य्यमि
विश्वेश्वरपद्धतौ॥ वपनान्तरं स्नायात् मृद्भि द्वादशभि
द्वादशैव प्रकुर्व्वीत क्षौरान्ते प्राणसंयमान् ॥६
आषाढ्यां पौर्णमास्यान्तु कारयेद्वपनं यतिः।
चातु र्मासस्य मध्ये तु वर्ज्जयेद्वपनं यतिः॥७
अधिमासो यदा विप्र तदा क्षौरद्वयं भवेत्।
मासद्वयेन प्रथमं मासैकेन तथा परम्। इति ८

संप्रदायविदाचार्य्यवाक्यमाह । अथ चौरकर्म्मविधिः ॥
वैशाखी आचार्य्यचौरं । आषाटी व्यासचौरं । भाद्रपदी विश्वरूपचौरं । कार्त्तिकी ज्योतिःचौरं पौषी ब्रह्मचौरं । फाल्गुनी दत्तात्रेय चौरं । इत्येवं चौरप्रयुक्तपादग्रहणमिति ॥ इत्थ ञ्चाषाढ्यां वपनपूर्व्वकमेकत्रवाससंकल्पं विधाय ततः कार्तिक्यां भाद्रपद्यां वा चौरं कृत्वा देशान्तरसंचारः कार्य्यः। तथा च स्मृत्यन्तरे ॥ चातुर्मास्य कार्त्तिक्यां चौरं कर्म्म न चान्तरा ॥ देशकालविरोधेतु भाद्र्यामपि क्वचिन्मतमिति ॥६॥ अत्र ऋतुसन्धिषु वापयेदित्यर्थ : ॥ अयं नियम विधिः । ऋतुसन्धिष्वेव वापयेदिति तेन ऋतु सन्धि व्यतिरिक्तकाले यतीनां वपनं नास्ति । ऋतुश्चात्र चान्द्र एवग्राह्यः ॥ सौरा देरनियतत्वादिति संप्रदायः । ऋतु सन्धि वाक्यानि माधव विज्ञानेश्वरादि निबन्धे ष्वनुपलम्भाच्चिन्तनीयानीति बोद्धव्यं॥ एकत्र वार्षिकवासमुपक्रम्य ऋतु सन्धिषु वापयेदित्य भिहितं ॥ प्रोक्षित व्रीह्यादौ व्रीहीनवहन्तीत्यवघातनियमवद्वार्षिक-वासाङ्ग वपन एवायमृतुविधिनियमो नत्वन्यत्रापि वपनस्य वार्षिक वासाङ्गत्वञ्च प्रकरणात्।दर्शाङ्गत्ववत् ॥ चातुर्मास्ये च कार्त्तिक्यां चौरं कर्म्म न चान्तरा। देश काल विरोधेतु भाद्र्या म पि क्वचिन्मतम् इत्यादि स्मृतावपि तदङ्गत्व बोधनाच्च ॥ न चात्र प्रकरणादेवाधिकं किञ्चित् प्रमाणमस्ति ।
येनरागतः प्राप्तसर्व्वादिकृत्वपनेऽपि अयं नियमः स्यात् । किञ्चायं नियमो द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा कुर्य्यात् संकल्प मात्मवानित्यादि स्मृति विरुद्धः। नहि द्वादश्यां चौरं विना

संकल्पः कर्त्तुमुचितः ॥ वपनान्तरं स्नात्वा पूजयेत् पुरुषो-
त्तममित्यादि स्मृति विरोधात् । अत्र वा वार्षिक वासाङ्गत्व
वपनान्तरत्वस्य विधानात् ॥ तस्माद्वार्षिक वासाङ्गत्व प-
एवायं ऋतु सन्धि नियमो नत्वादिमेवापीत्येव सार इत्य-
मासि मासि गृहस्थानामित्युक्तं ॥ मिताक्षरायां विज्ञाने-
श्वरस्तु । वर्षास्वेकत्रवासे मासद्वयचतुष्टय पक्षौ शक्ताश-
विषयाविति व्यवस्थापयामास ॥इति॥ क्रियायान्त्वैदा-
न्यमेव स्वीचकारेति वर्णितमेव प्राक् । माधवीये म-
रपि काल नियम मनपेक्ष्यैव यतीनां वपनक्रिया माह
क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्रीदण्डी कुसुम्भवान् ।
प्रयतो विचरेन्नित्यं सर्व्वभूतान्यपीड़यन् ॥ इति ११
कुसुम्भवान् काषायरञ्जितवस्त्रवान् ।
स्कान्दे काशीखण्डे यतिधर्म्मप्रस्तारेऽपि ॥
चरेदात्मसहायश्च निरपेक्षो निराश्रयः ।
नित्यमध्यात्मनिरतो नीचकेशनखो वशीति ॥१२
अत्र नीचकेशनख इत्यनेन प्रतिमासं प्रतिपक्षं वा
यतीनां कार्य्य मिति सूचितं ॥
आगतं निर्व्वपेन्मासि कक्षोपस्थौ विवर्जयेत् ।
चातुर्मास्येषु निवसेद्गुरुणा ज्येष्ठसंनिधौ ॥१३
स्कान्दे कालिकाखण्डे । पक्षा वै म सा इति श्रुतेः ।
चातुर्मास्यं द्विमासाख्यं यतीनां सर्व्वकर्म्मणि ।
पक्षश्चैवैकमासं स्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ॥१४
नखोर्ध्ववपनं कुर्य्यात् मासमेकन्तु मस्करिः ॥

क्षौरं चतुर्विधं प्रोक्तं ऋत्वन्ते अयने तथा ॥१५
ऋतौ मासेतु विज्ञेयं यतेः क्षौरं विधीयते ।
दीर्घश्मश्रुजलं वक्त्रं तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥१६
तथाचापस्तम्बसूत्रे धर्म्मप्रश्ने ॥ ब्राह्मणान्नपचतांशूद्राणा
न्तीचकेशनख बतामधिकृत्योक्तं अपि वाष्टमीष्वेव पर्व्वसु
वा वपेरन्निति वपेरन्नित्यन्तर्भूतण्यर्थं वापयेरन्नित्यर्थः ।
इत्युज्वलायां तद्व्याख्यानम् । अथ वपन प्रकारः ।
॥ तत्र विश्वेश्वर पद्धतौ संप्रदायविद्वचनानि ।
गुरून्नत्वा शिरस्यन्तः क्षालनं तदनन्तरम् ।
आचम्यवाग्यतो यत्नात् सवासाः क्षौरं समाचरेत् ॥ १७
अन्तर्धायतृणैः किञ्चित्तत्र निक्षेपयेद्‌ यतिः ।
क्षुरं सन्दशनञ्चैव तथानखनिकृन्तनम् ॥१८
अभिमंत्र्यद्विषट्वारं प्रणवैः प्रोक्षयेज्जलम् ।
क्षुरमादाय तारेण श्मश्रुकेशान्निकृत्यच ॥१९
शिरोरुहान्ततो नासास्थितांश्च प्रयतो यतिः ।
कारयेत् करपादस्यनखानाञ्च निकृन्तनम् ॥ इति २०
अत्रक्षुरमादाय तारेणत्यस्य प्रणवेन क्षुरं स्वयमादाय
ततो नापित हस्ते दद्यादित्यर्थः॥ निकृत्य पदद्वयमिति नखं
निकृत्य इति व्याख्येयम् ॥ केश निकृन्तन व्यापारस्य स्वयं
कर्त्तुमशक्यत्वादिति क्षौर प्रकारः ॥ स्मृत्यन्तरे ॥
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वपनं कारयेत् सुधीः ।
केशश्मश्रुलोमनखान् उदक्संस्थानि वापयेत् ॥२१
दक्षिणकर्णमारभ्य धर्म्मार्थे पापसंचये ।

शिखाद्यन्तैव संस्कारे शिखाद्यन्तं शिरोवपेदिति ॥२२
धर्म्मार्थे तीर्थादौच दक्षिण कर्ण मारभ्योदकुस्थं वापयेत्
पापसञ्चये तन्निमित्तक वपने शिखाद्यं शिखा प्रान्त
देशमादीकृत्याऽधस्तात् सर्व्वतो वापयेत् नोदक् संस्
नवसंस्कारे चूडाकरणादौ शिखाद्यन्तं दक्षिण कर्णमारभ्य
शिखान्तं शिखामारभ्य वामकर्णान्तं वापयेत् ॥ सन्न्यासिनः
क्षौरं स्नानविधिक्रमञ्चाह । शिवपुराणे कैलाश संहितायां
एकादशाऽध्याये सूतउवाच ॥
इत्युक्त्वा षण्मुख स्तस्मै क्षौरं स्नान विधि क्रमम्।
वक्तुमारभते येन शुद्धिः स्याद् यतिनः परम् ॥२३
श्रीसुब्रह्मण्यउवाच ।गुरुंनत्वा विशेषेण लब्धानुज्ञस्ततो
शिरः संक्षाल्य चाचम्य सवासाः क्षौरमाचरेत् ॥
क्षालनं कारयेद्दासो मृदम्भोभिः क्षुरादिकम् ।
तद्धस्तौच मृदालिप्य क्षालयेति मृदं ददेत् ॥२५
स्थापितं प्रोक्षितं तोयैः शिव शिव मितीरयन् ।
स्वनेत्रे पिहिते चैवानामाङ्गुष्ठाभिर्मन्त्रितः ॥ २६
अस्त्रेणोन्मील्य संदृश्य क्षुरादि क्षौरसाधनम् ।
अभिमन्त्र्य द्वादशाथ प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रत : २७
क्षुरं गृहीत्वा तारेण दक्षभागे निकृन्तयेत् ।
केशांश्च कांश्चिदग्रेषु वप्त्वा सर्व्वञ्च वापयेत् । २८
पृथिव्यां पर्णमादाय विक्षिपेन्न भुवः स्थले ।
श्मश्रूणि हस्तपादस्थनाखनि च निकृन्तयेत् । २९
विल्वाश्वत्थतुलस्यादिस्थाने संगृह्य मृत्तिकाम् ।

द्विषट्वारं निमज्याप्सु तीरं गत्वोपविश्य च । ३०
शुद्धदेशे तु संस्थाप्य मृदं त्रेधा विभज्य च ॥
एकां पुन स्त्रिधा कृत्वा प्रोक्ष्यास्त्रेणाभिमन्त्र्य च । ३१
तत्रैकां मृदमादाय दापयित्वान्यपाणिना ।
करौ द्वादशधालिप्य प्रत्येकं च्चाल्यवारिणा । ३२
पुनरेकां पादयो श्च मुखेचान्यांकरंक्रमात् ।
लिप्य संत्त्वाल्य चाम्भोभिः पुनश्च जलमाविशेत् ।
अन्यां मृदं भागयित्वा शिरसि द्वादश क्रमात् ।
आलिप्य मृदमास्यान्तं निमज्य च पुनः पुनः ॥ ३४
तीरं गत्वा तु गण्डूषं षोड्शाचमनं द्विधा ।
प्राणानायम्य च पुनः प्रणवाद्यष्टसंख्यया । ३५
मृदमन्यां पुनस्त्रेधा विभजेच्च तदेकया ॥
कटिशौचंपादशौचं विधायाचम्य चद्विधा । ६६
प्रणवेनाथ षोढ़ा च प्राणानायम्य वाग्यतः ।
पुनरन्यां स्वोरूदेशे त्रिधा विन्यस्य चोमिति । ६७
प्रोक्ष्याभिमन्त्रयेत् सप्त स्वपाण्यो स्तलमेकया ।
त्रिधालिप्याथ संदर्श्य सूर्य्यमूर्त्तेः स्वकत्त्वयोः ॥ ३८
समालिप्य च पाणिभ्यां व्यत्यस्ताभ्यामथान्यया ।
शिर आरभ्यपादान्तं विलिप्यादित्यदृष्टया ॥३९
गृहीत्वान्यां समुत्थाय दण्डमादाय भूतले ।
गुरून् शिवञ्च संस्मृत्य साष्टाङ्गं प्रणमेत् त्रयम् ॥४०
पञ्चाङ्गेनैकवारञ्च समुत्थायच वन्दयेत् ः
तीर्थं प्रविश्य तन्मध्ये निमज्ज्योन्मज्य तां मृदम् ॥४१

स्कन्धे संस्थाप्य पूर्व्वोक्त प्रकारेण विलिप्यच ।
तत्रावशिष्टां संगृह्य जलमध्ये बिलोल्यच ॥४२
त्रिवारमोमिति स्नात्वा शिवपादाम्बुजं स्मरन् ।
अथाभिषिञ्च्य शङ्खाख्यमुद्रया द्वादशोमिति ॥४२
तीर मागत्य संशोध्य करौ पादौ मृदान्यया ।
पुनश्च संशोध्य करौ द्विराचम्योमिति स्मरन् ॥४५
अभिषिञ्च्योमितिजलं विरजाभस्म लोलितम् ।
अङ्गोपमार्ज्जनं कृत्वा सुस्नातो भस्मना ततः १४५
त्रिपुण्ड्रञ्च विधायाथ कृतमाध्यान्हिनक्रियः ॥४६
गुरुं तीर्थञ्च संवन्द्य नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥४६
सम्पूज्य परमेशानं पञ्चधा परिकल्पिते ।
भैक्षं यथोचितं कुर्य्याद्दूषितान्नं विवर्ज्जयेत् ॥
क्षौर स्नानविधिः प्रोक्तः किंभूयः श्रोतु मिच्छसि ॥४७
इति श्री शैवे महापुराणे कैलास संहितायां मेकाद
ऽध्यायः ॥ अत्रादौ क्षौरार्थ पर्व्वनिर्णयः ॥
त्रिमुहूर्त्ताधिकंपर्व्व ग्राह्यं क्षौर प्रणामयोः ।
अयन्तु मुख्यकालः स्याद्द्विमुहूर्त्तन्तु मध्यमः ॥१
ततोन्यूनं नहि ग्राह्यं यतिभिस्तु कदाचन ।
भूत विद्धं नहि ग्राह्यं पर्व्व क्षौर प्रणामयोः ॥२
वेधस्तु त्रिमुहूर्त्तः स्याद्द्वि मुहूर्त्तन्तु वा मतम् ।
तिथिक्षये दिनमपि पर्व्वग्राह्यं मनीषिभिः ॥३
मुहूर्त्त द्वितयं नोचेत् परिभूः क्षौरकर्म्मणि ।
त्रिमुहूर्त्ताधिकायान्तु पौर्णमास्यां हि वापयेत् ॥

लब्ध्वाहारं प्रकुर्व्वीत चौरात् पूर्व्वदिने यतिः।
दैवात् प्राप्ते चौरविघ्नेऽऋतु सन्धौ तु वापयेत् ॥५

अत्रमतान्तरं॥ऋतु सन्धौ पौर्णमास्यां सङ्गवस्पृशि वापयेत्।
ऋतु सन्ध्यावतीते तु चौरं नास्ति कदाचन ॥६

यतिधर्म्मसारे पौर्णमास्यां प्रवृत्तायां यतिः चौरन्तु कारयेत्।
मुहूर्त्त त्रितयं व्याप्य परस्मिन् दिवसे यदा ॥७
पूर्णिमास्यात्तदा चौरं परस्मिन्नेव कारयेत् ॥
मुहूर्त्त त्रितयादर्व्वाक् यदि पुर्व्वेद्यु रिष्यते ॥८ इति ॥

विश्वेश्वर स्मृतिः॥आधिमासो यदा विप्रतदा चौर द्वयं भवेत्
मास द्वयेन प्रथमं मासैकेन तथा परम् इति ॥९

अस्यार्थः॥ त्रिमुहूर्त्ताधिकं ग्राह्यं पर्व्व चौर प्रणामयो रिति-
ग्रन्थेऽपि सोदय त्रिमुहूर्त्ताचेत् पुर्व्वत्रच परत्रच पौर्णमास्यां
४७ तिथे ःः सङ्गवस्पृशि वापयेत्। यानि द्विमुहूर्त्तादि विधि-
कादशीं क्यानि तानि सर्व्वाणि दैविककर्म्मपराणि
चौरन्तु मानुषं कर्म्म तस्यच सङ्गवः कालः। अतः सङ्गवस्पृ-
शे वापयेदित्युक्तं त्रिमुहूर्त्ताधिक मिति। यानि तु चौरविषये
द्विमुहुर्त्तादि विधायकानि बचनानि तानि आधुनिकैः प्रक्षि-
प्तानि निर्म्मूलानि पूर्व्वोक्तवचनविरोधात् सङ्गवकालसम्ब-
न्धस्य परित्यागाच्च ॥ यच्च द्विमुहूर्त्तादि शास्त्रं अनुकल्पपरं
माधवादिभि रुक्तम्।

तदपि दैविककर्म्मविषयं न तु चौर विषयं यानि च
चतुर्दशीवेधनिषेध वचनानि तानि मूलग्रन्थेषु दृष्टत्वाद् वेध-
शास्त्रस्य सर्व्वस्यव्रत विषयत्वेन चौरे तस्य प्रसक्त्य भावाच्च

निर्मूलानि क्षौर प्रकारादि कक्षोपस्थ शिखावर्ज्जमृतुसंधि
वापयेत् । न त्रीन्नृतून तिक्रामेन्न भिक्षुः सञ्चरेत् क्वचि
आगलान्तं यतेः क्षौरमाकक्षं ब्रह्मचारिणः आगुल्फश्च गृह
नां भ्रुकोष्ठ च शिखांविना ॥ ११ यतेः सङ्क्रमकालेच
काले च यज्वनां। अरुणोदये गृहस्थानां स्त्रीशूद्राणां
दये इत्यादि पूर्व्व मेवोक्तम् ॥ क्षौरमन्त्रः ॥
महापापोपपापाभ्यां केशश्मश्रुनखादिषु ॥
क्षौरस्नानादिभिः सर्व्वे ते मे दोषाव्रजन्त्यधः ॥ १३
इति॥क्षौर स्नानविधिःपूर्व्वमुक्तः॥पित्रादि मृतेतु दक्षिण
तायैवामकर्णमारभ्य वपेदित्युत्तरश्लोक वाक्यार्थः ॥
केशनखादीनां तीरे गर्त्तं कृत्वा तत्र निक्षेपो नतु जले
तुषकेश पुरीष भस्मास्थि श्लेष्म लोम नखान्यप्सु न नि
पेदिति गद्य शंख वचनादिति केचित्तु ।
केशानां यावती संख्या भिन्नानां जान्हवी जले ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥१४
यावन्ति नखलोमानि वायुना प्रेरितानिवै ।
पतन्ति जान्हवी तोये नराणां पुण्यकर्म्मणामिति ॥
॥पुराणवचनात् तादृशतीरप्रदेशे वपेत्
यतो वायुना केशाद्या स्तीर्थे पतन्तीति ।
क्षौरानन्तरंस्नानप्रकारमाह ॥ विश्वेश्वरपद्धतौ ।
मेधातिथिः॥ वपनान्तरं स्नायान्मृद्भि र्द्वादशभि र्यतिरि
अत्रायमर्थः॥ वपनानन्तरं जलाशये गत्वा त्रि र्निमज्ज्य
रागत्य चतुरष्ट गण्डूषान् कृत्वा आचम्य तीरे स्थित्वा

देशाहृतमृत्तिकाया द्वादशविभागान् कृत्वा ।
तान् सर्व्वान् प्रणवेनाभिमन्त्र्य । ललाटे ॥१॥ बाहुद्वये ॥२
हृदये ॥३॥❋॥४॥ कुक्षिद्वये ॥ ५ ॥ उदरेच ॥ इति ॥६॥
षडङ्गेषु षट्मृत्तिका भागैर्मस्तक मारभ्योदरान्तं तुष्णीं विलि-
प्य जलेन प्रक्षाल्य ॥ ततः कट्यां ॥१॥ वस्तौ ॥२॥ ऊरुद्वये
॥३॥ जङ्घद्वये ॥४॥ चरणद्वयेचेति ॥५ पञ्चाङ्गेषु पञ्चमृ-
त्तिका भागैः कटिमारभ्य चरणद्वयान्तं विलिप्य जलेन
प्रक्षाल्याचम्य अवशिष्टषष्ठभागेन करौ प्रक्षाल्याचम्य स्नानार्थं
जलं प्रविशेदिति ॥ वामनपुराणे ॥
मृत्तिकां तु त्रिधा कृत्वा भागेनैकेन लेपयेत् ।
दक्षिणेनैव हस्तेन अष्टावेतान्यनुक्रमात् ॥१६
ललाटमंशौहृत् पृष्ठ मुदरञ्च सकुक्षिकम् ।
ततो द्वितीयभागेन नाभिवस्त्यूरूजङ्घकम् ॥१७
वामेनतु करेणैव चरणौच यथाक्रमम् ।
मृदस्तृतीयभागेन करौच द्वौ प्रमार्जयेत् ॥ इति १८
तुष्णीं मृदा स्नानं कृत्वा आचम्य जलं प्रविशेदिति ।
द्विषड्वारं निमज्याप्सु तीरं गत्वोपाविश्यच ॥१९
प्रतिस्नानं द्विषड्वारं करावारभ्य पादयोः ।
मृदं दद्यान्मुखे चैव प्रतिवारं जलं तथा ॥२०
ततो जलं प्रविश्याथ शिर आलिप्य सन्मृदा ।
द्विषट्वारं निमज्याथ प्रतिवारं मृदं तथा ॥२१
पुनरुत्प्लुत्य तत्तीरं गत्वा गण्डुषमाचरेत् ।
पञ्चैकादशवारञ्च सम्यगाचम्य यत्नतः ॥२२

क्षौरस्नानं यतीनान्तु व्यासवर्य्यैःप्रकीर्त्तितम्। यतिधर्म्मप्रकाशे
अथ जलं प्रविश्य प्रणवेनाभि मन्त्र्य प्रणवेनैव त्रिरावृत्य
प्रणवेनैव च त्रिर्निमज्य द्वादश प्रणवैः शिरो हृदये मार्जयित्वा
तथैव द्वादश प्रणवैः शिरो बाहुद्वय हृदये अञ्जलि नाभिपि
द्वादश प्रणवै रघमर्षणं विधाय पुनः त्रि र्निमज्याचम्य बहि
रागत्य शुष्कवाससाङ्गं प्रोञ्छ्य शुष्क कौपीनादिकं धारयेत्
इदञ्चातिशक्त कुटीचकादि विषयं ॥ अत्यन्ताशक्तेनापि
प्रागुक्त नित्य स्नानवदेव मस्तकमारभ्योदरान्तं सकृन्त्रे
मृल्लेपं कृत्वा प्रक्षाल्य कटि मारभ्य पादान्तं सकृन्त्रे
मृल्लेपं कृत्वा प्रक्षाल्य मृज्जलाभ्यां करौ प्रक्षाल्य ततो ज
प्रविश्य स्नानमार्जनादिकं सर्व्व मपि कार्य्यं ॥ तस्य विशि
स्नानादि नियमाभावादित्युक्तमधस्तात् ॥ अथ मध्या
सन्ध्यानन्तरं वार्षिकवासाङ्गतया विष्णुपूजनं कुर्यात्
व्यासपूजा विधिः । ततो मठमागत्य व्यूह पूजां कुर्या
अत्रिः ॥ वपनान्तरं स्नात्वा पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ।
मनसा कर्म्मणा वाचा पूजयेच्च परस्परम् ॥२३
पुरुषोत्तममिति पूज्यमात्रोपलक्षणं तदुक्तम् यतिध
समुच्चये ॥ देवं कृष्णं मुनिं व्यासं भाष्यकारं गुरो र्गुरुं
पूजयेच्च गणाध्यक्षं दुर्गां देवीं सरस्वतीं ॥२४
गणो गणेशः अध्यक्षं क्षेत्रपाल व्यूहः पुनः ।
अत्र कृष्णादि शब्दा स्तत्तद्व्यूहपराः । व्यूहश्च परि वार
परिवाराश्च पुराणेषु प्रसिद्धाः द्रष्टव्याः ॥
तत्र कृष्णाद्य वासुदेव सङ्कर्षण प्रद्युम्नानिरुद्धाः ॥ पश्

तत्र कृष्णस्य सनत्कुमार सनक सनन्दन सनत्सुजाताश्चेति चत्वारः॥ व्यासस्य सुमन्तु जैमिनि वैशंपायन पौलस्त्याश्चेति चत्वारः ॥ भाष्यकारस्य पद्मपाद विश्वरूप त्रोटक हस्तामलकाचार्य्याश्चेति चत्वारो वृद्धप्रसिद्धा बोद्धव्याः ॥ तत्रमध्ये कृष्णपञ्चकं तस्य दक्षिणतो व्यासपञ्चकं । वामतस्त्वाचार्य्यपञ्चकं ॥ इति ॥

न्यायादाचाराच्च स्वीयगुरु परमगुरु परमेष्ठिगुरु परात्पर गुरवोऽन्येच ब्रह्मविदाचार्य्येण यथा सन्निवेशं भगवतः परिवाराः पूजनीयाः॥ गणाध्यक्षाविति गणेशक्षेत्रपालावित्यर्थः। अत्र गणेश आग्नेये । ईशाने क्षेत्रपालः । वायव्ये दुर्गा । नैर्ऋते सरस्वती । यथादिशञ्च इन्द्रादिलोकपालाश्च प्राच्यादिक्रमेण भगवत् पार्श्वयो र्ब्रह्मरुद्रौ तत्र च भगवान् अष्टाक्षरेण मूलमन्त्रेण संपूज्यः । अन्ये पुनः प्रणवादिभिर्नमोऽन्तैस्तत्तन् नाममन्त्रैः पूजनीयाः ॥ इदञ्च पूजनमप्यादौ तण्डुलपुञ्जेषु गन्धादि पञ्चोपचारैः कार्य्यमित्याहुः ॥ एवं पूर्व्वोक्त प्रकारेण संपूज्य गोपीचन्दनादि मृत्तिका दन्तकाष्ठ डोरकादि दद्यात् परेतु पूजयेत् पुरुषोत्तममिति स्मरणात् । यावद्वचनं वाचनिकमिति न्यायेन शालग्रामशिलायां विष्णोः सर्व्वात्मकस्यैव पूजनमित्याहुः।एवं पूजनेच परस्परमिति वाक्यशेषाद्यतिभि रपि परस्परं पूजनं कार्य्यं । एवं संपूर्णं पूजनं कृत्वा मासचतुष्टयं मासद्वयंवा वाससंकल्पः करणीयः तदुक्तं अत्रिणा ॥

असति प्रति वन्धेतु मासान्वै वार्षिकानिह ।

निवर्त्स्यामीति संकल्पं कुर्व्वेहं मनसा धिया ॥१
प्रायेण प्रावृषि प्राणिसंकुलं वर्त्म दृश्यते ।
आषाढ्यादि चतुर्मासं कार्त्तिक्यंतन्तु संवसेत् ॥२
माधवश्चतुरो मासान् सर्व्वभूतहिताय वै ।
स्वापं यास्यति शेषाङ्के लक्ष्म्यासह जगत्पतिः ॥३
सुप्तश्चैवोत्थितो यावन्न भवेच्च सनातनः ।
अहं तावन्निवर्त्स्यामि सर्व्वभूतहितायवै ॥४
अत्रैतन्मन्त्राणां दर्शादौ व्रीहियववद्विकल्पः सर्व्वेषामेकार्थ
त्वात् । मासद्वयपक्षेतु मन्त्रमाह ॥ अहं तावन्निवर्त्स्यामि
मासौद्वौ वार्षिकाविह । निवर्त्स्यामीति संकल्पं कुर्व्वेऽ
मनसा धियेति ॥५॥ अत्र तावत् पर्य्याप्त मृत् संग्र
ऽपि कार्य्यः ॥ इति ॥ तदाह मेधातिथिः ॥ प्रशस्तां मृति
शुक्लां गृन्हीयाच्छुचि शुक्रयोः ॥ पुरणीं चतुरो मासान्
षाढ्याः कार्त्तिकोदयात् ॥६ वृद्धयाज्ञवल्क्यः ॥
प्रागृवृष्टे मृदमादाय शुभ्रां किञ्चिद पीडयन् ॥ ७
प्रागृवृष्टे रिति ज्यैष्ठाषाढयो रित्यर्थः ॥ अत्र प्रथमत
मृत्तिका संग्रहो दन्तकाष्ठपत्रादीनामपि संग्रहप्रदर्शना
हिंसादिपरिहारार्थत्वस्य सर्व्वत्र समानत्वात् अत्र मृत्तिकाप
यावद पेक्षित दन्तकाष्ठादेरप्युपलक्षणं ॥ तत्र गृहस्थैरा
यतीनांपूजनं कृत्वा प्रार्थनीयं ॥ अधिवास्य मृदंत्वेवं गृह्णीयात्
शुभेदिने स्मरन्यज्ञेश्वरं विष्णुं वाराहं क्रोड रूपिणम् ॥८
येनोद्धृता मृदेवित्वं क्रोडरुपेण दंष्ट्रया ।
त्वयासह समायातु केशवो धरणीधरः ॥९

भिक्षाभेषजवस्तूनां वस्त्रादीनां निरन्तरम् ।
परामर्शंकरिष्यामः सुखं वसत भिक्षवः ॥ इति १०
यदि चाषाढयां स्थानं वसतियोग्यं न लभ्यते
तदा पञ्चमी पर्य्यन्तं गच्छेदेव ॥ तथाच वृद्धशातातपः ॥
स्थानाभावाद्व्रजेत्तावद्भवति पञ्चम्यवधि ॥११
प्रायश्चित्तेन युज्येत पञ्चम्यूर्द्धं व्रजेद्यदीति ॥
संकल्पानन्तरं देशान्तरे न गच्छेत् ॥ यदिच विपत्तिस्तदा
गच्छेदेव ॥ तदाह वृद्धयाज्ञवल्क्यः ॥
चौरैरुपद्रुतं देशं दुर्भिक्षं व्याधिपीडितम् ॥१२
चक्रेणान्यस्य चाक्रान्तं वर्षास्वप्याश्रयन् त्यजेत् ।
मुहूर्तमपि नासीत देशे सोपप्लवे यतिः ।
उपद्रुते तु मनसि समाधि र्नोपजायते ॥ इति १३
इति वर्षा प्रकरणं समाप्तं ॥ अत्र व्यास पूजा प्रकरणे
यदुक्तं तत्र इतिहासमाह । दालभ्य उवाच ॥
विष्णुधर्म्मास्त्वयाख्याताः श्रुताश्च त्वत्प्रसादतः ।
कतिथौ कचमासेषु व्यासरूपी जनार्द्दनः ॥१
पूज्यते येन विधिना किंफलं तद्वद प्रभो ॥
आषाढस्य सिते पक्षे पुर्व्वान्हे व्यापिनी यदा ॥२
पूर्णमासी यदा तत्र व्यासरूपी जनार्द्दनः ॥
पूज्यश्च यतिभिः सर्व्वैं र्हंसैः परमहंसकैः ॥३
तेऽपि सर्व्वे प्रपूज्यावे गृहमेधिभिरादरात् ॥
सर्व्वतो भद्रमालिख्य तत्रैव कलशं न्यसेत् ॥४
सौवर्णं राजतं वापि वंशपात्रं ततो परि ॥

द्वादशारं प्रकल्प्याथ सौत्रे वा पट्टसौत्रके ॥५
काल ज्ञानं विधायाथ पूज्यास्तत्र तु देवताः ॥
तंत्रमन्त्र विधानेन व्यासरूपी जनार्द्दनः ॥६
उपचारैः षोडशभिः पूजनीयः प्रयत्नतः ॥
पौराणै र्नामभि र्वापि वेदमन्त्रै र्विशेषतः ॥७
गृहस्थै र्नर नारीभिस्तथा विद्यार्थिभि र्जनैः ।
तण्डुलैः श्वेत पुष्पैश्च नानावस्त्रैःफलैरपि ॥८
कौपीनैर्दन्त काष्ठैश्च चणकैश्च विशेषतः
सौवर्णै राजतै र्वापि नारिकेल फलादिभिः ।९
नाना वाद्य विशेषैश्च तत्र पूजाफलंशृणु ।
वासुदेव प्रसादेन सर्व्व विद्या विशारदः ॥१०
सर्व्व शास्त्र प्रवीणश्च सर्व्व शाखाधुरन्धरः ।
गजवाजिरथाद्यैश्च युक्तः सर्व्व गुणै रपि ॥११
युक्तः पुत्रकलत्रादि धनधान्यादिभिस्तथा ।
चतुरङ्गवलोपेतः सप्ताङ्ग राज्यधृक् सदा ॥१२
मेधाप्रज्ञाधृतिः कान्तिः सौभाग्य मतुलं भवेत् ।
सत्यं दया क्षमा शान्ति र्दाक्षिण्य मतुलं भवेत् ॥१३
सभापाण्डित्य मौदार्य्यं गाम्भीर्य्यमतुलं भवेत् ।
भुक्त्वा भोगान्यथाकाममन्ते विष्णुपदं व्रजेत् ॥१४
इति विष्णु धर्म्मोत्तरे दालभ्य सम्बादे व्यासपूजा
इतिहासः समाप्तः । विश्वेश्वर पद्धतौ ॥ अत्रि संहितायां
नासमानसहायेषु निवसेद् योगवित् क्वचित् ।
वसेत् समान शीलेषु सुशीलेषु तपस्विषु ॥१५ दक्षसंहितायां

निरामयं निराबाधं प्रसन्नसलिलान्वितं ।
मेधान्नबहुलञ्चैव धनिनां कुलसंकुलं ॥१६
भक्तायत्र जनाः सर्व्वेस्ववृत्तिपरिपालकाः ।
श्रद्दधाना मुदायुक्ताः शान्ताः कल्याणवादिनः ॥२०
प्रयच्छन्ति यथान्यायं भिक्षां सर्व्वरसान्वितां ।
भिक्षेञ्च पुष्कलं साधुयच्चान्यद्धर्म्मसाधनं ॥२१
अयाचितानि यच्छन्ति तं देशं यत्नतो व्रजेत् ॥
वृद्धशातातपः॥ निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रयत्र वसेद् यतिः २२
तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं निमिषं पुष्करं तथा ॥
अत्रिः॥चतुरोऽयं वसेन्मासान् द्वौ वा कौशिक वार्षिकौ ॥२३
वृद्धानऽनुक्रमेणैव नमस्कृत्य विधानतः ।
अनेन विधिना भिक्षु राषाढ्यां सुसमाहितः ॥२४
यानाभावाद्व्रजेत्तावद् यावद्भवति पञ्चमी ।
यश्चित्तेन युज्येत पञ्चम्यूर्द्धं व्रजेद् यदि ॥२५
च्छ्रमेकं चरेद्भिक्षुर्यदि ह्यार्त्तो न गच्छति ।
षु मासेषु केशादीन् ऋतु सन्धौ न वापयेत् ॥२६
दीश्च न तरेत्तेषु क्रोशादूर्द्धं न च व्रजेत् ॥
पयेद् यदि केशादीनुत्तरेद्यदि वानदीम् ॥२७
जापत्यं चरेच्छुद्ध्यै प्राणायामशतत्रयम् ।
स्तीर्णे ग्रामसीमान्ते क्रोशादूर्द्धं व्रजेद्यदि ॥२८
णायामां स्त्रिंशंकृत्वा जपेत् त्रिंश शतत्रयम् ।
पति योगाद् बहून् ग्रामान् यदिवर्षासु लङ्घयेत् ॥२६
पैकैकञ्चरेत् कृच्छ्रमेतत् पापात् प्रमुच्यते ।

वर्षाभेदं यतिः कुर्य्याद्यदि कश्चिद नापदि ॥३०
प्राजापत्येन कृच्छ्रेण मुच्यते नात्र संशयः ॥ इति।
॥नमस्कार विधिः ॥ आतुरं न नमेत् ॥ अत्रसंप्रदायवि
सर्व्वदावन्दनं कुर्य्यात् गुरोर्ज्येष्ठ यतेस्तथा ॥३१
आपञ्चमीनमस्कुर्य्यादतिक्रान्तेऽपि पर्व्वणि ।
त्रिमुहूर्त्ताधिकं ग्राह्यं पर्व्वक्षौरप्रणामयोः इति ॥३२
॥यति धर्म्म समुच्चये॥प्रणतान्नयति ब्रूयादाशिषं व्यासशा
नात् ॥ नारायणेतिच ब्रूयात् प्रणतायु र्विवृद्धये ॥३३
धर्म्म संकर संकीर्णे स्थाने नोपविशेद्यतिः ।
मुहूर्त्तं नोपतिष्ठेत यत्र धर्म्मपराङ्मुखः ॥३४
तस्करोपद्रुते ग्रामे ब्रह्महत्यादि दूषिते ।
दुर्भिक्षेराष्ट्रभङ्गेवा वर्षास्वपि न सम्बसेत् ॥३५
अत्रिः॥पितामाता स्वसा भ्राता स्नुषाजायासुतस्तथा
ज्ञातिवन्धुसुहृद्वर्गो दुहिता तत् सुतादयः ॥३६
यस्मिन्देशे वसन्त्येते न तत्र दिवसं वसेत् ।
द्वेषः शोकोभवेत्तत्र रागहर्षादयो मलाः ॥३७
अश्रुपातं यदा कुर्य्याद्भिक्षुर्शोकेन चोदितः ।
योजनानांशतं गत्वा तदा पापात् प्रमुच्यते ॥३८
दक्षः ॥ कथा चारे खले सार्थे पुरेशोयित्व सद् ग्रहे।
निवसेन्न यतिः षट्सु स्थाने ष्वेतेषु कर्हिचित् ॥३९
॥ वृद्ध याज्ञवल्क्यः॥ चौरैरुपद्रुतं देशं दुर्भिक्षं व्याधि पी
चक्रेणा न्येन चाक्रान्तं वर्षास्वप्याशु तं त्यजेत् ४०॥
मुहूर्त्तमपि नासीत देशे सोपद्रवे यतिः ।

उपद्रुतेतु मनसि समाधिर्नोपजायते ॥ ४१
अधार्म्मिक राजवासे पाषण्डजनसंकुले ।
मुहूर्त्त मपि नासीत यत्रधर्म्मो विलुप्यते ॥४२
चतुः क्रोशान्तरा यत्र नदीभवति कुत्रचित् ।
पक्षान्ते तत्र गन्तव्यं आपस्तम्बवचो यथा ॥ ४३
श्राद्धे निमन्त्रितो गच्छे न्नदीलंघञ्चवर्ज्जयेत् ।
सायमागत्य निवसेत् स्वाश्रमे कल्पिते गृहे ॥ ४४
यत्तीर्थमनुसंप्राप्य चित्तमस्य प्रसीदति ।
तत्र तिष्ठेन्नरो विद्वान् मोक्षमार्गे व्यवस्थितः ॥ ४५
चातुर्मास्येच कार्त्तिक्यां क्षौरं कुर्य्यान्न चान्तरे ।
देशकाल विरोधेतु मासाभ्याम्वा क्वचिन्मतं ॥ इति ॥४६
अत्रिः ॥ कार्त्तिक्यां वापयित्वा तु स्नापयित्वा त्रिविक्रमं ।
परस्परन्तु संपूज्य क्षामयित्वा परस्परम् ॥ ४७
मासद्वयं चतुष्कं बा एकत्र निवसेद् यतिः ।
नैकत्र निबसेद्ग्रामे वर्षाभ्यो न्यत्र सद्यतिः ॥४८
चतुरोऽयं वसेन्मासान्न द्वौ वा कौशिक वार्षिकौ ।
श्रवणार्थं सदा तिष्ठेदुपकुर्व्वाणवद्गुरौ ॥ ४९
रहसे तस्य तत् स्थानं प्रवासे अग्निहोत्रिणी ।
कृत्वोपरथ शिखावर्ज्जं ऋतुसन्धिषु वापयेत् ॥ ५०
उर्द्ध वार्षिक मासाभ्यां नैकत्रस्थान वासीस्यात् ।
॥इतिशङ्ख स्मृतिः॥ इत्युदाहृत वचनेभ्यो मासद्वयं चतुष्टयं
वा एकत्र ग्रामादौ निवसेत् मास द्वयं यदा तदा भा क्षौरं
कारयेत् भा मपि क्वचित् मनमिति वचनात् । यदा मास

चतुष्टयं तदा नन्तरा वपनं कुर्य्यात् चौरं कारयेदिति॥
चातुर्म्मास्ये च कार्त्तिक्यां चौरकार्य्यं न चान्तरे।
मासत्रयेणतु यदा ऋतु र्भवति वैद्विज ॥ ५१
तदा चौरद्वयं कार्य्यं इति शास्त्रस्य निर्णयः।
अधिमासो यदा विद्वान् तदा चौर द्वयं भवेत् ॥ ५२
मासद्वयेन प्रथमं मासैकेन तथा परम्।
वाराणस्यान्तु गौतम्यां सर्व्वदैकत्र संवसेत् ॥ ५३
पञ्च चौराणि भिक्षूणां भवन्ति ऋतु सन्धिषु।
हरे र्वोधे प्रकर्त्तव्यं न्यासं चौरं तथाटनम् ॥ ५४
अवोधे न पुनः कार्य्यं संकटे तु यथासुखम्।
मासद्वयं यतीनाञ्च विधवा चार्द्ध मासके ॥ ५५
नित्यं नैमित्यकं कार्य्यं वपनं शुद्धिदं भवेत्।
कालप्राप्तं न कुर्व्वीत प्राजापत्यं दिने दिने ॥ ५६
पञ्च चौराणि भिक्षूणां भवन्ति ऋतुसन्धिषु।
प्राविडन्ते तु तत् कार्य्यं शंकराचार्य्य सम्मतम् ॥५७
यदा मासचतुष्टयं तदान्तरं वापनम्।
चातुर्मास्ये च कार्त्तिक्यां चौरं कार्य्यं न वान्तरे ॥
इति वचनात् ॥ वाराणस्यां गङ्गाकुले वा सर्व्वदा निवसेत्। तथा च मत्स्यस्कन्दपुराणयोः ॥
अष्टौमासान् विहारःस्याद् यतीनां संजितात्मनाम्।
एकत्र चतुरोमासान् वार्षिकान्निवसेत् पुनः ॥
अविमुक्तप्रविष्टानां विहारस्तु न विद्यते।
न देहो भवति तत्र दृष्टं शास्त्रं पुरातनैः ॥ ६१

मोक्षोऽप्यसंशयं तत्र पञ्चत्वन्तु गतस्यवै ।
हन्यमानोऽपि यो विद्वान् सेवेद्विघ्नशतैरपि ॥ ६२
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ।
गङ्गाकुले वसेन्नित्यं भिक्षु र्मोक्षपरायणः ६३
सिद्धक्षेत्रन्तु तज्ज्ञेयं यावद्धनुः शतत्रयम् । भविष्ये ॥
ब्रह्मादिदेवलोकानां मुक्तेश्च प्राप्तये नृणाम् ॥ ६४
गङ्गैव परमोहेतुः कलिकाले विशेषतः ॥
ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं नोपभोगाय जायते ॥ ६५
इह क्लेशाय सहते प्रेत्यानन्तसुखाय च ।
याज्ञवल्क्यः ॥ इत्येतदस्थिरं वर्त्मयस्य मोक्षाय कृत्यसौ ॥
तत्त्वस्मृते रुपस्थानात् सत्वयोगात् परिक्षयात् ।
कर्म्मणां सन्निकर्षाच्च सतां योगः प्रवर्त्तते ॥ इति । ६७
वृहस्पतिः ॥ वन्धमोक्षविभागज्ञो वन्धाच्चेन्मोक्षणेच्छया ।
उपायान्वेषणे युक्तः को न मुच्येत बन्धनात् । ६८
अथाभ्यागताचारः पर्य्यङ्क शौचञ्च ।
अभ्यागते यतिःस्था यीयतिलिङ्गेन शिष्टताम् ।
विज्ञायचोत्थितो भूत्वा वामे वस्त्रादि संयुतः ॥
चातुर्म्मास्यं कियदिति पृष्ट्वा तेनोत्तरे कृते ।
अभ्यागतो यदि ज्येष्ठ स्तस्मै भक्त्याभिवन्द्य च ॥२
तस्यदण्डमधो धृत्वा तेनेत्युक्तं यथाविधि ।
योग्यदेशेषु संस्थाप्य तस्मा आसन मादरात् ॥
दत्वोपविष्टे तस्मिन् च गरुडासनसंस्थितः ।
तदनुज्ञां गृहीत्वाथ पञ्चाङ्गानतिपूर्व्वकम्

अभ्यागत प्रयुक्तं तत् पादग्रहण मादरात् ॥
तथोपदेशं कृत्वा स तत् पादौ मूर्ध्नि धारयन् ॥
आघ्रायदक्षिणां सेतुं धारयित्वा ततः सुधीः ।
गरुडासन आसीनो जोटिकार्च्चनपूर्व्वकम् ॥६
अनुज्ञाप्यास्य पञ्चाङ्गं नमस्कारपुरः सरम् ।
गृहीत्वा पूर्व्वकं पादावस्याष्टाङ्गनमस्क्रियाः ॥
तदनुज्ञानुसारेण त्रिषट् द्वादश संख्यया ॥
जोटि मादाय विधिवत् कर्णयो र्द्धारयेत् पुनः ॥ ८
विधायैक नमस्कारं तां गृहीत्वा यथाविधि ।
पञ्चाङ्गेन प्रणम्याथ गरुडासनमास्थितः ॥९
क्षमांप्राप्य तथा देशं शौचपर्य्यंक माचरेत् ।
अभ्यागतः कनिष्ठश्चेत्तेन स्थाप्याभिवन्दितः ॥१०
गृहीत्वा तस्य दण्डाग्रं पूर्व्ववत् स्थापयेत्ततः ।
स्थायी स्वासन आसीनः शिष्यद्वारासनं शुचि ॥ ११
तस्मै दद्यात्ततस्तन्तु मूर्ध्न्यादाय विधाय च ।
अभ्यागतेन भूमौ तु स्थिते गरुड आसने । १२
प्रार्थितश्चेत् प्रणामार्थं स्थाप्यानुज्ञां विधायसः ।
अभ्यागतेनार्द्ध मुक्त कटिवस्त्राग्रकं पुनः ॥ १३
द्विगुणी कृत वस्त्रन्तु सर्व्वोपरि निधाय च ॥
यथोपदेशं पञ्चाङ्गनमस्कारे कृते सति ॥ १४
उत्थाय तस्य स्कन्धादि ग्रहणं विधिनाचरन् ।
स्वासने संविशेद्भूयः स उत्थाय द्वितीयकम् ॥ १५
वस्त्रं निक्षिप्य वस्त्रेण सम्यक् मुक्तेन संयुतः ।

अभिवन्द्योपविश्याशु गरुडासन पूर्व्वकी ॥१६
प्रणामादि यथा पूर्व्वं कृत्वा गरुड आसने ।
उपविश्याञ्जलिं कृत्वा भक्ति युक्तो भवेत्तदा ॥ १७
स्थायीतु स्वसमीपे तं स्थापयित्वा सुखासने ॥
अभ्यागतप्रयुक्तं तत्पादग्रहणमादरात् ॥१८
कारयेत् स्वसमीपस्थै स्तत्कनिष्ठै र्यथाविधि ।
जोटि नमस्कृतिं तद्वत् पर्य्यङ्क शौचमप्यथ ॥१६
तद्दिने तस्य भिक्षादि यथाशक्ति विचारयेत् ।
पुन र्यतिधर्म्म प्रकाशे । अभ्यागताचारः ॥
आगतं स्वाश्रमे भिक्षुं प्रत्युत्थायाभिवन्द्यच ॥२०
विश्राम्य गुरुवद्भक्त्या पूजयेत्तद्दिने यतिः ।
तद्दिने तस्य भिक्षादि यथाशक्ति विचारयेदिति ॥२१
विचारणञ्च येन केनापि प्रकारेण कर्तव्यं ।
अभ्यागताचारेण पर्यङ्कशौचं कर्तव्यं। संप्रदायविद्भिरेवोक्तम्
वामेऽभ्यागतपादाभ्यां स्वहस्तार्थन्तु दक्षिणे ।
मृद्विभागं विभज्याथ गरुडासन मास्थितः ॥२२
पादयोस्तु मृदः पञ्च चतस्र स्तिस्र एवच ॥
द्विधैकांच मृदं दद्याज्जानु जङ्घादिभिः क्रमात् ॥२३
करयोर्दश सप्तादौ द्वितीये सप्तपञ्च च ।
तृतीये पञ्च तिस्रश्च तिस्रोद्वेच चतुर्थके ॥२४
द्वेचैकाञ्च मृदं दद्याच्छौचे पर्य्यंकसंज्ञके ॥ इति
यद्यपि पर्य्यङ्क शौच गरुडासन जुटी नमस्कारादिकं श्रुति
स्मृत्यादिषुनोपलभ्यते ॥ तथापिमन्दाधिकारिणां शक्तिमतां

केवलं देहदमनाय वृद्धैः कल्पित मित्यवधेयम् ।

ब्रह्मानन्दीय पद्धतौ यदुक्तं तत्रपर्य्यङ्कशौच प्रकारमाह
वामभागेतु इत्यादि वचनं पूर्व्वोक्तं । पादं प्रक्षाल्य लक्ष्यंकर्तु
करशुद्ध्यर्थ मिदं वाक्यं ॥ अथात्र प्रयोगः । पुण्ये दि
गुरुणा प्रेरितः कश्चिद्गृहस्थः शुद्ध प्रदेशान्मृदमादाय द्वि
विभज्य एकं भागं पञ्चधा विभज्य वामभागे प्राक् संस्
निधाय अपरभागं तथैव विभज्य स्वदक्षिण भागे पूर्व्ववत्
संस्थाप्य अभ्यागतं यतिमुपवेश्य तत् पुरतो गरूडासनं
प्राङ्मुखो देशकालौ स्मृत्वा गुर्व्वाज्ञया अभ्यागताय यते
पर्य्यङ्क शौचं करिष्यामीति संकल्प्य ॥ पूर्व्व निहित वा
भागस्थ पञ्चमृत्पिण्डमध्येप्रथमभागेनपञ्चवारं मृज्जलाभ्
अभ्यागत जानुनी युगपत् स्वदक्षिण वामकराभ्यां क्षा
येत् । पञ्चमे मृत्समाप्तिः ॥ तत एव मुत्तरत्र ॥ त
कर्त्तास्वहस्त प्रक्षालनार्थं दक्षिणभागस्थमृत्पिण्ड पञ्चक
प्रथमभागस्यार्द्धेन स्ववामकरे दशवार मत्रस्थ तत्रस्थ जले
प्रत्येकं प्रक्षाल्य अवशिष्टार्द्धेन उभयकरौ सप्तवारंजलेन
प्रक्षालयेत् ॥ एवमन्यत्रापि योज्यं संख्यायां विशेषः॥ त
वामभागस्थ द्वितीयमृत्पिण्डेन अभ्यागतस्य युगपच्च
र्व्वारं द्वे जंघे क्षालयेत् ॥ दक्षिण भागस्थमृत्पिण्डतृती
मृत्पिण्डेन अभ्यागतस्य गुल्फौ त्रिवारंप्रक्षाल्य स्वदक्षि
भागस्थ तृतीयार्द्धेन स्ववामकरं षड्वारं प्रक्षाल्य अवशिष्ट
र्द्धेन उभौ करौ चतुर्व्वारं क्षालयेत् दक्षिण भागस्थ तृती
मृत् पिण्डेन स्ववामकरं सप्तवारं प्रक्षाल्य अवशिष्टार्द्धे

उभौकरौ पञ्चवारं क्षालयेत् ॥ ततो वाम भागस्थ तृतीय मृत् पिण्डेन अभ्यागतस्य गुल्फौ त्रिवारं प्रक्षाल्य अवशिष्टार्द्धेन उभौकरौ चतुर्व्वारं प्रक्षालयेत् ॥ ततो वाम भागस्थ चतुर्थमृत् पिण्डेन अभ्यागतस्य वामपाद पृष्ठौ द्विवारं प्रक्षाल्य दक्षिण भागस्थ मृत्पिण्डेन चतुर्थार्द्धेन स्ववामकरं प्रक्षाल्य अवशिष्टार्द्धेन उभौ द्विवारं प्रक्षालयेत् ॥ ततो वाम भागस्थ अवशिष्ट मृत् पञ्चमेन अभ्यागतपादतले एकवारं प्रक्षाल्य दक्षिण भागस्थ पञ्चमस्यार्द्धेन स्व वामकरं प्रक्षाल्य अवशिष्टार्द्धेन एकवारं उभौकरौ क्षालयेत् ॥ इति॥ पर्य्यङ्क शौचं ॥

॥ अथयोगपट्टविधिः॥ तत्र विश्वेश्वर पद्धतौ॥ संप्रदायविद् वचनानि ॥ अधीत विद्याय सद्यश्चेद्दद्याद् योगपट्टं गुरुः ।
पादौ मृदात्रिः प्रक्षाल्य पादुकाभ्यां व्रजेद्गृहं ॥१
द्विगुणं कटिसूत्रञ्च वध्वा वासोऽवगुण्ठयच ।
उच्चासने कल्पितेतु विशेत्तत्राज्ञयागुरोः ॥२
सभ्यादिष्टमुपन्यस्य वेदान्तं किञ्चिदेवतु ॥
गुरुणा विधिवत् कार्य्यं पूर्व्वं शङ्खाभिषेचनम् ॥३
वासोमाल्यादिकं दद्यात् गुरुणा यतिभिः सह ॥
नमस्कृत्य प्रपूज्याथ स्तोत्राणि च पठेत्तथा ॥४
वस्त्रंचोपरि सन्धार्य्यं वन्धुभिं र्यतिभिः सह ।
गीताध्यायं विश्वरुप संज्ञ्व वाज्यान्त मेवच ॥५
ततो नाम प्रकर्त्तव्यं गुरुणा सर्व्वं सम्मतम् ।
तीर्थाश्रम वनारण्य गिरि पर्व्वत सागराः ॥६

सरस्वती भारतीच पुरीनाम यतेर्दश ॥
श्रीपाद संज्ञयावाच्यं नाम तस्य यथा तथा ॥७
अद्यारभ्य त्वया कार्य्यं दीक्षा व्याख्यादिकं सदा ।
योगपट्टोऽपि दातव्यः शिष्ये सम्यक् परीक्षिते ॥८
इत्याज्ञां गुरुणादत्तां गृहीत्वा शिरसा स्वयम् ।
उत्थाय च ततः सम्यक् कुर्य्यात् पादग्रहान्वितम् ॥९
सदोरकं नमस्कुर्य्याद् गुरुं ज्येष्ठयतीं स्तथेति ॥
आगतं स्वाश्रमे भिक्षुं प्रत्युत्थायाभिवाद्यच ॥१०
विश्राम्यगुरुवद्भक्त्या पूजयेत्तद्दिने यतिः ॥

स दोरक मिति गुरुप्रदत्त द्विगुणकटिसूत्रसहितमिति ना स्क्रिया बिशेषणं मित्यर्थः। एतेन तत् सूत्र धारणं सर्व्वदे ति प्रतीयते ॥ इति योग पट्ट विधिः ॥ शिव महा पुरा कैलास संहितायां ॥ एकादशाऽध्याये यतीनां योगपट्ट वि

भगवान् वामदेव उवाच ॥
भगवन् सर्व्व तत्त्वज्ञ षण्मुखामृतवारिधे ।
गुरुत्वं कथमे तेषां यतीनां भावितात्मनाम् ॥१
जीवानां भोग मोक्षादि सिद्धिः सिध्यति यद्वशात् ।
पारम्पर्य्यं विना नैषामुपदेशाधिकारिता ॥२
एतच्च क्षौरकर्म्माङ्गं स्नान ञ्च कथ मीदृशम् ।
श्री सुब्रह्मण्य उवा च ॥ योगपट्टं प्रवक्ष्यामि गुरुत्वंयेन जाय
वैशाखे श्रावणे वास्या न्मास्याश्वयुजि कार्त्तिके ॥
मार्गशीर्षे च माघे वा शुक्लपक्षे शुभेदिने ॥ ४
पञ्चम्यां पौर्णमास्यां वा कृत प्राभातिक क्रियः ।

लब्धानुज्ञस्तु गुरुणा स्नात्वा नियतमानसः ॥ ५
पर्य्यङ्कशौचं कृत्वा तद्वासस्साङ्गं प्रमृज्य च ।
द्विगुणं डोरमावध्य परिधाय च वाससी ॥ ६
क्षालिताङ्घ्रि र्द्विराचम्य भस्मसद्यादिमन्त्रतः ।
समादायाथ सन्धार्य्य समुद्धूलनमार्गतः ॥ ७
गृहीतहस्तो गुरुणा हस्ताभ्यां प्राङ्मुखोयथा ।
तथोपवेशित स्तिष्ठेन्मण्डपे समलङ्कृते ।८
गुर्व्वासनवरे शुद्धे चैलाजिनकुशोत्तरे ॥
अथ देशिक आदाय शंखं साधार मस्त्रतः ॥९
शोध्य तत् पुरतः स्थाप्य सम्पूज्य कुसुमादिभिः ।
साधारं शंखमप्यस्त्रवर्म्मभ्यां शोधितं जलम् १०
आपूर्य्य पूर्व्ववत् पूज्य षडङ्गोक्तक्रमेणाच ।
सप्तधैवाभिमन्त्र्याथ प्रणवेन पुनश्च तत् ११
अभ्यर्च्च्य गन्धपुष्पाद्यै धूपदीपौ प्रदर्श्य च ।
संरक्ष्यास्त्रेणावगुण्ठ्य वर्म्मणाथ प्रदर्शयेत् ॥ १२
धेनुशंखाख्यमुद्रे च देशिकः स्वपुरः पुनः ।
शंखदक्षिणादेशे तु पूजार्घ्योक्तविधानतः १३
मण्डलं कृतमभ्यर्च्च सुगन्धकुसुमादिभिः ।
साधारं शोधितं शुद्धं घटं तन्तुपरिष्कृतम् ॥ १४
धूपितं स्थापितं शुद्धवासितोदप्रपूरितम् ।
पञ्चत्वक् पञ्चपत्रैश्च मृत्तिकाभिश्च पञ्चभिः ॥ १५
मिलितञ्च सुगन्धेन लोलितं समलंकृतम् ॥
वस्त्राम्रदलकूर्च्चाम्रनारिकेदफलैस्ततः ॥१६

पञ्चरत्नानि विन्यस्य नीलं माणिक्यहेमनी ।
प्रवालगोमेदके च रत्नाभावे हिरण्मयम् ॥१७
नृम्लुस्कमिति संप्रोच्य ग्लूमित्यन्ते समर्च्चयेत् ।
आधारशक्ति मारभ्य यजनोक्तविधानतः ॥ १८
देवमावाह्य संपूज्य पञ्चावरणमार्गतः ॥
निवेद्य पायसान्नञ्च ताम्बूलादि यथा पुरा ॥१६
नामाष्टकार्च्चनान्तञ्चकृत्वा तमभिमन्त्रयच ।
प्रणवाष्टोत्तरशतं ब्रह्मभिः पञ्चमक्रमात् ॥२०
सद्यादीशान्त मप्यन्तरहितं वर्म्मणा पुनः ।
अवगुण्ठ्य प्रदर्श्याथ धूपदीपौ प्रदर्श्यच ॥२१
धेनुयोन्याख्यमुद्रेच दर्भैराच्छाद्य मस्तकम् ।
मण्डपस्यैशदिग्भागे चतुरस्रं प्रकल्पयेत् ॥२२
तदुपर्य्यासनं कल्प्य तत्रसंस्थाप्य तं शिशुम् ।
ततः कुम्भं समुत्थाप्य स्वस्तिवाचनपूर्व्वकम् ॥२३
आभिषिञ्चेद् गुरुः शिष्यं प्रादक्षिण्येन मस्तके ।
प्रणवं पूर्व्व मुच्चार्य्य सप्तधा ब्रह्मभिस्ततः ॥२४
पञ्चभिश्चाभिषेकञ्च शङ्खोदेनाभिवेष्टयेत् ।
चरुंदीपं प्रदर्श्याथ वाससा परिमृज्यच ॥२५
क्षालिताङ्घ्रिः र्द्विराचम्य धृतभस्म गुरुः शिशुम् ।
नूतनं डोरकौपीनं वाससी परिधायच ॥२६
हस्ताभ्यामवलम्ब्याथ हस्तौ मण्डपमध्यतः ।
आसने संप्रवेश्याथ कल्पिते सुखमास्थितम् ॥२७
पूर्व्वाभिमुखमात्मीयतत्त्वज्ञानाभिलाषिणम् ।

स्वासनस्थो गुरु र्ब्रूयाद्दमलात्मा भवेतितं ॥२८
गुरुश्च परिपूर्णोस्मि शिव इत्यचलस्थितिः ।
समाधिमास्थाय ततो मुहूर्त्तं गूढमानसः ॥२९
पश्चादुन्मील्यनयने पश्यन् शिष्यमनाकुलः ।
स्वहस्तं भस्मितालिप्तं विन्यस्य शिशुमस्तके ॥३०
दत्तश्रुतावुपदिशेद्धंसः सोऽहमिति स्फुटम् ।
तत्राद्योऽहं पदस्यार्थः शक्त्यात्मा स शिवः स्वयम् ॥३१
स एवाहं शिवोऽस्मीति स्वात्मानं संविभावय ।
य इत्यणोरर्थतत्त्वमुपदिश्य ततो वदेत् ॥३२
अवान्तराणां वाक्यानामर्थतात्पर्य्यमादरात् ॥
वाक्यानि वच्मिते ब्रह्मन् सावधानमतिः शृणु ॥३३
प्रज्ञानं ब्रह्म अहं ब्रह्मास्मि । तत्वमसि अयमात्मा ब्रह्म ॥
ईशावास्य मिदं सर्व्वं प्राणोऽस्मि प्रज्ञानात्मा ।
यदेवेह तदमुत्र यदमुत्रतदन्विह ॥३४
अन्यदेवतद्विदितादथो अविदितादधि । एष त आत्मान्त-
र्य्याम्यमृतः । स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः ॥३५
अहमस्मि परं ब्रह्म परापर परात् परम् ।
वेद शास्त्र गुर्व्वात्मातु त्रय मानन्द लक्षणम् ॥३६
सर्व्वभूत स्थितं ब्रह्म तदेवाहं न संशयः ।
तत्त्वस्य प्राणोऽहमस्मि पृथिव्याः प्राणोऽहमस्मि ॥३७
अपाञ्च प्राणोऽहमस्मि आकाशस्य प्राणोऽहमस्मि ।
वायोश्च प्राणोऽहमस्मि तेजसश्च प्राणोऽहमस्मि ॥३८
त्रिगुणस्य प्राणोऽहमस्मि सर्व्वोऽहं सर्व्वात्मकोऽहं ।

संसारी यद्भूतं यच्च भाव्यं यद्वर्त्तमानं सर्व्वात्मकत्वाद
द्वितीयोऽहं ॥३६॥ सर्व्वं खल्विदं ब्रह्म । सर्व्वोऽहं विमुक्तो
ऽहं । योऽसौ सोऽहं हंसः । सोऽहमस्मि इत्येवं सर्व्वत्र
सदा ध्यायेदिति ॥३७॥

प्रज्ञानं ब्रह्म वाक्यार्थः पूर्व्वमेव प्रबोधितः ।
अहं पदस्यार्थभूतः शक्त्यात्मपरमेश्वरः ॥३८॥
अकारः सर्व्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः ।
हकारो व्योम रूपः स्याच्छक्त्यात्मा संप्रकीर्त्तितः ॥ ३९
शिवशक्तयोस्तु संयोगादानन्दः सततोदितः ।
ब्रह्मेति शिवशक्तयोस्तु सर्व्वात्मत्वमिति स्फुटम् ॥ ४०
पूर्व्वमेवोपदिष्टं तत् सोऽहमस्मीति भावयेत् ॥
तत्त्वमित्यत्र तदिति स शब्दार्थः प्रबोधितः ॥ ४१ ॥
अन्यथा सोऽहमित्यत्र विपरीतार्थभावना ।
अहं शब्दस्तु पुरुष स्तदिति स्यान्न पुंसकम् ॥ ४२ ॥
एव मन्योन्य वैरुद्ध्यादन्वयो न भवेत् तयोः ।
स्त्रीपुंरूपस्य जगतः कारणञ्चान्यथा भवेत् ॥ ४३
स तत्त्वमसि इत्येव मुपदेशार्थभावना ।
अयमात्मेति वाक्यं च पुं रूपं पदयुग्मकम् ॥ ४४
ईशेन रक्षणीयत्वादीशा वास्य मिदं जगत् ।
प्रज्ञानात्मा यदेवेह तदमुत्रेति चिन्तयेत् ॥४५
यः सएवेति विद्वद्भिः सिद्धान्तिभिरिहोच्यते ।
उपरिस्थितवाक्ये च योऽमुत्र स इह स्थितः ॥४६
इति पूर्व्ववदेवार्थः पुरुषो विदुषां मतः ।

अन्यदेव तद्विदितादथो अविताद्धि ॥ ४७
अस्मिन् वाक्ये फलस्यापि वैपरीत्यविभावना ।
यथास्यात् तद्वदेवात्र वक्ष्यामि श्रूयतां मुने ॥ ४८
अयथाविदिताच्छब्दः अपूर्व्वविदितादिति ।
प्रवृत्तः स्यात् ताद्विदितात् तथैवा बिदितात् परम् ॥ ४९
अन्यदेव हि संसिद्धयेन भवेदिति निश्चितम् ।
एषत आत्मान्तर्यामी यो ऽमृतश्च शिवः स्वयम् ॥ ५०
यश्चायं पुरुषे शम्भुर्य श्चादित्ये व्यवस्थितः ।
सचासौ सेतिपार्थक्यं नैक एव स ईरितः॥ ५१
सोपाधि द्वय मस्यार्थ उपचारात् तथोच्यते ।
तंशम्भुनाथं श्रुतयो वन्दन्ति हि हिरण्मयम् ॥ ५२
हिरण्यबाहव इति सर्व्वाङ्गस्योपलक्षणम् ॥
अन्यथा ततूपतित्वन्तु न भवेदिति यत्नतः ॥ ५३
य एषो ऽन्तरिति शम्भु श्छान्दोग्ये श्रूयते शिवः ।
हिरण्यश्मश्रूवां स्तद्वद्धिरण्यनख केशवान् ॥ ५४
नखमारभ्य केशाग्रात् सर्व्वत्रापि हिरण्मयः ।
अहमस्मि परं ब्रह्म परापर परात् परम् ॥ ५५
इति वाक्यस्यतातूपर्य्यं वदामि श्रूयता मिदम् ।
अहं पदस्यार्थभूतः शक्तयात्मा शिवईरितः ॥ ५६
स एवास्मीति वाक्यार्थयोजना भवति ध्रुवं ।
सर्व्वोत्कृष्टश्च सर्व्वात्मा परं ब्रह्म स्वमीरितम् ।५७
परश्चार्थो परश्चेति परात् पर इतित्रिधा ।
रुद्रोब्रह्मा च विष्णुश्च प्रोक्ताः श्रुत्येव नान्यथा ॥ ५८

सेभ्यश्चपरमो देवः पर शब्देन वोधतः ।
वेदशास्त्रगुरूणाञ्च वाक्याभ्यासवशाच्छिशोः॥ ५९
पूर्णानन्दमयः शम्भुः प्रादुर्भूतो भवेद्धृदि
सर्व्वभूतस्थितःशम्भुः सएवाहं न संशयः ॥६०
तत्त्वजातस्य सर्व्वस्य प्राणोऽस्म्यहमहं शिवः ।
इत्युक्त्वा पुनरप्याह शिवस्तत्त्वत्रयस्यच ॥६१
प्राणोऽस्मीत्यत्र पृच्छ्यादि गुणान्तग्रहणान्मुने ॥
आत्मतत्त्वानि सर्व्वाणि गृहीतानीति भावय ॥६२
पुनश्च सर्व्वग्रहणं विद्यातत्त्वशिवात्मनोः ।
तत्त्वयोश्चास्म्यहं प्राणः सर्व्वः सर्व्वात्मको ह्यहम् ॥६३
जीवस्य चान्तर्य्यामित्वाज्जीवोऽहं तस्य सर्व्वदा ।
यद्भूतं यच्च भाव्यं यद्भविष्यत् सर्व्वमेव च ॥६४
मन्मयत्वादहं सर्व्वः सर्व्वो वै रुद्र इत्यपि ।
श्रुतिराह मुने साहि साक्षाच्छिवमुखोद्गता ॥६५
सर्व्वं खल्विदं ब्रह्मेति वाक्यार्थः पूर्व्वमीरितः ।
पूर्णोऽहं भावरूपत्वान्नित्यमुक्तोऽहमेवहि ॥६७
पशवो मत्प्रसादेन मुक्ता मद्भाव माश्रिताः ।
योऽसौ सर्व्वात्मकः शम्भुः सोऽहं हंसः शिवोऽस्म्यहं ॥
इतीश श्रुतिवाक्याभ्या मुपदिष्टार्थमादरात् ।
साक्षाच्छिवैक्यदं पुंसा मुपदिश्य शिशो गुरुः ॥६९

इति उपदेश वाक्य मुक्तं ॥

आदाय शंखं साधार मस्त्रमन्त्रेण भस्मना ।
शोध्य तत् पुरतः स्थाप्य चतुरस्रे समर्च्चिते ॥७०

ॐमित्यभ्यर्च्च गन्धाद्यै रत्नवस्त्रोपशोधितम् ।
वासितं जलमापूर्य्य संपूज्योभितिमन्त्रतः ॥ ७१
सप्तधैवाभिमन्त्र्याथ प्रणवेन पुनश्च तत् ।
यस्त्वन्तरं किञ्चिदस्ति कुरुते सतुभीतिभाक् ॥७२
इत्याह श्रुतिरातस्त्वं दृढात्मा गतभी र्भव ।
इत्याभाष्य स्वयं शिष्यं देवंध्यायन् समर्च्चयेत् ॥७२
शिष्यासनं संप्रपूज्य षडुत्थासनमार्गतः ।
शिवासनञ्च संकल्प्य शिवमूर्त्तिं प्रकल्प्य च ॥७४
पञ्चब्रह्माणि विन्यस्य शिवपादावसानकम् ।
मुण्डवक्त्रकलाभेदैः प्रणवस्य कला अपि ॥७४
अष्टत्रिंशन्मन्त्ररुपाः शिष्यदेहेऽय मस्तके ॥
समावाह्य शिवं शान्तं स्थापनीयाः प्रदर्श्य च ॥७६
मुद्रा श्चाङ्गानि विन्यस्य सर्व्वज्ञानीत्यनुक्रमात् ॥
उपचारांश्च संकल्प्य षोडशासनपूर्व्वकान् ॥७७
पायसान्नञ्च नैवेद्यं समर्प्य मग्निजायया ।
गण्डूषाचमनार्घ्यादि धूपदीपान्तकं क्रमात् ॥७८
नामाष्टकेन संपूज्य ब्राह्मणै र्वेदपारगैः ॥
जपेद्ब्रह्मविदाप्नोति भृगुर्वै वारुणिस्ततः ॥७६
योदेवानामुपक्रम्य यः परः स महेश्वरः ।
इत्यन्तं तस्य पुरतः कल्हारादिविनिर्म्मिताम् ॥८०
आदाय मालामुत्थाय श्री विरुपाक्ष निर्म्मिते ।
शास्त्रे पञ्चाशिके रूपे सिद्धि स्कन्दं जपन् शनैः ॥८१
स्यातिः पूर्णाहमित्यन्तं कण्ठदेशे समर्पयेत् ।

मनोहर सुगन्धाढ्या मागुल्फान्तावलंविनीम् ॥८२
तिलकं चन्दनेनाथ सर्व्वाङ्गालेपनं पुनः ।
स्वसंप्रदायानुगुणं नाम श्रीपादसंज्ञितम् ॥ ८३
छत्र ञ्च पादुकां दद्या दूर्ज्ञूर्ध्वा कल्प बिकल्पनम् ।
व्याख्यातृत्व ञ्च कर्म्मादि गुर्व्वासन परिग्रहम् ॥८४
अनुगृह्य गुरु स्तस्मै शिष्याय शिवरूपिणे ।
शिवोऽहमस्मीति सदा समाधिस्थो भवेति तम् ॥८५
संप्रोच्याथ स्वयं तस्मै नमस्कारं समाचरेत् ॥
संप्रदायानु गुण्येन नमस्कुर्य्यु स्ततोऽपरे ॥ ८६
शिष्य स्तथा समुत्थाय नमस्कुर्य्याद् गुरुक्रमात् ।
गुरुं परगुरुं तस्य शिष्यां श्च स्वगुरोरपि ॥ ८७
एवंकृतनमस्कारं शिष्यं जप्त्वा गुरुः स्वयम् ।
अद्य प्रभृतिलोकाना मनुग्रहपरो भव ॥८८
परीक्ष्य वत्सरं शिष्यमङ्गी कुरु विधानतः ।
रागादि दोषान् सन्त्यज्य शिवध्यानपरो भव ॥८९
सत्संप्रदायसंसिद्धैः सङ्गंकुरु न चेतरैः ।
अनभ्यर्च्च शिवं जातु मा भुङ्क्ष्वाप्राणसंक्षयम् ॥९०
गुरु भक्तिं समास्थाय सुखी भव सुखी भव ।
इति क्रमाद् गुरुवरः समं शिष्यं समाचरेत् ॥९१
योगपट्ट प्रकारस्ते कथितो मुनिसत्तम ।
इतिशिव पुराणे योगपट्ट कथनं समाप्तं ॥ श्रीहरिः ।
अथ ब्रह्मानन्दीय पद्धत्यनु सारेणयोगपट्ट प्रयोग उच्यते
योगपट्टस्तु गुरुणा कारिते पर्य्यङ्कशौचे मृत् जला

स्वयमभ्यागतः पीठादावेवस्थितः कटिशौचं विधाय गुर्व्व-नुज्ञया पादुकाभ्यां गृहं प्रव्रज्य द्विगुणकटिसूत्रं वध्वा अ-न्यद्वस्त्रेणावगुण्ठयात्मन्य पूर्व्वमेव कल्पिते उच्चासने गुर्व्वनुज्ञया उपविश्य सभ्यैः सह वेदान्तं किञ्चिदुपन्यसेत् । ततो गुरुणा।विधिवन्न्यासपूर्व्वं शंखजलेन शिष्यशिरस्यभिषेकं कृत्वा वस्त्रगन्धमाल्यधूपदीपनानानैवेद्यैः संपूज्य स्तोत्रा-णिपठेत् ॥ ततो वस्त्रं चोपरिसंधार्य्य वन्धुभिर्यतिभिः सह विश्वरूपाध्यायं पश्यामि देवा नित्यादि भुंत्व राज्यं समृद्धमि-त्यन्तं पठेत् । ततो गुरुः सर्व्वसम्मतं पूर्व्वमेव कल्पितं नाम दद्यात् । ततो गुरुः शिष्यं प्रत्याह । अद्यप्रभृति त्वया सन्न्यासाधिकारिणः सन्न्यासो देयः । तथा अधीतस्यदीक्षा व्याख्याच देया योगपट्टादिश्चेति । तथा गुरून् ज्येष्ठयतीन् सदैव नमस्कुरुइति सन्न्यासिने गुरुराज्ञां दद्यात् । शिष्यः शिरसा तामाज्ञां प्रतिगृह्णीयात् ततो गुरुः कटिसूत्रं पञ्चमुद्रा-लङ्कृतं दण्डश्च तमेव दत्वा यथासंप्रदायं नमस्कुर्य्यात् ॥ अन्येऽपि तत्रस्थयोगिगृहस्थाद्याश्च नमस्कुर्व्वन्ति ॥ शिष्यो नारायणेत्युक्त्वा तदासनादुत्थाय उच्चासने गुरुमुप-वेशयित्वा यथोपदेशं जोटिकापादग्रहणादि नमस्कारान् गुरोरन्येषां यतीनाञ्च कुर्यादिति ॥ अथ प्रकीर्णकं कर्म्म-निरूपणं विश्वेश्वर पद्धतौ ॥ अत्र निषिद्धानि ॥

नामगोत्रादिचरणं देशं कालं श्रुतं कुलम् ।
वयोवृत्तं धृतं शीलं ख्यापयेन्नैव सद्यतिः ॥ १

भिक्षादि स्वार्थ मुद्दिश्य नामगोत्रादिकीर्त्तनं

न कर्त्तव्यमित्यर्थः॥ अतएव मिताक्षरायां समासालङ्कारे यति-
वर्यविज्ञानेश्वरेण लोकसंग्रहाय कृतं तत्कीर्त्तनं न दोषा-
येति सङ्गच्छते ॥ अत्रिः ॥ पिता माता स्वसा भ्राता स्नुषा
जाया सुतस्तथा। ज्ञाति बन्धुसुहृद्वर्गो दुहिता तत् सुताद्यः॥
यस्मिन् देशे वसन्त्येते न तत्र दिवसं वसेत् ।
द्वेषःशोको भवेत्तत्र रागहर्षादयो मलाः ॥ २
अश्रुपातं यदा कुर्य्याद्भिक्षुः शोकेन चार्द्दितः ॥
योजनानां शतं गत्वा तदा पापात् प्रमुच्यते ॥३॥ इति॥
इदंपित्रादिसन्निधानावस्थानं अशक्तविषयमित्युक्तमवस्था-
योजनानामितिशत प्राजापत्य संपादक तीर्थयात्रां कृत्वेत्यर्थः
वायुपुराणे ॥ द्वावेतौ सम्रवीर्य्यौतु सुरा ताम्बूलमेव च।
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन ताम्बूलं वर्ज्जयेद् यतिः ॥ इति॥
व्यासः ॥ मा ददस्वेति यो ब्रूयाद्गव्यग्नौ ब्राह्मणेषु च।
श्वानयोनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वपि जायते ॥ २
यः प्रवृत्तां श्रुतिं सम्यक् शास्त्रं वा ऋषिभाषितम् ।
दूषयेदनभिज्ञो यः सभवेत् ब्रह्मघातकः ॥ ३
यतीनां काञ्चनं दत्वा ताम्बूलं ब्रह्मचारिणाम् ।
चौराणामभयं दत्वा दातापि नरकं व्रजेत् ॥ ४
दातापीत्यपिनाप्रतिग्रहीता समुच्चीयते ।
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्य्याकार्य्यमजानतः ॥
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥५
उत्पथेति विगीतमद्यपानस्त्रीनिषेवणादिप्रवृत्तस्येत्यर्थः
माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा च माद्यति ।

तस्माद्दृष्टमदां नारीं दूरतः परिवर्ज्जयेत् ॥
दृष्टं दर्शनं तन्मात्रेण मदजनको निर्द्दिष्टः प्रमदा तां ॥ ६
यत्यन्नञ्च न भोक्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
गोमांसेन समं चान्नं सुराविन्दुसमंजलम् ॥ ७
॥स्मृत्यन्तरेपि ॥ यत्यन्नंयतिपात्रस्थं यतिना प्रेरितञ्चयत् ।
अन्नत्रयं न भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ॥ इति ॥८
यतिभिक्षितान्नम् यतिपात्रस्थं यतीनां पात्रे भोजनं न
कर्त्तव्यं । यतिना प्रेरितं यतिप्रेरितं गृहस्थेनादीयमानं
यति प्रेरितं प्रतिभाति अयंनिषेधो गृहस्थादेरेव नतु सन्न्या
सिनः । तेन विश्वेश्वर पद्धतौउक्त यतिधर्म्मे स्वाश्रमाभ्या-
गतयतिवृद्धपूजनम् उक्तन्न विरुध्यते ॥ स्मृति संग्रहे ॥
एकान्नन्तु त्र्यहं भुक्त्वा निरन्तर मनापदि ।
प्राणायामशतं कुर्याच्छुध्द्यर्थं यतिरात्मवान् ॥ ९
पलाशपद्मपत्रेषु गृही भुक्तिं समाचरेत् ।
यतिश्च ब्रह्मचारी च चान्द्रायणफलं लभेत् ॥१०
सौवर्णेषु च पात्रेषु ताम्ररौप्यमयेषु च ।
भुञ्जन् भिक्षु र्न दुष्येत दुष्येत तत्प्रतिग्रहात् ॥११
पक्वं वा यदि वापक्वं पाचयेद् यः क्वचिद् यतिः ।
स्वधर्म्मस्य तु लोपेन तिर्य्यग्योनिं व्रजेत्तु सः ॥१२
स्वयं पक्त्वा यो भुंक्ते च तस्य सान्तपनत्रयम् ।
पाचयित्वा तु यो भुंक्ते तस्य कृच्छ्रं विशोधनम् ॥१३
न स्नानमाचरेद्भिक्षुः पुत्रादिनिधने श्रुते ।
मातृपितृक्षयं श्रुत्वा स्नात्वा शुध्यति साम्बरः ॥१४

न कुर्य्यात् सूतकं भिक्षुः श्राद्धपिण्डोदकक्रियाः ।
त्यक्तं सन्न्यासयोगेन गृहधर्म्मादिकं व्रतम् ॥
गोत्रादिचरणं सर्व्वं मातृपितृकुलत्रयम् ॥१५
गोत्रादि चरणेन सापिण्ड्य समानोदक संग्रहः त्रयमि
मृताशौच मित्यर्थः॥विधवां कञ्चुकोपेतांसधवांकञ्चुकं विना
पतिश्च कञ्चुकोपेतं सवासाजलमाविशेत् ॥१६
अत्र दृष्टेति शेषः। कञ्चुकोपेतमिति उष्णीषस्या प्युलक्ष
कञ्चुकं कांचुलीत्यर्थः ॥ सिद्धमन्नं गृहस्थाय वनस्थाय
गोरसम्। यतये काञ्चनं दत्वा रौरवं नरकं व्रजेत्। इति॥
दशविधहिंसां न कुर्य्यात्॥उद्वेगजननं सन्तापजननं रुद्धकर
शोणितोत्पादनं पैशुन्यकरणं सुखापनयन मतिक्रमः॥१
संरोधो वन्ध इति द्वाविमौ न बिराजेते विपरीतेन कर्मणा
निरारम्भो गृहस्थश्च कार्य्यवांश्चैव भिक्षुकः ॥ १९
न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो मुनिः ।
न च वाक् चपलश्चैव इति शिष्टस्य लक्षणम् ॥२०
ज्वलितस्य वनेवन्हेर्दावदग्धा न संस्थितिः ।
सर्पस्य वाथ चौरादेः सिंहव्याघ्रादिकस्य च ॥२१
भयान्न संत्यजेन्मार्गं भयाद्भयति विनश्यति ॥
मोक्षं गच्छत्यसौ विप्रो निर्भयो यस्त्वसंग्रहः॥ इति ॥२२
॥ आरुणिक श्रुतिः॥ काम क्रोध लोभ मोह दम्भ दर्पासूया
ममत्व अहंकारानृतादीनपित्यजेत् ॥ अत ऊर्द्ध शमदम
घरेदूर्द्ध गमनं विसृजेत् ॥२३ काठकब्राह्मणं ।
सन्न्यस्याग्नीन्न पुनरावर्त्तयेन्नापत्यं जायामावाह्वयेदिति।पर

हंसोपनिषदि । सौवर्णादीनां नैव परिग्रहेत् ॥ २४
तस्माद्भिक्षु र्हिरण्यं रसेन स्पृष्टश्च ब्रह्महा भवेत् ।
तस्माद्भिक्षु र्हिरण्यं रसेन स्पृष्टञ्चेत् स पौक्वसो भवेत् ॥ २५
यस्माद्भिक्षु र्हिरण्य रसेन ग्रास श्वरःसर्व्वे कामा मनोगता ह्या-
वर्त्तेरन् तद्दुःखेनोद्विग्नः ॥२६
सुखे निस्पृहस्त्यागो रागे सर्व्वत्रशुभाशुभयो रनभिस्नेहः ॥
न द्वेष्टि न मोदञ्च सर्व्वेषामिन्द्रियाणां गतिरुपरमते
य आत्मन्येवावस्थीयते यत् पूर्णानन्दैक बोध स्तद्ब्रह्माह-
मस्मीति कृतकृत्यो भवति कृतकृत्यो भवतीति ॥२७
॥मेधातिथिः॥ शुश्रूषालाभपूजार्थं यशोऽर्थं वा परिग्रहः॥
शिष्याणां नतु कारुण्यात् स ज्ञेयः शिष्यसंग्रहः ॥ २८
विद्यादानं प्रकाशत्वादविद्यारात्रिरूच्यते ॥
विद्याभ्यासे प्रमादी यः स दिवास्वाप उच्यते ॥ २९
आध्यात्मिकीं कथां मुक्त्वा भिक्षायाश्चासुरस्तुतिम् ।
अनुग्रहं पथि प्रश्नं वृथाजल्पो य उच्यते ॥ ३०
॥ हारीतः ॥ श्वचर्म्मणि यथा क्षीरमपेयं ब्रह्मवादिभिः ।
तथा शूद्रमुखाद्वाक्यं न श्रोतव्यं कदाचन ॥ ३१
॥ बह्वृचपरिशिष्टे ॥ यो भवेत् पूर्व्वसन्न्यासी तुल्यो वै धर्म्म-
तोयदि । तस्मै प्रणामः कर्त्तव्यो नेतराय कदाचन ॥ ३२
अत्रिः ॥ छेदभेदोपमर्द्दञ्च प्राकारंगृहमाश्रमम्
स्वाहा स्वधा वषट्कारो विषयाणाञ्च सन्निधिः ॥ ३३
स्तुतिनिन्दाक्रियावादाः परमर्म्मावघातनम् ।
तृष्णा क्रोधो ऽनृतं माया लोभमोहौ प्रियाप्रिये ॥ ३४

शिल्पं व्याख्याच योगश्च कामो रागपरिग्रहः।
अहङ्कारममत्वञ्च किञ्चित्साधर्म्यसाहसम्। ३५
प्रायश्चित्तप्रदानञ्च मन्त्रौषध्यसदाशिषः॥
एकान्नं मदमात्सर्य्यं गन्धपुष्पविभूषणम्। ३६
ताम्बूलाभ्यञ्जनेक्रीडा भोगाकांक्षारसायनम्।
कथनं कुत्सनं स्वस्ति ज्योतिषं क्रयविक्रयोः। ३७
क्रिया कर्म्मविवादश्च गुरुवाक्यविलंघनम्॥
सन्धिश्च विग्रहो यानं मञ्चकं शुक्लवाससम्॥ ३८
शुक्रोत्सर्गो दिवास्वापो भिक्षाधारस्तु तैजसः।
विषञ्चैवायुधं वीजं हिंसातैक्ष्ण्यं च मैथुनम्॥३९
प्रतिषिद्धानि चैतानि सेव्यमानो व्रजत्यधः।
एतत्तुपरहंसानां क्रियमाणं विभूषणम्॥४०
ब्रह्मसर्व्वगतं ज्ञात्वा विचरेत यथा सुखमिति।
॥क्रियासारे॥ भैक्ष्यादेशनृपज्ञातिपुत्रमित्रादियोषिताम्॥
उपकारकथास्त्वन्या मनसापि न चिन्तयेत्।
आगच्छ तिष्ठ तिष्ठेति स्वागतं सुहृदे पिवा॥
सम्मानञ्च नतु ब्रूयान्मुनिर्मोक्षपरायणः॥ इति ४१
यतीनां गयागमनविधिः॥ वायुपुराणे त्रिचत्वारिंशाध्या
गयामाहात्म्यम्॥दण्डं प्रदर्शयेद्भिक्षुर्गयां गत्वा न पिण्डद
दण्डं विष्णुपदे स्पृष्ट्वा पितृभिः सह मुच्यते॥१
गयायां मुण्डपृष्ठे च कूपेयूपेवटे तथा।
दण्डं प्रदर्शयेद्भिक्षुः पितृभिः सहमोदते॥२
स्पृष्टेति अन्तर्भूतण्यर्थं प्रदर्शयित्वेत्यर्थः। तस्य एव अ

मात् पुनस्तत्र एव दण्डात्मनस्तु चाण्डाले व्यवधानेनभिक्षुकः
प्राणायामशतं कुर्य्यान्मुद्राभेदे तथैव च ॥३
शूद्रेणाव्यवधाने तु प्राणायामांस्तु षोड़श ।
द्वादशाष्टौच चतुरो विट्क्षत्रियद्विजोत्तमैः ॥४
गयामाहात्मम् । ब्रह्महत्या सुरापानंस्तेयं गुर्व्वङ्गनागमः ।
पापं तत्सङ्गजं सर्व्वं गयाश्राद्धाद्विनश्यति ॥५
ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहेमरणं तथा ।
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्व्विधा ॥६
ब्रह्मज्ञानेन किं कार्य्यं गोगृहेमरणेन किम् ॥
वासेन किं कुरुक्षेत्रे यदि पुत्रो गयां व्रजेत् ॥७
गयायां सर्व्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः ।
अधिमासे जन्मदिने चास्तेऽपि गुरुशुक्रयोः ॥८
न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थेऽपि वृहस्पतौ ।
तथा दैवप्रमादेन सुप्रहतुषु व्रणेषु च ॥९
पुनः कर्म्माधिकारीच श्राद्धकृद्ब्रह्मलोकभाक् ।
प्रमादान्म्रियते क्षेत्रे ब्रह्मादे मुक्तिदायके ॥१०
ब्रह्मज्ञानाद्गयया मुक्तिर्लभ्यते नात्र संशयः ॥
कीकटादिमृतानाञ्च पितॄणां तारणायच ॥११
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यं सुविचक्षणैः ॥
ब्रह्मप्रकल्पितान् विप्रान् हव्यकव्यादिनार्च्चयेत् ॥१२
तैस्तुष्टैः स्तोषिताः सर्व्वा पितृभिः सहदेवताः ॥
मुण्डनं चोपवासञ्च सर्व्वतीर्थेष्वयं विधिः ॥१३
वर्ज्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालां विरजां गयाम् ॥१४

न दण्डी किल्विषं धत्ते पुण्यं वा परमार्थतः ।
अतः सर्व्वाः क्रिया स्त्यक्त्वा विष्णुं ध्यायति भावुकः ॥
सन्न्यसेत् सर्व्वकर्म्माणि वेदमेकं न सन्न्यसेत् ।
मुण्डं कुर्य्याच्च पूर्व्वेऽस्मिन् पश्चिमे दक्षिणोत्तरे ॥१६
सार्द्धक्रोशद्वयं मानं गयेति ब्रह्मणेरितम् ।
पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः ॥१७
तन्मध्ये सर्व्वतीर्थानि त्रैलोक्ये यानि सन्ति वै ।
श्राद्धकृद् यो गयाक्षेत्रे पितॄणामनृणो हिसः ॥१८
सन्न्यस्ताखिलकर्म्मापि पितुर्वन्द्यो हि मस्करी ।
सर्व्ववन्द्येन यतिना प्रसू र्वन्द्या प्रयत्नतः ॥१९
तामुद्दिश्य गयाक्षेत्रमचिरञ्चावलंव्यताम् ।
पुनस्तत्रैव वायुपुराणेदण्ड व्यवधाने प्रायश्चित्तादि उक्तन्त
भग्नदण्डादिकं चैव जले गाधे क्षिपेद्यतिः ॥२०
मद्यमूत्रपुरीषैश्च शुक्रकश्मलशोणितैः ।
स्पृष्टं दण्डं त्यजेद्भिक्षुः शेषैः संस्कारमर्हतीति ॥२१
आत्महस्ते यदादण्ड स्तदा दोषो न विद्यते ।
चाण्डालादिभिः स्पृष्टोऽपि दोषभाक् न भवतीत्यर्थः ॥
अत्रेयं व्यवस्था । हस्तस्थित दण्डे चाण्डालादिभि
ध्यानमेव न दुष्यति जलांवरादिभूस्थ। पितेतु तद्दोषावहम
भवति दुष्यति जलांवरादिषु क्षिप्तेन कश्चिद्दोष
भवेत् इत्युक्तत्वात् तस्मात् केवल भूमिस्थापितदण्ड
वात्मनश्च चाण्डालादि कृत व्यवधान मेव दोषावहं ।
तत्रैव चोक्त प्रायश्चित्तमिति मन्तव्यम् । मुद्रा भेद इति

मुद्रारज्जुबन्धनं तद्भेदः । इदं च त्रिदण्डविषयम् । बौधायनेन त्रिदण्ड एव गोवालरज्जुबन्धनस्योक्तत्वादे-कदण्डे च तदभावस्योक्तत्वात् ॥ न चैकदण्डेऽपिकार्पास-सूत्रवन्धन मस्त्येवेति वाच्यं । तस्य मानुषकल्पितत्वेन तद्भेदस्य स्मृति वाक्या गोचरत्वात् ॥ कश्मलं नेत्र कर्णादिमलः शवै रुच्छिष्टखरकाकादिभिः स्पृष्ट श्चेदित्यर्थः ॥ संस्कारस्तु प्रक्षाल्य प्रथमवदेव शंखोदकेन वारिणा वा पुरुष सूक्तेनद्वादश-प्रणवैश्चाभि षिच्य ॥ इन्द्रस्य वज्रोऽसीत्यादि मन्त्रेण ग्रहणं कर्त्तव्य मित्यर्थः ॥ वायु पुराणे ॥ यथैव मवमन्यन्ते यथा परिभवन्ति च । युक्तं तथाचरेद्भैक्ष्यं सतां धर्म्म मदूषयन् ॥१

भैक्ष्यं चरेद् गृहस्थेषु यथाचारगृहेषु च ।
श्रेष्ठा तु परमाचेयं वृत्तिरस्योपदिश्यते ॥ २

अत ऊर्द्ध्वं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्द्विजः ।
श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु ॥३

अत ऊर्द्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टपतितेषु च ।
भैक्ष्य चर्य्या विवर्णेषु जघन्या वृत्तिरुच्यते ॥४

भैक्ष्यं यवागुं तक्रं वा पयो यावक मेव च ।
फल मूल विपक्वं वा पिण्याकं शक्तितोऽपि वा ॥५

इत्येते वै मया प्रोक्ता योगिनां सिद्धिवर्द्धनाः ।
आहारा स्तेषु सिद्धेषु श्रेष्ठं भैक्ष्यमिति स्मृतम् ॥६

अब्बिन्दुं यः कुशाग्रेण मासे मासे समश्नुते ।
न्यायतो यस्तु भिक्षेत स पूर्व्वोक्ताद्विशिष्यते ॥ ७ ॥

योगिनाञ्चैव सर्व्वेषां श्रेष्ठञ्चान्द्रायणं स्मृतं ।

एकं द्वित्रीणि चत्वारि शक्तितो वा समाचरेत् । ८
अस्तेयं ब्रह्मचर्य्यञ्च अलोभ स्त्याग एव च ।
व्रतानि चैव भिक्षूणा महिंसा परमार्थिता । ९
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम् ॥
नित्यं स्वाध्याय इत्येते नियमाः परिकीर्त्तिताः । १०
वीजपो निर्गुणावपुर्व्वद्धः कर्म्मभिरेव च ॥
यथाद्विप इवारण्ये मनुष्याणां विधीयते ।११
प्राप्यते वाचिरादेवाङ्कुशेनैव निवारिताः ।
एवं ज्ञानेन शुद्धेन दग्धवीजोह्यकल्मषः । १२
विमुक्तवन्धः शान्तोऽसौ मुक्त इत्यभिधीयते ॥
वेदैस्तुत्या सर्व्वयज्ञक्रियास्तु यज्ञेजाप्यं ज्ञानिना माहुरग्र्
ज्ञानाद्ध्यानं सङ्गराग व्यपेतं तस्मिन् प्राप्ते शाश्वत स्योपल
इति वायु पुराणे शौचाचारः समाप्तः ॥
यतीनां निषिद्ध कर्म्मणि पातित्यं दर्शयति ।
अत्रिः ॥ मञ्चकं शुक्लवस्त्रञ्च स्त्रीकथा लौल्यमेव च
दिवास्वापञ्च यानञ्च यतीनां पतनानिषट् ॥ इति ॥
संभाषणं सह स्त्रीभि रालापं प्रेक्षणं तथा ।
नृत्यं गानं सभांसेवां परिवादांश्च वर्ज्जयेत् ॥१३
मेधातिथिः ॥ न सभाषत् स्त्रियं कांचित्पूर्व्वदृष्टां न च स्म
कथाञ्च वर्ज्जयेत्तासां न पश्येल्लिखितामपि ॥ १४
एतच्चतुष्टयं मोहात् स्त्रीणामाचरतो यतेः ।
चित्तं विक्रियतेऽवश्यं तद्विकारात् प्रणश्यति ॥ १५
सुजीर्णो पि सुजीर्णासु विद्वान् स्त्रीषु न विश्वसेत् ।

सुजीर्णास्वपि कन्थासु सज्जते जीर्णमम्बरम् ॥ १६
॥ क्रतुः ॥ अधः शय्यासनानान्तु वाङ्मयस्पर्शनभाषणैः ।
याजनाध्यापन व्याख्या वस्त्रभाण्ड परिग्रहैः । १७
मिथुनेच्छासंकल्पैः संकराःस्यु र्यतेः सदा ।
मेधातिथिः ॥ स्थावरं जङ्गमं वीजं तैजसं विषमायुधम् ।
षड़ेतानि न गृह्णीयाद् यति र्मूत्रपुरीषवत् ।
रसायनं क्रियावादो ज्योतिषं क्रयविक्रयं ॥ १६
विविधानि च शल्यानि वर्ज्जयेत् परदारवत् ।
॥दक्षः।भयं प्राणान्तिकं मुक्त्वा विश्मूत्रोत्सर्ग एव च ।२०
नान्यत्र विचरेद्रात्रौ न मध्यान्हे न सन्ध्ययोः ।
॥मनुः॥नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः ।२१
जानन्नपि हि मेधावी जड़वल्लोक माचरेत् ॥
॥वृहस्पतिः॥नैवाददीत पाथेयं यतिः किञ्चिदनापदि ॥ २२
पक्क मापत्सु गृह्णीयाद् यावदन्होपभुज्यते ॥
पाथेयमेकरात्रस्य पानीयं दुर्गमे पथि ॥ २३
गृह्णीयान्नाधिकं चान्नं भेषजन्तु यथेच्छया ॥ इति ॥ विष्णु-
पुराणे ॥ युक्तः कुर्व्वीत न द्रोहं सर्व्वसङ्गांश्च वर्ज्जयेत् ॥२४
जरायुजाण्डजादीनां वाङ्मनः कर्म्मभिः क्वचित् ।
॥अत्रिः॥न चैकस्मिन् वसेद्ग्रामे नचैकस्मिन् सरित्तटे । २५
शून्यागारे न चैकस्मिन् वसेच्छून्यालयेतथा ॥
लोकयात्रां प्रयत्नेन वर्ज्जयेदात्मचिन्तकः ।२६
नान्योपनिषदं विद्यामभ्यसेन्मुक्तिहेतुकीम् ।
मासादाच्छादनादन्यन्न गृह्णीयात् कथञ्चन । २७

यावदाहारयेत्तावत् प्रतिगृह्णीत नान्यथा ॥
परार्थं न प्रतिग्राह्यं न च दद्यात् कथं चन ।२८
दैन्यभावात्तु भूतानां संविभागं यतिश्चरेत् ॥
॥क्रतुः॥ आतिरुग्नोयुवाचैव भिक्षुर्नावसथे वसेत् ॥ २९
स दूषयति तत् स्थानं वृद्धान् पीड़यतीति च ॥
॥ मनु ः॥ अतिवादां स्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ।३०
न चैनंदेहमाश्रित्य वैरं कुर्व्वीत केनचित् ॥
क्रुद्धंतं न प्रतिक्रुद्धेदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ।
सप्तद्वारावकीर्णाञ्च न वाचमनृतां वदेत् । ३१
॥ अत्रिः ॥ पक्वं वा यदि वापक्कं पाचयेद्यः क्वचिद्यतिः॥३
सधर्म्मस्य तुलोपेन तिर्यग्योनिं व्रजेत्त्वधः ।
अन्नदानपरो भिक्षुः वस्त्रादीनां परिग्रही ॥ ३३
उभौ तौ मन्दबुद्धित्वात् पूतीनरकशायिनौ ॥
॥वायुपुराणे ॥ यस्तुप्रव्रजितो भूत्वा पुनः सेवेत मैथुनम्॥
षष्टिवर्षसहस्राणिविष्ठायां जायते क्रिमिः ।
शून्यागारेषु घोरेषु आखु र्भवति दारुणः ३५
स तिर्यक् स्यात्ततो गृध्रः श्वावै द्वादशवत्सरान् ।
खरो विंशतिवर्षाणि दशवर्षाणि शूकरः ॥ ३६
अपुष्पो फलितो वृक्षो जायते कण्टकान्वित ः ।
ततो दावाग्निनादग्धः स्थाणु र्भवति कामुकः ॥ ३७
स्थावरात् संपरिभ्रष्टो योनिमन्यां सगच्छति ।
पूर्णे वर्षसहस्रान्ते जायते ब्रह्मराक्षसः ॥ ३८
क्षुत्पिपासापरिश्रान्त ः क्रव्यादो रुधिराशनः ।

क्रमेण लभते मोक्षं कुलस्योत्सादनेन च । ३९
चण्डालगर्भसंभूतो जायते नात्र संशयः ।
अंगिराः॥ न तीर्थसेवी नित्यं स्यान्नोपवासपरो यतिः। ४०
न चाध्ययनशीलः स्यान्न व्याख्यानपरो भवेत् ।
न किञ्चिद्भेषजादन्य न्नचान्यद्दन्तधावनात् ॥ ४१
विना भोजन कालेतु भक्षयेदात्मवान् यतिः
यतिधर्म्मविहीनस्तु संसारान्नातिवर्त्तते ॥४६
हर्षक्रोधौ न कुर्व्वीत मनःपूतं समाचरेत् ।
प्रतिग्रहं न गृह्णीयान्नैव चान्यं प्रदापयेत् ॥४३
प्रेरयेद्वा तथा भिक्षुः स्वप्नेऽपिन कदाचन ।
॥विष्णुः॥वानप्रस्थगृहस्थाभ्यां प्रीतिं यत्नेन बर्ज्जयेत् । ४३
॥दत्तात्रेयः॥ जाया भ्रातृ सुतादीनां वन्धूना ञ्च शुभाशुभम् ४४
श्रुत्वादृष्ट्वा न कम्पेत शोकहर्षौ त्यज्येद् यतिः ॥
॥ हारीतः ॥ छेदने भेदने पाके यति र्यस्तु प्रवर्त्तते ।
तादृशं कश्मलं दृष्ट्वा प्रेतशौचम् विधीयते ॥
तिलधान्य हिरण्यञ्च गोभूदासी गृहादिकम् ॥
तदादाय निषिद्धन्तु योऽश्नुते न भवेद्यतिः
स साधुभिर्वहिष्कार्य्यः स्मृतो ऽसौ पतितो यतिः
तं दृष्ट्वा भिन्नमर्य्यादं स्नानं कुर्य्यात् सहाम्बरम् ।
॥ अङ्गिराः॥ सन्न्यासं चैव यः कृत्वा पुनरुत्तिष्ठते द्विजः॥४८
न तस्य निष्कृतिः कार्य्या स्वधर्म्मात् प्रच्युतस्य च ॥
॥ विष्णुः ॥ आरूढो नैष्ठिकं धर्म्मं पुनरावर्त्तयेद् यदि ॥४९
आरूढपतितो ज्ञेयः सर्व्वधर्म्मवहिष्कृतः ।

स निन्द्यः सर्व्वभूतानां पितृघ्न श्चैव जायते ५०

चाण्डालाः प्रत्यवसिताः परिव्राजकतापसाः ।
तेषां जातान्यपत्यानि चण्डालैः सह्ववासयेत् ॥ ५१

नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनामवकीर्णिनाम्
शुद्धानामपि लोकेस्मिन् प्रत्यापत्ति र्न विद्यते । ५२

वहि स्तूभयथावा पि स्मृतेरा चारा च्च उभयथा पि
कृत प्रायश्चित्ते र्निश्चिता अकृत प्रायश्चित्ता श्चैते सद्भिः
सहाध्ययनसहासनाशनादि व्यवहारानर्हाएवक्कृताः यतः
प्राय श्चित्तै र्निरस्येत पारलौकिक्यशुद्धता ।
नैहिकीवचनान् न्यायवाधो वालवधादिवत् ॥ ५४

॥ मनुः ॥ वालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्म्मतः ।
शरणागतहन्तृं श्च स्त्रीहन्तृंश्च न संवदेत् । ५५

इति न भोजनादि सर्व्व व्यवहार माचरेदित्यर्थः ॥

आकांक्षन्नधिकंवस्त्रंतूलींतूलपटीं तथा ।
प्रतिगृह्य यतिश्चैव पतते नात्र संशयः ॥ ५६

उत्तमां वृत्तिमाश्रित्य पुनरावर्त्तते यदि ।
आरूढपतितो ज्ञेयः सर्व्वधर्म्मवहिष्कृतः ५७

वह्वृच परिशिष्टे । पतत्यसौ ध्रुवं भिक्षुर्यस्य भिक्षाद्वयं भवेत् ।
धीपूर्व्वं रेत उत्सर्गो द्रव्यसंग्रह एव च ।
काञ्चनञ्च तिला गावो भूमिंधान्यं धनंस्त्रियः ।
प्रतिगृह्य यति स्त्वेतान् पतते नात्र संशयः । ५८

भूमिं गावो हिरण्यञ्च यतेर्यस्य परिग्रहः ।
तादृशं कश्मलं दृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत् ॥ ६०

यस्तु प्रव्रजितोभूत्वा पुनः सेवेत मैथुनम् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते क्रिमिः ॥ ६१
अभयं सर्व्वभूतेभ्यो दत्वा यस्तु निवर्त्तते ।
हन्ति जातांश्च जातांश्च प्रतिगृह्णाति यस्य च ॥ ६२
दिवास्वप्नश्च यानञ्च स्त्रीकथा लौल्यमेव च ।
मञ्चकः शुक्लवासश्च यतीनां पतनानि षट् ॥ ६३
अन्नदानपरो भिक्षु श्चतुरो हन्ति दानतः ।
दातारमन्नमात्मानं यस्मै चान्नं प्रयच्छति ६४ इति ।
॥ क्रतुः ॥ माधूकरं समाहृत्य ब्राह्मणेभ्यो ददाति यः ।
स याति नरकं विप्रोभुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ॥ ६५
॥कात्यायनः॥द्रव्यस्त्री मांससम्पर्कान् माधूमाक्षिकलेहनात्
विचारस्य परित्यागाद् यतिः पतनमृच्छति ॥ ६६
॥ व्यासः ॥ क्रोधलोभपरोनित्यं निद्रालस्यपरस्तथा ।
विषादीच्छापरश्चैव श्रेयसो भ्रश्यते द्विजः ॥ ६७
॥ दक्षः ॥ श्वपादेन कषित्वातं राजा शीघ्रं प्रवासयेत् ।
॥ क्रतुः ॥ वीजघ्नं तैजसं पात्रं शुक्रोत् सर्गं सिताम्बरम् ॥ ६८
निशान्नञ्च दिवास्वप्नं यतीनां पतनानि षट् ।
दासीं दासं गृहं यानं गोभूधान्यधनं रसान् ॥ ६९
प्रतिगृह्य यतिर्ग्रामं हन्यात् कुलशतत्रयं ।
आविकं पट्टिकां मांसं तुलिकां मञ्चकं मधु ॥ ७०
शुक्लवस्त्रञ्च यानञ्च ताम्बूलं स्त्रियमेव च ।
प्रतिगृह्य कुलं हन्यात् प्रतिगृह्णाति यस्य च ॥ ७१
पुष्पं शाखां पल्लवं वा फलमूलतृणादिकम् ।

छित्वा च यस्तु सन्न्यासी नरके पतति ध्रुवम् ॥७२
यःस्वधर्म्मं परित्यज्य यदन्यत् कुरुते द्विजः ।
न तस्य निष्कृतिः कार्य्या स्वधर्म्मात् प्रच्युतो हि सः॥७३इति
॥ अङ्गिराः॥ आरूढपतितो हन्ति दश पूर्व्वान्न दशापरान्।
निस्तारयति तानेव यदि सम्यग् व्यवस्थितः ॥ ७४
क्षेत्रं गावो हिरण्यञ्च यतिः यस्य परिगृहः ॥
भैषज्यं सन्निधानञ्च एकान्नं कांस्यभोजनम् ॥ ७७
एकान्नी द्विव्रती चैव भेषजी वस्तुसंग्रही ।
चत्वारो नरकं यान्ति मनुः स्वायम्भुवो ब्रवीत् ॥ इति
यति धर्म्मप्रकाशे॥ दिवा स्वाप इति ब्रह्मविद्यायामालस्यं।
यानमश्वादि आरोहणं इति ॥ ७६ ॥ स्मृति संग्रहे॥
ताम्बूलाभ्यञ्जने चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् ।
कृत्वा चोपवसेद्भिक्षुः स्रग्गन्धादिविभूषणम् ॥ ८०
वहृच परिशिष्टे॥ सुवर्णं रजतं ताम्रं तैजसं यच्च किञ्चन।
स्पृष्ट्वा परिव्राट् शूद्रञ्च सवासा जलमाविशेत् ॥ ८१
द्रवन्तु मुद्रितं स्पृष्ट्वा त्रिरात्रेण विशुध्यतीति ।
स्पृष्ट्वा इति लोभेन स्पृष्ट्वा तेन सुवर्ण पात्रे भोजनं
न विरोधः ॥ मुद्रितस्य स्पर्शस्तु सर्व्वथा न कर्त्तव्य
शूद्रमिति स्वाचार भ्रष्टम् ॥ तेन चातुर्व्वर्ण्यं चरेद्भैक्ष्य
मित्यनेन न विरोधः ॥ अङ्गिराः ॥ न तीर्थ सेवीति ।
अत्र तीर्थोपवासौ काम्यावेव निषिद्धौ तेन काश्यादिनिर्वा
वासे एकादश्याद्युपवासे च न दोषः ।
अध्ययन वेदान्त व्याख्याने कर्म्मकाण्ड विषयिणी निषिद्ध

इति माधवादयःप्राहुः॥ तेन वेदान्तविद्या तदुपयोगिन्याय-
व्याकरणाध्ययने तद्व्याख्याने च न दोष इति मन्तव्यम्॥
यतिधर्म्मसंग्रहे कपिलः प्रायश्चित्त प्रकरणमाह ॥
स्वप्नस्त्री सुख संभोगे स्नात्वा त्रिसहस्रं जपेत् ।
स्वप्नस्कन्नो दुर्व्वलत्वात् प्राणायामास्तु षोड़श ॥२
स्कन्न इन्द्रियदौर्वल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यति र्यदि ।
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोड़शेति ॥३
त्रिसहस्रं प्रणवमिति शेषः ॥ स्वप्ने जाग्रति वा स्त्रियं
दृष्ट्वादुर्व्वलत्ववशात् चरणोपोड़शैव प्राणायामा इत्यर्थः ॥
अथ विश्वेश्वरपद्धतौ प्रायश्चित्तविधिः तत्र प्रयोगसारे ॥
तिष्ठन्नचिरमादित्यमुपस्थायैव भिक्षया ।
स्थित्वा द्वादश संयच्छेत् प्राणायामां स्तदैवतु ॥४
वाचं विसृज्य चाभाष्य त्रिरेवतु विनिश्चयः ।
उदक्याचोदितं चान्नं द्विजान्नं शूद्रचोदितम् ॥५
प्राण्यङ्गं चायसे चान्नं पित्रर्थं कल्पितं तथा ।
देवादिकर्म्मणाकृतं तथा पापैरुदाहृतम् ॥६
नोत्पन्ना सन्ततिः काचित् स्त्रियः पुंसो पि वागृहे ।
नाश्नीयात्तद्गृहे भिक्षुरश्नंश्चान्द्रायणञ्चरेत् ॥७
अशौचं वा गृहे यत्र यावत् सूतकमेव वा ।
पाषण्ड कुष्ठि भ्रुणघ्नै र्दृष्टं चान्न मुदक्यया ॥८
श्वखरकाकचाण्डालै रन्यैरन्त्यावसायिभिः ।
चान्द्रायणं चरेद्भिक्षु र्भक्षित्वातु यदृच्छया ॥९
पात्रेतुपतिते भैक्ष्ये एकभिक्षां करोति यः ।

स कुर्य्याच्छान्तपनं श्रान्तः प्राणायामान् विशुद्धये ॥१०
इति जमदग्निः ॥ संप्रदायविदः ॥
रजस्वलापतेश्चैव सूतिकायाः पतेस्तथा ।
भाण्डस्पर्शनपर्य्यन्तंभिक्षार्थं वर्ज्जयेत् गृहम् ॥११
सूतिकां पुत्रजननीं त्रिंशद्रात्रेण कर्म्मणि ।
कुर्य्यात् मासैकेन तथा भिक्षां स्त्रीजननीषुच ॥
सप्तमे मासिसंप्राप्ते गृहस्थः सूतकी भवेत् ।
तत्रभिक्षां न कुर्व्वीत कृत्वा भिक्षुश्च दुष्यति ॥१३
सप्तमासादिके गर्भे गर्भिण्या यदि पच्यते ।
हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यञ्च पितरस्तथा ॥१४
अज्ञानात् कुरुते यस्तु प्राणायामांस्तु षोड़श ।
अथवा यद्गुरु र्ब्रूयात्तत् कार्य्यमविशङ्कया ॥१५
निग्रहेऽनुग्रहे वापि गुरुः सर्व्वत्रकारणम् ।
विहायदण्डं गृह्णानो द्वादशैव तु धारयेत् ॥१६
वहिर्दण्डं प्रतिष्ठाप्य गृह्णानः षोड़शैवतु ।
अत्रिः॥ भैक्ष्यञ्च परपाकान्नं संमिश्रं योऽत्ति वै यतिः ॥१७
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा प्राणायामं शतं चरेत् ।
श्वकाकगर्दभै रुष्ट्रै र्जम्बूकै र्वानरै स्तथा ॥१८
चाण्डालैः पतितैः स्पृष्टं यतिःपात्रं विसर्ज्जयेत् ॥
पूयशोणितमांसैस्तु स्पृष्टं मूत्रपुरीषयोः ॥१९
श्लेष्माश्रुपातैः स्पृष्टञ्च यतिः पात्रं विसर्ज्जयेत् ॥
यमः॥ यदिपर्य्युषितं भैक्ष्यमद्याद् भिक्षुः कथंचन ॥२०
तदा चान्द्रायणं कुर्य्याद्यतिः शुद्ध्यर्थमात्मनः ।

भिक्षुर्द्विभोजनं कुर्य्यात् कदाचिज् ज्ञानदुर्व्वलः ॥२१
स्वस्थावस्थो यदालौल्यात्तदा चान्द्रायणं चरेत् ।
आखुजंवूकमार्जारखरकाकोष्ट्र शूकरान् ॥२२
वायस वानर वेश्या नरास्थि ग्राम्यकुक्कुटान् ।
नकुलं मद्यभाण्डञ्च यूपकाष्ठं विधर्म्मिणाम् ॥२३
अपवित्रमसन्मार्गं चितिकाष्ठं चितिं तथा ॥
वसनं नीलिरक्तञ्च धर्म्मभेत्तारमेवच ॥२४
अमेध्यनिचयासङ्गं स्पृष्ट्वा देवलकं यतिः ।
स्थाप्य पात्रं शुचौ देशे शुभं गच्छेज्जलाशयम् ॥२५
शौचं कृत्वा यथान्यायं क्षालयेत्तान् मृदम्भसा ।
यदैवापहृतंह्यङ्गंमृद्भिर्द्वादशभि र्यतिः ॥२६
निमज्जेत्तु ततस्तोये कुर्य्यादाचमनं ततः ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा त्रिर्जपेदघमर्षणम् ॥२७
अन्तर्ज्जले यथान्यायं शुद्ध्यर्थं योगदीक्षितः ।
भैक्ष्याधारं समादाय त्रिकेणाभ्युक्ष्यवारिणा ॥२८
निमज्यच ततस्तोये शुद्ध्यर्थं सङ्करे तदा ।
एवमेषाहि संस्पृष्टा भिक्षाभिक्षो र्विशुद्ध्यति ॥२९
यदा पात्रं न संलग्नं तथा शुद्ध्यतिनान्यथा ।
संलग्नेत्वथ पात्रेतु सद्यस्त्यागो विधीयते ॥३०
उद्धृत्य सव्यहस्तेन तोयं पिवति यो द्विजः ।
सुरापानेन तत्तुल्यं पीत्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ॥३१
ताम्बूलाभ्यञ्जनञ्चैव कांस्यपात्रेतु भोजनम् ।
कृत्वातूपवसेद्भिक्षुः स्रगूगन्धादिविभूषणम् ॥३२

॥ जावालः ॥ सन्न्यासं कुरुते यस्तु श्राद्धं तस्य विधीयते।
तस्यान्नंनैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥
॥ क्रतुः ॥ भर्तृहीनाच या नारी स्वतन्त्रा बन्धुवर्जिता।
तदन्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ॥३४
स्वधर्म्मात् प्रच्युता ये वै पुरुषा योषितो पिवा।
अवीरास्ते सदाज्ञेया नित्यं सद्भि र्विगर्हिताः ॥३५
जमदग्निः ॥ आहारग्रहणे रात्रौ प्राणायामा दशस्मृताः।
जलप्रग्रहणे रात्रौ प्राणायाम स्तथैवच ॥३६
भुक्तशेषं न कुर्वीत प्रमादात् कुरुते यदि।
प्रतिग्रासं तदा कुर्य्यात् त्रीन्त्रिन् प्राणायामान् यतिः ॥३७
विशीर्णञ्च सलेपञ्च पात्रं चोपहतं यदा।
तत्र मोहाद्यति भुंक्ते चरेदिन्दुव्रतं सकृत् ॥३८
॥ देवलः ॥ दृष्टं भ्रूणघ्नपाषण्डैः कुष्ठ्यादिभिरुदक्यया।
श्वषण्डकाकचाण्डालै रन्त्यै रन्त्यावसायिभिः ॥३९
एतदन्नं न भुञ्जीत भुक्त्वा चान्द्रायणं श्चरेत्।
पतितान्नं सकृद्भुक्त्वा प्रायश्चित्ती भवेद्यतिः ॥४०
तप्तकृच्छ्रत्रयं कृत्वा शुध्यते नात्र संशयः।
यमः ॥ उपानहौ विनाभिक्षुः कृत्वा भिक्षाटनादिकम् ॥४१
मार्गे मूत्रादिसंकीर्णे सम्यक् स्नानेन शुध्यति ॥
अज्ञानाद्या भवेद्धिंसा यते भिक्षाटने क्वचित् ॥४२
प्राणायामत्रयं कुर्य्यात्तथाचम्य विशुध्यति ॥
॥ जावालः ॥ स्वस्थावस्थो यदा भुंक्ते पुनराहृत्य तद्दिने ॥४
अन्यग्रामेऽथवा तस्मिन् तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्।

यद्वा ग्रामद्वये भिक्षुश्चरेद्भैक्ष्यं प्रमादतः ॥ ४४ ॥
स्वधर्म्माकुशलो लुब्ध स्तदा चान्द्रायणं चरेत् ।
अशक्तः प्राणरक्षार्थं पुनर्मूलं फलादिकम् । ४५
भक्षयेन्नैव दुष्येत भेषजं दन्तधावनम् ।
यथा न पीड्यते कायो नैवान्तकवशं व्रजेत् ॥ ४६
एकमेव कदन्नं वा भोज्यान् वा ददते यदि ।
आददानः प्रमादेन प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ ४७
त्रिंशत् प्राणायामान् कृत्वा जपेत्त्रिकशतत्रयम् ।
अज्ञानादर्द्धमेवैतत् प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ ४८
अभ्यासादधिकं किञ्चिद्वर्द्धते दिनसंख्यया ।
॥ जामदग्नः ॥ कृकलासे क्षीरगले गण्डूषे गृहगोधिके ५०
कुक्कुटादिषु भूतेषु दशाहञ्चार्धभोजनम् ।
मार्ज्जारे मूषिके सर्पे स्थूलमत्स्येषु पक्षिषु ॥ ५१
नकुलादिषु भूतेषु चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ।
पिपीलिकायां सूक्ष्मायां प्राणायामा स्त्रय स्त्रयः ॥ ५२
यूकायां मत्कुणे चैव मशके पञ्च निर्द्दिशेत् ।
मूलाङ्कुरेषु पत्रेषु पुष्पेषु च फलेषु च ।
स्थावराणां चोपमर्द्दे प्राणायामा स्त्रय स्त्रयः ।
धान्यं वृक्षं लता यस्तु स्थावरं जङ्गमं तथा । ५४
उत्पाटयति मूढात्मा अचिरात् नरकं व्रजेत् ।
अकामादपि हिंसत पशून् मृगादिकान् यतिः ॥ ५५
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्व्वीत चान्द्रायणमथापिवा ॥ इति
हारीतः॥ अन्हारात्रौ च यान् जन्तून् हिनस्त्यज्ञानतोयतिः॥

प्राणायामान् दशाष्टौ वा प्रायश्चित्तं यतिश्चरेत् ।
चाक्षुषे दश कुर्व्वीत वाच्ये विंशतिमेव च ॥ ५७
मानसे त्रिंशतं वापि पातके प्राणसंयमान् ॥ इति
यमः ॥ दिवसे दिवसे चैव प्राणायामा स्तु षोड़श ५८
अपि भ्रूणहनं मासात् पुनात्यहरहः कृताः ॥
कणपिण्याकतक्रं वा शाकमूलफलादिकम् ॥ ५९
पक्कंवा प्यथ वा पक्कं पचन्नज्ञानतो यतिः ॥
आचरेत् त्रीणि कृच्छ्राणि प्रकृतान्येव शुद्धये ॥ ६०
अभ्यासाच्छुद्धिपूर्व्वं हि पाकदोषान्न मुच्यते ॥
अत्रिः ॥ श्वाव्यूष्ट्रै जेम्बुकै दृष्टे नेरवानरराासभैः ॥६१
क्रव्यादै र्द्रंष्ट्रिभिश्चान्यैः प्रायश्चित्तं यतिश्चरेत् ॥
स्नात्वा स्मृत्वा हरिं कुर्य्याद् द्वादशप्राणसंयमान् ।
स्वकार्य्येच समुत्पाद्य शोणितं वै यतिः क्वचित् ॥
प्राणायामत्रयं कृत्वा तथाचम्य बिशुध्यति । इति । ६५
अत्रिः ॥ आरूढपतितं दृष्ट्वा विना स्नानन्तु यश्चरेत् ।
पानभिक्षादिकं कर्म्म तदा चान्द्रायण ञ्चरेत् ॥ ६५
॥ देवलः ॥ स्वप्नस्कन्नैर्दुर्वलत्वात् प्राणायामांस्तु षोड़श
शेषं क्वचिद्भिक्षुःकुर्य्यात् मोहात्तु काममानसः ॥ ६७
प्राजापत्यत्रयं कृत्वा प्राणायामशतंचरेत् ।
स्वभावतो दिवास्कन्ने प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ६८
स्त्रियं दृष्ट्वा यदा स्वप्ने रेतः क्षरति बै क्वचित् ।
सवासाप्लुत्य शुद्ध्यर्थं कुर्य्यात्षोड़श संयमान् ।६८
उपवासं यतिः कुर्य्यात् पुनः सप्त क्षरेद्यदि ।

प्राणायामे विशुद्धात्मा विरजा जायते पुनः ॥ ७०
व्रणेतु क्रिमिसंभूतौ भक्षणे मधुमांसयोः ।
उपवासत्रयं कृत्वा प्राणायामशतं चरेत् ॥ ७१
यूकायाः क्षत संभूते उपवासं समाचरेत् ।
ताम्बूलभक्षणे ऽभ्यङ्गे कांस्यपात्रे च भोजने ॥ ७२
एकैकातिक्रमे तेषां प्राणायामशतं चरेत् ।
अदण्डो न गृहे गच्छेदिषुक्षेपत्रिकादृते ॥ ७३
यदि गच्छेत् प्रतिगृहं प्राणायामत्रयं चरेत् ।
हारीतः ॥ गुरुबचनातिक्रमे च धर्म्मातिक्रमेच पूर्णं चान्द्रायणं चरेत् वर्षाकाले विनाविघ्नं शरणं संत्यजेद् यदि । शुद्ध्यर्थन्तु तदा कुर्य्यात् कृच्छ्रञ्च शतसंयमान् ॥ प्रतिक्रोशं चरेत् कृच्छ्रं लोभमोहादिना त्यजन् इति ॥ सत्यकामः॥ दण्डग्रहणं कृत्वा पुत्रमित्रभ्रात्रादिभिः संभाषणं न कुर्य्यात् ॥ अज्ञानाद् भाषणं कृत्वा प्रायश्चित्तेन युज्यते ॥ उपवासमेकं कृत्वा प्राणायामशतं कुर्य्यात् ॥
तद्गृहं गच्छति स्वजने करोति भिक्षां गृह्णाति ॥
प्राजापत्य व्रतं कृत्वा प्राणायामशतं चरेत् ॥७८
शृण्वन् तेषां तु निधनं दृष्ट्वा दुःखं करोतितत् ।
अश्रूपातंयति यस्तु प्राजापत्येन युज्यते ॥७९
उपवासत्रयं कृत्वा प्राणायामशतं चरेत् ॥७९
अत्रिः॥ यदि कश्चित् प्रमादेन विना स्नानं समाचरेत् ॥
पानाशनादिकं कर्म्म प्राजापत्यं सदा चरेत् ॥ इति
॥सत्यकामः॥ सन्ध्यातिक्रमणे भिक्षुः प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥

जपेत् त्रिकसहस्रञ्च प्राणायामांश्च षोडश ॥८१
॥कपिलः॥ पूर्वसंभोगं न स्मरेत् प्रमादात् स्मरणादा-
स्य प्राणायामत्रयं कृत्वा पुनराचामेत् ॥८२
स्वप्नसंभोगे स्नात्वा त्रिकसहस्रं जपेत् ॥ अत्रिः ॥
तिलधान्यसुवर्णानि गोभूयानगृहादिकम् ।
दासी दासं रसं गन्धं याचितायाचितन्तु यत् ॥८४
हृदि शोकं पुरा कृत्वा तत् सर्व्वन्तु परित्यजेत् ।
संत्यज्य सर्व्वद्रव्यन्तु चरेच्चान्द्रायणं यतिः ॥८५
गृहिणान्तु यदा दद्याद् यतिस्तिलकुशादिकम् ।
प्रक्षिप्य तद्धनं भूमौ चरेत् कृच्छ्रं जपेत् त्रिकम् ॥इति॥
॥वायुपुराणे॥ सन्न्यासी योहि भूत्वातु हिरण्यं संग्रहेद्य-
तस्य दर्शनमात्रेण सचैलो जलमाविशेत् ॥८७
द्रव्यादानं यति र्यो वै करोति च नराधमः ।
पच्यते नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम् ॥८८
अद्वैतभावमाश्रित्यद्वैताचारेण वर्त्तते ।
रुदन्ति पितरस्तस्य हा कष्टं पतितं पुनः ॥८९
लब्धं द्रव्यं परित्यज्य उपवासत्रयं चरेत् ।
प्राणायामशतं कृत्वा त्वयुतं जपमाचरेत् ॥ ९०
सामर्थ्ये शिविकामश्वं गजं वृषभमेव च ।
शकटं वा रथं वापि समारुह्य च कामतः । ९१
व्रतं शान्तपनं कुर्य्यात् प्राणायामशतान्वितम् ।
असामर्थ्ये समारुह्य यानं पूर्व्वोदितं पुनः । ९२
कृच्छ्रैकं शोधनं तत्र प्राणायामस्त्वकामतः ।

स्वयं पक्त्वा तु यो भुंक्ते तस्य शान्तपनत्रयं ॥ ६३
पाचयित्वा तु यो भुंक्ते तस्य कृच्छ्रं विधीयते ।
पादुकापादशौचादि यस्मिन् पात्रे च निक्षिपेत् ॥ ६४
मासं निक्षिपेत् भूमौ दशक्षारेण शुध्यति ॥

॥ मार्कण्डेये पुराणे ॥

मूत्रोत्सारन्तु यः कृत्वा अकृत्वा शौचमात्मनः ।
मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रञ्च गव्यं पीत्वा विशुध्यति ॥ १
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति ।
॥ छागलेयः ॥ व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानिच ।
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् ॥ ३
माजून्नाना तथाध्यानान्नान्यद्भिक्षोस्तु शोधनं ।
समात्तानि सदा कुर्य्याद्यतिः शुद्ध्यर्थमात्मनः ॥ ४
पपातकिनो भिक्षो लघ्वाहारो जपस्तपः ।
मौनं कालत्रये स्नानं विहितानि विशेषतः ॥ ५
सहस्राणि यमान् कुर्य्यात् प्रणवस्यायुतं जपेत् ॥
अरण्यव्रतमेतत्तु कृत्वा भिक्षुर्विशुध्यति ॥ ६
महापातकजाद्दोषात् शुद्ध्यर्थन्तु सदा यतिः ॥
लक्षञ्च जपेद् योगी प्राणायामायुतं तथा ॥ ७
ततः शतसहस्रन्तु प्रणवानां जपेद् यतिः ।
संभोगे सकृन् मोहाद्विधिनानेन शुध्यति ॥ ८
स्मृत्यन्तरे ॥ अन्तः प्रक्षाल्य लिङ्गस्य यतिश्चान्द्रायणं चरेत्
रेतोत्सर्गं यदा कुर्य्यात् प्रायश्चित्ती भवेद् यतिः ॥ ६

प्राजापत्य त्रयं कुर्य्यात् प्राणायामशतानि च।
रेतः प्रस्रवणे दोषे दुष्टस्वप्नस्य दर्शने ॥ १०
अमेध्यभोजने चापि प्राणायामत्रयं स्मृतम्। इति
स्कान्दे कालिकाखण्डे दुर्व्वास·कापिलौ ॥
कण्डूयन त्वरणे उपवासः। चिन्तने त्रिरात्रं। मधुमांसा
दने च सकृत्। स्त्रीगमने द्वादशरात्रमुपवासः। त्रि
जपेदभ्यासे सकृदप्यन्त्यजागमने अरण्यं गत्वा विल्व
फलैः सनित्यै र्यति श्चान्द्रायणव्रती। ब्रह्मावर्तयन् या
जीवं वसेत् मृतः शुध्यति ॥ ११ इति।
आपस्तम्वः ॥ रजकश्चर्मकारश्च नटो वुरुड़ एव च।
कैवर्त्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते ह्यन्त्यजा स्मृताः ॥ १
॥ दत्तात्रेयः॥ उपेत्य तु स्त्रियं कामात् प्रायश्चित्तं विधीय
प्राणायामसमायुक्तं कृच्छ्रमव्दं समाचरेत् ॥ २
तथैव च पुनः स्नातः कुर्य्यात् शान्तपनं व्रतम्।
ततश्चरित निर्द्दशात् कृच्छ्रस्यान्ते समाहितः ॥ ३
पुनश्चाश्रमागत्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः।
पाराकं त्रिकलत्वश्च सकृद् गत्वा स्त्रियं चरेत् । ४
त्रिरात्रमभ्यसेद्भिक्षुःसम्वत्सरात्रिकं जपेत्।
गृहस्थश्च यतिश्चैव खण्डितौ यदि कामतः ॥ ५
पराकत्रयसंयुक्तमवकीर्णिव्रतं चरेत्।
स्कन्न इन्द्रियदौर्वल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि ॥ ६
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोड़श।
इच्छया यदि तां पश्येत् प्राणायामास्तु षोड़श ॥ ७

रात्रौ तु चरणे स्नात्वा द्वादशैव तु धारयेत् ।
स्वप्नसेके प्रबुद्धश्च मृद्भि द्वादशभि र्यतिः ॥ ८
शौचं कृत्वा विशुध्येत षोड़शप्राणसंयमैः ।
पुनः प्रसङ्गे सुप्तस्य द्विगुणन्तु विधीयते ॥ ९
रात्रिशेषे यदा स्वप्ने रेतो मूत्रञ्च वापयेत् ।
स्नानं कृत्वा विशुध्येत षोड़शप्राणसंयमैः ॥ १०
स्कन्ने ज्ञाने तु सुप्तश्चेदुपवास स्तदा भवेत् ।
आलिङ्गनादिषु स्कन्ने वियोगे चेन्द्रियै र्यदा ॥ ११
कृच्छ्रार्द्धेन जपेल्लक्षं ततः शुद्धिमियाद् यतिः ।
संशयश्चेत् कृते तस्मिन् पुनः शौचं समाचरेत् ॥
प्राणायामशतं कृत्वा तस्माद्भिक्षु र्विशुध्यति ।
॥ क्रतुः ॥ ताम्बूलभक्षणे भ्यङ्गे कांस्यपात्रेषु भोजने ।१३
एकैकातिक्रमे तेषां प्राणायामादश स्मृताः।
आखुश्व जम्बूके दृष्टे नररासभवानरैः ॥ १४
क्रव्यादै र्दंष्ट्रिभि श्चान्यैः प्रायश्चित्तं यति श्चरेत् ।
स्मरन् हरिं हरं गङ्गां कृत्वा स्नानं यथा विधिः ॥ १५
द्वादशैव विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान् समाचरेत् ।
॥ सत्यकामः ॥ स्त्रीशूद्रयो र्दण्डान्तरगमने प्राणायामान् त्रीन् करोति । श्वखरोष्ट्रान्तरगमने प्राणायामान् द्वादशैव श्वशुकरचाण्डालान्तरगमने प्राणायमान् द्वादश विहितातिक्रमं कृत्वा प्राणायमान् द्वादशैवेति ॥इति॥ १६
॥वायुपुराणे ॥ अदण्डो नैव तिष्ठेत यतिःकुत्रचिदात्मवान्
यदि तिष्ठेत् प्रतिदिनं प्राणायामशतं चरेत् ॥ १७

इवाडात्मनो स्तु चाण्डाले व्यवधानेन भिक्षुकः ।
प्राणायामशतं कुर्य्यात् मात्राभेदे स्तथैव च ॥ १८
शूद्रेण व्यवधानेन प्राणायामा स्तुषोड़श ।
द्वादशाष्टौ च चत्वारि विट्क्षत्रियद्विजोत्तमैः ॥ १९
जलान्तरेषु क्षिप्तेषु न कश्चिद्दोषभाग् भवेत् ।
यतीनाञ्च त्रयो दण्डा एकस्थाने न चक्षिपेत् ॥२०
कदाचित् स्थापितान् तेषां पुन र्मुद्राविधीयते ।
तानिति शेषः॥ भग्नदण्डादिकं चैव जलेगाधे क्षिपेद् यति
मद्यमूत्रपुरीषैश्च शुक्रकीलालशोणितैः ।
स्पृष्टं दण्डं त्यजेद्भिक्षुः शेषैः संस्कारमर्हति ॥ २२
प्रातः स्नानं विना कामात् प्रणायामशतं चरेत् ।
एवमेव तु सायान्हे मध्यान्हे तु सहस्रकम् ॥ २३
प्रेतश्राद्धे यतिर्भुक्त्वा चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ।
पितृस्थानं विनान्यत्र श्राद्धे भुक्त्वा तथैव तु ॥ २४
एकश्चेत् पैतृकेस्थाने द्वितीयोवैश्वदेवके ।
श्राद्धदिने विनाश्राद्धं भुक्त्वा शान्तपनं चरेत् ॥ २५
सन्न्यासं कुरुते यस्तु श्राद्धं तस्य विधीयते ।
तस्यान्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ २६
श्राद्धात् परेन्हि पुत्रस्तु आराधनमथाकरोत् ।
तदन्नं यतिभिर्ग्राह्यं नैव दोषो भवेत् क्वचित् ॥ इति
॥ क्रतुः ॥ पितृश्राद्धे मातृश्राद्धे ब्रह्मार्पणं विधीयते ।
तदन्नं यदिभुञ्जीत न दोषो मनुरब्रवीत् ॥ इति २८
॥ वायुपुराणे ॥ वहुभोज्ये यतिर्भुक्त्वा कुर्य्यादेतद्व्रतं पुन

वागूदण्डो हन्ति वैज्ञानं मनोदण्डः परांगतिम् ॥ २९
कर्म्मदण्ड स्तु त्रीन् लोकान् हन्यादपरिरक्षितः ।
वागूदण्डे मौनमातिष्ठेत् कर्म्मदण्डे त्वभोजनम् ॥ ३०
मानसे तु कृते दण्डे प्राणायामो विधीयते ॥ इति

एकस्मिन्निमित्ते गुरु लघु प्रायश्चित्त विधान न्तु विद्वद-विद्वत् सुबुद्धिपूर्व्वाबुद्धिपूर्व्वप्रसज्या प्रसज्यादि विभागतो द्रष्टव्यं तत्रापि मन्दमध्यमोत्तमाधिकारिभिरवशीकृत चित्तैः कृच्छ्रचान्द्रायण प्रणवजपप्राणायामादयः कार्य्याः वशीकृतचित्तै स्तु ध्यानमेवकार्य्यं । उक्तञ्च प्रायश्चित्तेषु सर्व्वेषु यते ध्यानं विशिष्यते ॥ इति ॥

प्रणवस्य जपो वाथ मूलमन्त्रश्च संस्मृतः ।
प्राधान्यं श्रूयते श्रुत्या प्रणवस्य जपादिषु ॥ १
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन प्रणवैकपरो भवेत् ।
जपाज् ज्ञानात्तथा ध्यानात् नान्यद्भिक्षोस्तु शोधनम् ॥ २
तस्मात्तानि सदा कुर्य्याद्यतिः शुद्ध्यर्थमात्मनः ।
सर्व्वपापप्रसक्तो हि ध्यायन्निमिषमच्युतम् ॥ ३
द्विजस्तपस्वी भवति पङ्क्तिपावन एव सः ।
ध्यानेन सदृशं नास्ति शोधनं पापकर्म्मणाम् । ४
श्वपाकेष्वपि भुञ्जानो ध्यायी नैव तु लिप्यते ।
कृष्णानुस्मरणादेव पापसंघातपुञ्जरम् ॥ ५
शतधाभेदमायाति गिरि र्वज्रहतो यथा ।
यथाग्निरुद्धतशिखः कक्षं दहति सानिलः ॥ ६
यथा चित्तस्थितो विष्णु र्नराणां सर्व्वकिल्विषम् ।

यथा विष्णोः स्मृतेः सद्यः संक्षयं याति पातकम् ॥ ७
तथास्यनाशमत्येति यद् दुःखं व्याधितो भवेत् ।
ज्ञानह्रदे ध्यानजले रागद्वेषमलापहे ॥ ८
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमांगतिम् ।
कलौ तत्रापि दोषाढ्यो विषयाकृष्टमानसः ॥ ९
कृत्वापि सकलं पापं गोविन्दं संस्मरन् शुचिः ।
शुचिरप्रयतो वापि सर्व्वावस्थां गतोऽपि वा ॥ १०
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं सवाह्याभ्यन्तरः शुचिः ।
कलिकल्मषमत्युग्रं नर कार्त्ति पदं नृणाम् ॥ ११
प्रयाति विलयं सद्यः सकाद्विष्णौ हि संस्मृते । इति
॥ अत्रिः ॥ उपपातक सर्व्वेषु पातकेषु महत्सु च ॥ १
प्रविश्य रजनी पादं ब्रह्मध्यानं समाचरेत् ।
ब्रह्महत्यासहस्राणि अगम्यागमनानि च । १३
एकेन ध्यानयोगेन नश्यन्त्यन्यान्यपि क्षणात् ॥
यदि स्यात् पातकं किञ्चिद् योगी कुर्य्यात् प्रमादतः। १४
योगमेव निषेवेत नान्यं यत्नं कदाचन ॥ इति ॥
विष्णु पुराणे॥प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्म्मात्मकानि वै
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ।
कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते । १६
प्रायश्चित्त न्तु तस्यैकं कृष्णस्य स्मरणं परम् ।
प्रातर्निशि तथासन्ध्या मध्यानादिषु संस्मरन् ॥ १७
नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयन्नरः ।

विष्णुस्मरणा संक्षीण समस्तक्लेश सञ्चयः ।१८
मुक्तिं प्रयाति स्वर्गाप्ति स्तस्य विष्णोऽनुमीयते ।
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्च्चनादिषु ॥१६
यस्यां तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ।
क्वनाकपृष्ठगमनं पुनारावृत्तिलक्षणाम् । २०
क्वजपो वासुदेवेति मुक्तिजीवमनुत्तमम् ।
तस्मादहर्निशं विष्णुं संस्मरन् पुरुषोत्तमः ॥ २१
न याति नरकं शुद्धः संक्षीणाखिलपातकः ।
यतिधर्म्मसमुच्चाये॥ अश्वमेधसहस्रैस्तु वाजपेयशतैरपि ।२२
यत् पापं बिलयं याति स्मृते नश्यति तद्धरौ ॥
गङ्गास्नानसहस्रैश्च पुष्करस्नानकोटिभिः ।२३
यत् पापं विलयं याति स्मृते नश्यति तद्धरौ ।
ब्रह्महत्यासहस्राणि अगम्यागमनानि च ॥ २४
एकेन ध्यानयोगेन नश्यन्त्येतान्यपिक्षणात् ।
गृहस्थोक्तानि पापानि भवन्त्याश्रमिणो यदि ॥ २५
शौचवच्छोधनं तेषां प्रागेव ब्रह्मदर्शनात् ।
ज्ञानिनां सेवनाच्छुद्धि र्ज्ञानस्येति नसंशयः । २६
भिद्यते शोकमोहादिः छिद्यन्ते सर्व्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्यकर्म्माणि ज्ञाते ब्रह्मणि तद्विदः ।२७
सर्व्वमन्यत् परित्यज्य यस्तु ब्रह्मणि वर्त्तते ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥२८
यद्बाल्ये यच्च कौमारे यत् पापं यौवने कृतम् ।
तत् पापमखिलं क्षिप्रं स्मृते विष्णोः प्रणश्यति इति ॥ २६

श्रीमद्भगवद्गीतासु॥अपिचेदसिपापेभ्यः सर्व्वेभ्यः पापकृत्तमः॥
सर्व्वज्ञान प्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥इति ॥ ३०
॥याज्ञवल्क्यः॥ भूतात्मन स्तपो विद्ये बुद्धे र्ज्ञानं विशोधनम्।
क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानात् विशुद्धिः परमामता ३१
स्कन्दपुराणे॥अभक्ष्य भक्षणात् पापमगम्यागमनाद्द्विजम्।
नश्यते नात्र सन्देहो गोविन्दस्य च कीर्त्तनात् ॥ ३२
गोविन्देत्युक्तिमात्रेण हेलया कलिवर्द्धनम् ।
पापौघं विलयं याति दानवःश्रोत्रिये यथा ॥ ३३
तन्नास्ति कर्म्मजं लोके वागूजं मानसमेव वा ।
यत्तु न क्षीयते पापं कलौ गोविन्दकीर्त्तनात् ॥३४
॥ वामनपुराणे॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञै र्नरमेधै स्तथैवच।
याजितं तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम् । ३५
॥ विष्णुपुराणे॥ अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्त्तिते सर्व्वपातकैः।
पुमांस्तुमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तै र्मृगैरिव ॥ ३६
यन्नामकीर्त्तनं भक्त्या विलापनमनुत्तमम् ।
मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः ॥३७
कमलनयनवासुदेव विष्णो धरणिधरा च्युत शंखचक्रगदापाणे
भवशरणमितीरयन्ति ये वै त्यज भटदूरतरेण तान् पापात्॥
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञै स्त्रेतायां द्वापरेऽर्च्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥ ३८
यस्मिन् न्यस्तमति र्नायाति नरकं स्वर्गोऽपियच्चिन्तने।
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसां ब्राह्मो पि लोकोऽल्पकः॥

मुक्ति श्चेतसि संस्थितो मलधियां पुंसांददात्यच्युतः ।
किञ्चित्रं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्त्तिते ॥ ४०
एवं स्तुवन् नरो राजन् सदानारायणंविभुम् ।
यमलोकं न पश्येत्तु नरकांस्तु कुतः पुनः ॥४१
शृण्वन्नपि स्तुवन्नित्यं स्मरन्नपि युधिष्ठिर ।
महापातकजान्मर्त्यो मुच्यते सर्व्वकिल्विषात् ॥४२
कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत् ॥४३
येऽहर्निशं जगद्धातुर्वासुदेवस्य कीर्त्तनम् ।
कुर्व्वन्ति तान् नरव्याघ्र न कलिर्बाधते नरान् ॥४४
चक्रायुधस्य नामानि सदासर्व्वत्र कीर्त्तयेत् ॥
नाशौचं कीर्त्तने तस्य स पवित्रं करोति यत् ॥४५
सर्व्वेषामेव पापानां संघाते समुपस्थिते ।
अभ्यसेद्दशसाहस्रं प्रणवं शोधनं तु तत् ।
दिने दिने तु वेदान्तश्रवणाद्भक्तिसंयुतात् ॥४६
गुरुशुश्रूषया लब्धात् कृच्छ्राशीतिफलंलभेत् ।
वेदान्तश्रवणादेव नश्यन्ते चोपपातकाः । ४७
महापातकसंघाश्च नित्यं वेदान्तसेवनात् ।
एषमे सर्व्वधर्म्माणां धर्म्मो धिकतमो मतः ॥४८

॥ महाभारते भीष्म वचनं ॥

यद्भक्त्यापुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्च्चेन्नरः सदा ।
अनादिनिधनं विष्णुं सर्व्वलोकमहेश्वरं ॥४९
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्व्वदुःखातिगो भवेत् ।

॥ मनुः॥ जपेनैव तुसंसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः ॥५०
कुर्य्यादन्यन्न वा कुर्य्यान् मैत्र ब्राह्मण उच्यते ।
जपस्तु सर्व्वधर्म्मेभ्यः परमो धर्म्म उच्यते ॥५१
अहिंसया च भूतानां जपयज्ञः प्रवर्त्तते ।
शमायालञ्जलं वन्हे स्तमसो भास्करोदयः ॥ ५२
शान्तिः कले रघौघस्य नामसंकीर्त्तनं हरेः ।
स्तुत्वा विष्णुं वासुदेवं विपापो जायते नरः ॥५३
विष्णुसंपूजनान्नित्यं सर्व्वपापं प्रणश्यति ॥
वेदस्मृतिपुराणेभ्यो वाक्यान्येतानि यत्नतः॥ ५४
विश्वेश्वरेण मुनिना संगृहीतानि भागशः ।
यतिधर्म्मप्रकाशाय ज्ञानमोक्षप्रसिद्धये ॥
एकत्र परहंसानां मुमुक्षूणां विशेषतः ॥इति ५५
इति श्री परम हंस परि व्राजक विश्वेश्वरेणोक्तं ॥
॥वहृच परिशिष्टे॥पतत्यसौ ध्रुवंभिक्षु र्यस्य भिक्षो र्द्वयंभवेत्
धीपूर्व्वं रेत उत्सर्गो द्रव्यसंग्रह एव च ॥ इति
॥ माधवीये ॥ यस्तु प्रव्रजितोभूत्वा पुनःसेवेत मैथुनं ।
षष्टिवर्षसहस्राणिविष्ठायां जायते कृमिः ॥ २
शून्यागारेषु इत्यादि विश्वेश्वरपद्धतौ पूर्व्वोक्तं चण्डालगर्भे
संभूतो जायते नात्र संशय इति शेषः ।
तत्रपुनः शब्दः पादपूर्णार्थतया पूर्व्वाश्रमापेक्षया वा बोध्यः
तेन सकृन्मैथुनेऽपि दोषवचनमिति केचित् । वस्तुतस्तुपुनः
शब्दो वहुतराभ्यासपरः। वाक्यशेषे वहुतर यातना वहुतरदुःख
जन्मपरंपरायाश्च कीर्त्तनादिति विभावनीयं ॥

॥ अथ प्रायश्चित्तानि अत्रात्रिः॥ उपपापेषु सर्व्वेषु पातकेषु महत्सुच । प्रविश्यरजनीपादं ब्रह्मध्यानं समाचरेत् ॥५
ब्रह्महत्यासहस्राणि अगम्यागमनानिच ।
एकेनध्यानयोगेन नश्यन्त्यन्यान्यपि क्षणादिति ॥६
अस्यार्थः ॥ रजनीपादं रात्रेश्चतुर्थप्रहरं ब्रह्मध्यानं स्थूलदेहमारभ्याऽविद्यान्तानां यः साक्षी वासुदेवः सोऽहमित्यभेदेन सर्व्वसाक्षिणा् वासुदेव तवाहमिति कल्पित भेदेन वा ब्रह्मचिन्तनं तथाच गीता । एकत्वेन पृथक्त्वेन इति ॥
पुराणान्तरेऽपि । सर्व्वेषामेव पापानां संघाते समुपस्थिते॥
अभ्यसेद्दशसाहस्रं प्रणवं शक्तितोभ्यसेत् ॥७
प्रत्यहमिति शेषः ॥ विष्णु पुराणे ॥
प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपः कर्म्मात्मिकानिच ।
यानितेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परमिति ॥८
॥यतिधर्म्म समुच्चये ॥ गृहस्थोक्तानि पापानि भवन्त्याश्रमिणोयदि। शौचवच्छोधनं तेषांप्राक्ब्रह्मणि निदर्शनादिति ॥ ६ ॥ गृहस्थं प्रतिहेयत्वेनोक्तानि मद्यपानादीनि ॥ आश्रमिणः ब्रह्म चार्य्यादेःशौचवत् गृहस्थापेक्षयाब्रह्मचारिणो द्विगुणं । वनस्थस्य त्रिगुणं । शोधनं प्रायश्चित्तं प्राग् ब्रह्मणीतिसर्व्वमिदंप्रायश्चित्तं ब्रह्मसाक्षात्कारात् प्राग् एव तस्य सकल पापक्षय कारकत्वात्तदुक्तं ज्ञानाग्निः सर्व्वकर्म्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥ इति ॥
॥ बौधायनः ॥ अथेमानि व्रतानि अहिंसा सत्य वचनमस्तैन्यं मैथुनस्यच वर्ज्जन मथोप व्रतानि अक्रोधोगुरुशुश्रूषा

अप्रमादः शौचमाहारशुद्धि रिति शुद्ध्यर्थम् ।
ब्रह्मपुराणे ॥ उपेत्यतु स्त्रियं कामात् प्रायश्चित्तं विधीयते ।
प्राणायामशतं कुर्य्यात् कुर्य्यात् सान्तपनन्तथा ॥२०
उपेत्यतु स्त्रियं कामादिति रिरंसया स्त्रीसमीपमुपसृत्ये त्यर्थः । तथाहोरात्रोषितश्च प्राणायामशतन्तथा ॥ असद्वादेच कर्त्तव्यं विधीयते ॥ त्रिरात्रमुपवासश्च प्राणायाम शतं तथा ॥ स्त्रियं विनैव कामतः स्कन्नस्य त्रिरात्रं । प्राणायामशताचरणञ्च तथा रात्रौ स्कन्नः शुचिः स्नातो द्वादशैव तु धारणात् प्राणायामेण शुद्धात्मा विरजा जायते द्विजः२१
एकान्नं मधुमांसाद्या आमश्राद्धन्तथैवच ।
अभोज्यानि यतीनान्तु प्रत्यक्षलवणानि च ॥२२
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ।
प्राजापत्येन कृच्छ्रेण ततः पापात् प्रमुच्यते ॥ २३ इति विश्वामित्रः । योगिनो योग एवेति प्रमादे शुद्धिरिष्यते ।
ज्ञानिनो ज्ञानमेवेति शुद्ध्यभ्युदयसाधनम् २४ इति शुद्धिः पापक्षयः अभ्युदयः स्वर्गादिः ॥ मनुः ॥
स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ।
स्नात्वार्कमर्च्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥ २५॥ इति बह्वृच परिशिष्टे ॥ श्वानन्तु मुद्रितं स्पृष्ट्वा त्रिरात्रेण शुचिर्भवेत्॥२६
ग्रामद्वय भिक्षाहरणे तप्तकृच्छ्रं चान्द्रायणम्
उद्धृत्य वामहस्तेन भोजनं यो ऽन्नमत्तिवै ॥ २८
घोच्छिष्टं तु तज्ज्ञेयं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।
षिद्वान्नं यदश्नीयादनुज्ञा यत्र नास्ति हि । २९

अतिकृच्छ्रं तदा भिक्षुः कुर्य्याच्छुद्ध्यर्थमात्मनः ॥
सामर्थ्ये शिविकामश्वं गजं वृषभमेव च ॥ ३०
शकटं वा रथञ्चापि समारुह्य च कामतः ॥
व्रतं सान्तपनं कुर्य्यात् प्राणायामशतान्वितः । ३१
असामर्थ्ये समारूह्य यानं पूर्व्वोदितं पुनः ॥
कृच्छ्रैकं शोधनं तत्र प्राणायामस्त्वकामतः ।३२
अज्ञानादर्द्धमेवैतत् प्रायश्चित्तं विधीयते ॥
चाक्षुषे दश कुर्व्वीत वाच्ये विंशतिमेवच । ३३
मानसे त्रिंशतं वापि पातके प्राणसंयमात् ॥ इति ।
सूतसंहितायां । द्विजस्त्रीगमने भिक्षुरवकीर्णिव्रतं चरेत् ।३४
अन्यासु बुद्धिपूर्व्वञ्चे त्तप्तकृच्छ्रसमाचरेत् ।
हत्वा वैश्यञ्च राजानं ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥ ३५ इति
कृच्छ्रादि लक्षण मुक्तं गृह्याग्निसागरेग्रन्थे ॥
विज्ञाने श्वरोऽतिकृच्छ्रलक्षणमाह । याज्ञवल्क्योऽपि ।
एवं शुलपाणिग्रन्थेऽपि अथ प्राजापत्यादि व्रतरुपं पूर्व्वोक्तं
अयमेवाति कृच्छ्रः स्यात् पाणिपूर्णान्नभोजनः ।
आद्ये त्र्यहं त्रयेपाणिपूरणमात्रान्नं भुञ्जीत ॥ १
नवसु दिवसेष्वयमेव प्राजापत्यातिकृच्छ्रसंज्ञो भवति ।
तथाचमनुः॥एकैकग्रास मश्नीयात् त्र्यहाणि त्रीणि पूर्व्ववत् ।

॥ अथ पराकव्रतमाह । याज्ञ वल्क्यः ॥

द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्त्तितः ।
एतदाचरणाशक्तौ प्रत्याम्नायो निरुप्यते ॥२ इति ॥
तदुक्तं कारिकायां॥ प्राजापत्ये गामेकामतिकृच्छ्रे तथाद्वयं ।

पराके गोत्रयं देयंत्रयं चान्द्रायणे तथा ॥३
मासं पयोव्रतेत्यर्द्ध द्वयं देयं द्विजातये ।
धेनोरभावे दातव्यं तुल्यं मूल्यं न संशयः ॥४
तदभावेतु निष्कः स्यात् तदर्द्ध पाद एववा ।
विप्रा द्वादश वा भोज्या गायत्र्या वायुतं जपेत् ॥५
तिलहोमसहस्रं वा प्राजापत्यइदं स्मृतम् ।
तस्योपवासाषड्भ्योज्या उपवासात्मके विधौ ॥६
पञ्चगुञ्जात्मको माषस्ते सुवर्णास्तु षोडश ॥
निष्कः सुवर्णाश्चित्वारः पञ्चचापि प्रकीर्त्तिताः ॥७
एवं स्यात् सर्व्वकृच्छ्रेषु प्रत्याम्नाया स्तथा तथा ॥
रुद्रैकादशनीं कृच्छ्रं द्वादशांशे निवर्त्तनात् ॥८
दश हस्तेन दराडेन त्रिंशद्दराडानिवर्त्तनम् ।
तस्य द्वादशांशात् भूमिदानेन कृच्छ्र इत्यर्थः ॥ इति ९
रुद्रैकादशनीत्यादिकं काश्यामेव कस्मिन्नपि स्मृत्यर्थसा
पुस्तके दृष्टं स्थितं पुस्तकान्तरेषु न दृश्यते तत्त्वंतु ईश्वरो वे
योजनं सिन्धुतीरेच घृतहोमशतद्वयं । उदकवासोवा।शु
केशस्य द्वादशस्नानमित्यर्थः। एतएव पञ्चतीर्थयात्रायांप्राजा
पत्य द्वयं शिष्टामन्यन्ते । संहितापारायणं वा । प्राणायाम
शत द्वयं वा। शक्त्या कुर्य्यात्। धेनु द्विज भोजनादि शक्त्य
पेक्षयाद्वित्रि चतुः पञ्चषट् गुणं वर्द्धयेत् । उपवास स्था
एक विप्र भोजनं ॥ तावद्धन धान्यं वस्त्रादिदानं वा। शक्त्य
द्विगुणादि वृद्धिश्च गायत्र्याः सहस्र जपो वा। द्वादश प्राण
यामान् वा शक्त्या कुर्य्यात् । मासोपवासस्थाने पञ्चदश

प्राजापत्याः चान्द्रायणोऽष्टौ । अति कृच्छ्रेत्रय । इदं सर्व्वं प्रायश्चित्तं स्मृत्यर्थ सारेणोक्तं ॥ इति कृच्छ्रादि लक्षणं । अन्यच्च ॥ नक्तं हविष्यान्न मनोदनं वा फलं तिलाः क्षीर-मथाम्बुचाज्यं॥यत् पञ्चगव्यं यदि चापि वायुःप्रशस्तमत्रोत्तर-मुत्तरञ्च॥मन्दमध्यमोत्तमाधिकारिभि रवशीकृत चित्तैःकृच्छ्र-चान्द्रायण प्रणवजप प्राणायामादयः कार्य्याः वशीकृत-चित्तैस्तु ध्यानमेव कार्य्यं प्रायश्चितेषु सर्व्वेषु यते ध्यानं विशिष्यते॥ जपस्तु सर्व्व धर्म्मेभ्यः परमोधर्म्म उच्यते ॥ ४ अहिंसयाच भूतानां जप यज्ञः प्रवर्त्तते आत्माविस्मरणं ध्यानं योगो ब्रह्मैक्य भावना ॥५

स्वरुपावस्थितिर्म्मुक्तिर्ज्ञानं ब्रह्मात्मनिश्चयः ॥

यति धर्म्म संग्रहे प्रायश्चित्त प्रकरण मुक्तं ।

प्रायश्चित्त विवेकः शूलपाणिनोक्तः स्मर्य्यते ॥

अकामत स्तप्त कृच्छ्रं तत्र धेनु चतुष्टयम् ॥इति ॥

चान्द्रायणे धेन्वष्टकः । सान्तपने धेनुद्वयं ॥ इति ॥

न तु तप्त कृच्छ्रादिकं गुरुलघु वा ग्राह्यम्॥अतोऽत्रधेनुरेका देया । प्रव्रजितगणोद्‌घुष्टान्नभोजनेचान्द्रायणव्रतं कर्तव्यम्। पतिताद्यन्न भक्षणे प्रायश्चित्त विशेषः तत्र वृहस्पतिः। पति-तानां गृहे गत्वा भुक्त्वाच प्रतिगृह्यच । मासोप वासं कुर्व्वीत चान्द्रायण मथापिवा चान्द्रायणमिद मज्ञानाभ्यासे ज्ञाना-भ्यासे मासोपवासः। एतेन ज्ञानतः सकृद्भोजने चान्द्रायण-मेवावतिष्ठते ॥ एतदपि ज्ञानाभ्यास बिषय कृच्छ्राब्द पदे सार्द्धस्तप्त धेनवः ॥ अति कृच्छ्रेधेनु त्रयम् । तप्त कृच्छ्रे

पादोन धेनु चतुष्टयं ॥ इति ॥ पातित्यञ्च स्मर्य्यते।
मेधातिथिः ॥ आसनं पात्रलोभश्च सञ्चयः शिष्यसंग्रहः।
दिवास्वापो वृथालापो यते र्वन्धकराणि षट् ॥ ७ ॥
एकाहात् परतो ग्रामे पञ्चाहात् परतःपुरे।
वर्षाभ्यो ऽन्यत्रयत् स्थानमासनं तदुदाहृतं ॥ ८ ॥
उक्ता लव्धादि पात्राणा मेकस्यापि च संग्रहः।
भिक्षो र्भैक्ष्यभुजश्चापि पात्रलोभः स उच्यते ॥ ९ ॥
गृहीतस्य तु दण्डादे र्द्वितीयस्य परिग्रहः।
कालान्तरोपभोगार्थं सञ्चयः परिकीर्त्तितः ॥ १० ॥
शुश्रूषालाभपूजार्थं यशोऽर्थं वा परिग्रहः।
शिष्याणामनुकारुण्यात् स ज्ञेयः शिष्यसंग्रहः ॥ ११ ॥
विद्यादिनं प्रकाशत्वादविद्या रात्रि रुच्यते।
विद्याभ्यासे प्रमादीयः स दिवास्वाप उच्यते ॥ १२ ॥
आध्यात्मिकीं कथां मुक्त्वा भैक्षचर्य्यां सुरस्तुतिम्।
अनुग्रहात् पथिप्रश्नो वृथालापः स उच्यते ॥ १३ ॥
स्थावरं जंगमं वीजं तैजसं विषमायुधं।
षड़ेतानि न गृह्णीयाद्यति र्मूत्रपुरीषवत् ॥ १४ ॥
रसायनं क्रियावादं ज्योतिषं क्रयविक्रयं।
विविधानि च शिल्पानि वर्ज्जयेत् परदारवत्। इति १५
ब्रह्मनास्तीति यो ब्रूयाद्द्वेष्टि ब्रह्मविदञ्च यः।
अभूतब्रह्मवादी च त्रयस्ते ब्रह्मघातकाः ॥ १६ ॥
ब्रह्महा तु स विज्ञेयः सर्व्वधर्म्मवहिष्कृतः।
॥ सर्व्वपापरूपत्वं स्मर्य्यते ॥

योऽन्यथासन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ।
किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा ॥१
असूर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः ।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥२
ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ।
नैवास्ति किंचित् कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित् ॥इति ॥३
अथ यतीनां प्रायश्चित्तविधिः पद्मपुराणे ।
व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च ॥४
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ।
उपेत्यच स्त्रियं कामात् प्रायश्चित्तं समाहितः ॥५
प्राणायामसमायुक्तं कुर्य्यात् सान्तपनं शुचिः ।
ततश्चरेत नियमी कृच्छ्रं संयतमानसः ॥६
पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥
न धर्म्मयुक्तमनृतं हिनस्तीति मनीषिणः ॥७
तथापि न च कर्त्तव्यं प्रसङ्गो ह्येषदारुणः ॥
एकरात्रोपवासश्च प्राणायामशतं तथा ॥८
उक्त्वानृतं प्रकर्त्तव्यं यतिना धर्म्मलिप्सुना ॥
परमापद्गतेनापि न कार्य्यं स्तेयमन्यतः ॥९
स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म्म इति स्मृतः ॥
हिंसाचैवापरातृष्णा याचात्मज्ञाननाशिका ।१०
तदेतद्द्रविणं नाम प्राणाह्येते वहिश्चराः ॥
स तस्य हरते प्राणान् यो यस्य हरते धनम् ॥११
एवं कृत्वा सुदुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताच्च्युतः ।

भूयो निर्व्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ।१२

अकस्मादेवहिंसां तु यदि भिक्षुः समाचरेत् ।

कुर्य्यात् कृच्छ्रातिकृच्छ्रन्तु चान्द्रायणमथापिवा ॥ १३

स्कन्देनन्द्रियदौर्व्वल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि ॥

तेन धारयितव्यावै प्राणायामास्तु षोड़श ।१४

दिवास्कन्दे त्रिरात्रं स्यात् प्राणायामशतं बुधाः ॥

एकान्ने मधुमांसे च नव श्राद्धे तथैव च ॥१५

प्रत्यक्षलवणे चोक्तं प्राजापत्यं विशोधनम् ॥

ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यते सर्व्वपातकम् ॥१६

तस्मान्महेश्वरं ध्यात्वा तस्य ध्यानपरो भवेत् ॥

इति पद्मपुराणोऽक्तंपद्मपुराणेऽपि यल्लिखितं कूर्म्मपुराणे

तद्द्रष्टव्यमिति । एतत् कृत्वा सुदुष्टात्माभिन्न वृत्तोव्रताहत

भूयो निर्व्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥

कर्त्तव्यं यतिना धर्म्मलिप्सुना वरमव्ययम् ॥ १८

विधानं शास्त्रदृष्टेन संवत्सरमिति श्रुतिः ।

भूयो निर्व्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥ इति ॥ १९

॥ प्रायश्चित्त विधिः संवर्त्त संहितायां ॥

सन्न्यस्य दुर्म्मतिः काश्चिदपत्यार्थी स्त्रियं ब्रजेत् ॥ २०

स कुर्य्यात् कृच्छ्रमश्रान्तः षण्मासं तदनन्तरम् ।

अन्न पर्य्युषितं भुक्त्वा केशकीटैरुपद्रुतम् ॥२१

पतितैः प्रेक्षितं वापि पञ्चगव्यं पिवेद्द्विजः ।

शूद्रहस्तेन योऽश्नीयात् पानीयं वा पिवेत् क्वचित् ॥ २२

अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ।

शुष्कपर्य्युषितोच्छिष्टं भूक्त्वान्नं केशदूषितम् ॥२३
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ।
शूद्राणां भाजने भूक्त्वा भूक्त्वा वा भिन्नभाजने ॥२४
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥
दिवास्वापिति यः स्वस्थो वृह्मचारी कथञ्चन ॥२५
स्नात्वा सूर्य्यं समभ्यर्च्च्य गायत्र्यष्टशतं जपेत् ।
मानसं वाचिकं पापं कायेनैव तु यत् कृतम् ॥२६
तत् सर्व्वं नश्यते तूर्णं प्राणायामत्रये कृते ।
ऋग्वेदमभ्यसेद् यस्तु यजुःशाखामथापि वा ॥२७
सामानि सरहस्यानि सर्व्व पापैः प्रमुच्यते ।
पावमानीं तथा कृत्स्नं पौरुषं सूक्तमेव च ॥२८
जप्त्वा पापैः प्रमुच्येत पित्र्यञ्च मधुछन्दसम् ।
मण्डलं ब्राह्मणं रुद्रसूक्तोक्ताश्च वृहत्कथाः ॥ २९
वामदेव्यं वृहत्साम जप्त्वा पापैः प्रमुच्यते ।
चान्द्रायणन्तु सर्व्वेषां पापानां पावनं परम् ॥३०
कृत्वा शुद्धिमवाप्नोति परमं स्थानमेव च । इति

लिङ्गपुराणे सूत उवाच ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि यतीनामिहनिश्चितम् ॥ ३१
प्रायश्चित्तं शिवप्रोक्तं यतीनां पापशोधनम् ।
पापं हि त्रिविधं ज्ञेयं वाङ्मनः कायसम्भवम् ॥ ३२
सततं हि दिवा रात्रौ येनेदं वेष्टितं जगत् ।
तत्कर्म्मणा विनाप्येष तिष्ठतीति पराश्रुतिः ॥ ३३
क्षणमेवं प्रयोज्यन्तु आयुष्यन्तु विधारणम् ।

भवेद् योगोऽप्रमत्तस्य योगो हि परमं बलम् ॥ ३४
न हि योगात् परं किञ्चिन्नराणां दृश्यते शुभम् ।
तस्माद् योगं प्रशंसन्ति धर्म्मयुक्ता मनीषिणः ॥ ३५
अविद्यां विद्ययाजित्वा प्राप्यैश्वर्य्यमनुत्तमम् ।
दृष्ट्वा परावरं धीराः परं गच्छन्ति तत्पदम् ॥ ३६
व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च ।
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ इति ३७
इति लिङ्गपुराणे पि प्रायश्चित्तं यदुक्तं तद्वायुपुराणेऽष्टादश
ऽध्यायेऽपि द्रष्टव्यं ॥ प्रायश्चित्तं समाप्तं ।

॥ अथ यतिपूजामाहात्म्यं । विश्वेश्वरपद्धतौ । यतिधर्म
समुच्चये गृहस्थादिभि र्यतिः पूज्यइत्युक्तं भगवता ॥
एकदण्डी त्रिदण्डी वा शिखी मुण्डी तथैवच ।
काषायमात्रधरोपि यतिः पूज्यो युधिष्ठिरेति ॥१
अत्रिः ॥ चतुर्विधो भिक्षुकः स्यात् कुटीचकबहूदकौ ।
हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात् स उत्तमः ॥२
ब्रह्मचारी सहस्रञ्च वानप्रस्थशतानि च ।
ब्राह्मणानान्तु कोट्यास्तु यतिरेको विशिष्यते ॥३ अत्रिः॥
साक्षाद्विष्ण्वाकृतिर्विप्रो नमस्योऽयं सुरासुरैः ॥
वर्णाश्रमैः समस्तैश्च परं हंसो द्विजोत्तमः ॥४
द्वे रूपे वासुदेवस्य चलञ्चाचलमेव च ।
चलं सन्न्यासिनो रूपमचलं प्रतिमादिकम् ॥५
देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं दृष्ट्वैकदाण्डिनं ।
नमस्कारमकुर्व्वाणो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥६

विष्णुलिङ्गाश्रितं विप्रं दृष्ट्वा चैव नराधमाः ।
स्थिताः शय्यासने याने नत्यजन्ति विमोहिताः ॥७
अभ्युत्थानं नमस्कारं प्रसन्नवदनादिकम् ।
कर्म्मणामनसावाचा ये न कुर्व्वन्ति सत्क्रियाम् ॥८
सदाचारपरिभ्रष्टास्ते पापा यान्त्यधोगतिम् ॥इति ।
हारीतः ॥ सर्व्वेषामाश्रमाणान्तु सन्न्यासी ह्युत्तमाश्रमीह
स एवात्र नमस्यः स्याद्भक्त्या सन्मार्गवर्त्तिभिः ॥
ब्रह्मिष्ठः परमोहंसो साक्षान्नारायणः स्मृतः ॥१०
यस्तु तं पूजयेन्नित्यं विष्णुस्तेन प्रपूजितः ।
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण यतयस्तु नमस्कृताः ॥११
स्मृतिर्नारायणीहन्ति प्राणिनां पापसञ्चयम् ।
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण नमो नारायणात्मना ॥१२
नमस्योभाक्तिभावेन विष्णुरूपी यतिर्यतः ।
॥वृद्धयाज्ञवल्क्यः॥उपचर्य्यःसदाभिक्षुराश्रमस्थै र्विचक्षणैः१३
व्रतलोपो यथा चास्य न भवेद्वै यथा तथा ॥
जावालः॥आसनं शयनं यानं यतिं दृष्ट्वा न यस्त्यजेत्॥१४
समृतोऽपिहि दुष्टात्मा श्वयोनावेव जायते ॥
दुर्वृत्ते वा सुवृत्ते वा यतौ निन्दां न कारयेत् ॥१५
यतिं दूषयमाणस्तु नरकं याति दारुणम् ॥
यतिर्हस्तगतं द्रव्यं गृह्णीयाज्ज्ञानतो यदि ॥१६
अधःस नीयते मूढोकुलानामेकविंशति ।
यतिभ्यः श्रद्धया दद्याद्भिक्षां पात्रप्रपूरणीम् ॥१७
न क्षीयते च तत्तस्य कल्पकोटिशतैरपि ।

भिक्षाकाले यतिर्यस्य गृहं प्राप्तो यदा भवेत् ॥१८
देयाः सर्व्वे रसास्तस्मै आत्मनः शुभमिच्छता ।
पुरयित्वा हविष्येण यतये यः प्रयच्छति ॥१९
पात्रं स उद्धरेत् पूर्व्वानपिये नरकाश्रिताः ।
यावन्ति यतिपात्राणि यावच्चान्नं प्रयच्छति ॥२०
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गे लोके महीयते ॥
पूजयित्वा यतिं भक्त्या निर्व्विकल्पो भवेन्नरः ॥२१
ततो भिक्षां प्रयच्छेद्भूयः स्वात्मनः शुभहेतुना । इति
क्रतुः॥ न क्रियागोत्रमाचारं शौचाशौचं शुभाशुभम् ॥२२
पृच्छेन्माधुकरायाते कुलं शीलं श्रुतं यतेः ॥
स्पृष्ट्वा यति यों यच्छेद्वा नरकानेव केवलान् ॥२३
पश्येत् स ज्ञातिभिः साकमन्यथा स्वर्गगो भवेत् ॥
आश्रमेषु यतिर्यस्य मुहूर्त्तमपि विश्रमेत् ॥२४
किं तस्यान्येन धर्म्मेण कृतकृत्योहि सः स्मृतः ।
जन्मप्रभृति यत्पापं गृहस्थेन तु सूचितम् ॥२५
तत्सर्व्वं नाशयत्याशु एकरात्रोषितो यतिः ।
यति योगी ब्रह्मचारी शतायुः सत्यवाक् सती ॥२६
सत्रीवदान्यःशूरश्च स्मृताः शुद्धाश्चते सदा ॥
क्रतुः॥ व्याधितानान्तु भिक्षूणां कुर्य्याद्दारामभण्डपम्॥
पथ्याद्यैः परिचर्य्याञ्च भेषजै र्यदुपाचरेत् ॥
किं तस्यान्येनधर्म्मेण स्वर्गे सोऽमृतपो भवेत् ॥२८
याजिशतं यथानैव तेषामत्र प्ररोचनम् ।
यतिरूपोहि यो विष्णु भक्त्या येन प्रपूजितः ॥ २९

यतिप्राप्यं प्राप्यलोकं सोऽनन्तं सुखमश्नुते ।
अदुष्टापतितं विप्रं यतिर्यः परिवर्ज्जयेत् ॥३०
स तस्य सुकृतं दत्वा दुष्कृतं प्रतिपद्यते ।
तथैवच गृहस्थस्य निराशो भिक्षुको व्रजेत् ॥३१
इष्टदत्तं तपोधीतं सर्व्वमादाय गच्छति ।
सञ्चितं यद्गृहस्थस्य पापमामरणान्तकम् ॥३२
निर्द्दहिष्यति तत् सर्व्वमेकरात्रोषितो यतिः ॥
यतिर्यस्य गृहे भुंक्ते तस्य भुंक्ते स्वयं हरिः ॥३३
हरिर्यस्य गृहे भुंक्ते तस्य भुंक्ते जगत्त्रयम् ।
वटौतु शतदत्तं स्याद्गृहस्थे द्विगुणं स्मृतम् ॥३४
वानप्रस्थे शतगुणं यतौ दत्तमनन्तकम् ।
कुर्य्याद्वावसथं यस्तु दद्याद्वा यतयेऽपिवा ॥३५
ज्ञानिने तु विशेषेण स याति ब्रह्मणः पदम् ।
यतिहस्ते जलं दद्याद्भिक्षां दद्यात् पुनर्ज्जलम् ॥३६
तद्भैक्ष्यं मेरुणातुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ।
विष्णुः॥ चातुर्मास्यं यतीनान्तु यः कारयति धर्म्मवित् ॥३७
स यात्यैहिकमैश्वर्य्यमामुष्मिकसुखं महत् ॥
भिक्षादाने सदाभिक्षोः सलिलं दक्षिणे करे ॥३८
दत्वा भिक्षां प्रयच्छेत्तु पात्रे सव्यकरे स्थिते ॥ इति
॥अत्रिः॥ भिक्षां सत्कृत्य यो दद्यात् विष्णुरूपाय भिक्षवे३९
कृत्स्नां वा पृथिवीं दद्यात्तेन तुल्यं न तत्फलं ॥
हारीतः ॥ सर्व्वेषामपराधानां यतिनिन्दागरीयसी ॥४०
यतिर्नारायणः साक्षात्तस्मात्तां परिवर्ज्जयेत् ॥

वौधायनः ॥ यतिमागतं स्वागतमित्युक्त्वाभ्युत्थायासनं ॥
पादशौचमभ्यञ्जनञ्च दत्वा कुशलमभिभाष्योपासीत काले
त्वन्नं भैक्ष्यमुपहरेत् स तस्योपचार इति ब्रह्माण्डपुराणे ॥
कालेवा यदि वाकाले श्राद्धं कुर्य्यादतन्द्रितः ॥
पितॄणां तृप्तिकामस्तु यतीन् प्रार्थ्य द्विजोत्तमः ॥४२
अपचन्तं परित्यज्यपचन्तं यस्तु भोजयेत् ॥
आसुरन्तद्भवेत् श्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठति ॥४३
॥दक्षः॥विना मांसेन मधुना विना दक्षिणयाशिषा ।
परिपूर्णं भवेत् श्राद्धं यतिषु श्राद्धभोजिषु ॥४४

॥ शिववाक्यं स्कन्दपुराणे ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ससाध्यामरुतस्तथा ।
सकृद्भुक्तेन यतिना पितृदेवाः सवासवाः ॥१
सर्व्वेते तृप्तिमायान्ति दशवर्षाणि पञ्चच ।
जन्मकोटिसहस्रेषु पूजितस्तेन शङ्करः ॥ २
गृहे यस्य समायाति महाभागवतो यतिः ।
यतिभिः पूज्यमानैस्तु सर्व्वेदेवाः सुपूजिताः ॥ ३
अमाने च कृते तेषां देवाः सर्व्वे ऽपमानिताः ।
स दोषं निर्गुणं वापि यतिं क्वापि न कीर्त्तयेत् ॥४
अज्ञानात् कीर्त्तयेद्यस्तु स याति नरकं ध्रुवम् ॥
येनापमानितो भिक्षु स्तेनाहं चापमानितः ॥ ५
हरिब्रह्मादयो देवाः पितरो मुनयस्तथा ।
आगच्छन्ति सुराः सर्व्वे ऋषयो मुनिपुङ्गवाः ॥६
तीर्थानि क्रतवः सर्व्वे भिक्षुके गृहमागते ॥

यतिर्यस्य गृहस्थस्य संतुष्टो वसते गृहे ॥७
तुष्टो भवति दैत्यारि र्यावदाभूतसंप्लवम् ॥
ये नमन्ति यतिं दूराद् दृष्ट्वा काषायवाससम् ॥ ८
राजसूयफलावाप्तिस्तेषां भवति पुत्रक ।
यतिरूपेण सर्व्वत्र विष्णुः पर्य्यटते महीम् ॥९
भक्तानामनुकम्पार्थं महद्धर्म्मविवृद्धये ।
यदाकारयते स्नानं यतीनां यो द्विजोत्तमः ॥ १०
स्नानजं लभते पुण्यं गङ्गायां शतवार्षिकम् ।
कौपीनाच्छादनं दण्डं वहिर्वासश्च पादुके ॥ ११
यो ददाति यथा शक्त्या पुण्यं तस्य वदाम्यहम् ।
दशवाजिसहस्रन्तु मातङ्गानां शतत्रयम् ॥ १२
गोयुतस्य सहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
कौपीनाच्छादनं पात्रं भिक्षवे यः प्रयच्छति ॥ १३
वाजपेयसमं पुण्यं विष्णुमुद्दिश्य यत् कृतम् ।
ध्यानभिक्षुमतिक्रम्य यद्यन्नं भोजयेद्गृही ॥ १४
न तत् फलमवाप्नोति सर्व्वं गोत्रं प्रतापयेत् ॥
मुण्डं यतेन्द्रियं शान्तं ध्यानभिक्षुमकिल्विषम् ॥ १५
तन्नित्यं भोजयेच्छ्राद्धे दैवे पित्र्येच कर्म्मणि ।
अग्निचित् कपिला सत्री राजाभिक्षुर्महोदधिः ॥ १६
दृष्टमात्राः पुनन्त्येते तस्मात् पश्येत नित्यशः ।
पक्वान्नस्वामिकोभिक्षुर्यदि तस्मै न दीयते ॥ १७
चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यादिति च स्मृतिशासनम् ।
यतिश्च ब्रह्मचारीच पक्वान्नस्वामिनावुभौ ॥ १८

रता था।

तयोरन्नमदत्वा तु भुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ॥
लक्षलक्षाणि यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ १९
तथा तत्त्वविदे भिक्षां तयोस्तुल्यफलं भवेत् ।
अन्यश्राद्धशतैरत्र परिवृत्तैर्न मुक्तिमान् । २०
हरिहरगृहस्थानां कुर्य्याच्छ्राद्धं विमुक्तये ।
किं पुनश्चैव यतीनां एकोद्दिष्टविधिर्म्मम ॥ २१
प्रत्यक्षमेवं कुर्व्वाणाः श्राद्धाराधनमुत्तमम् ।
शिवसायुज्यमेतेषां यानुद्दिश्य प्रवर्त्तितम् । इति ॥ २२

॥ स्कान्दे कालिका खण्डे ॥

संन्यासदिवसे यस्य यतिर्भैक्ष्यं समाचरेत् ।
पुत्रं सलभते श्रेष्ठं सफलं तस्य जीवितम् ॥ १
द्वितीयदिवसेष्वेवं तृतीयेष्वेवमेव हि ।
अतस्त्रिदिनमध्ये तु यतिर्भोज्यः प्रयत्नतः । इति ॥ २
पराशरः॥अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षुके गृहमागते ।
उद्धृत्य वैश्वदेवान्नं भिक्षुकन्तु विसर्ज्जयेत् ॥ ३
यतिश्च ब्रह्मचारी च विद्यार्थी गुरुपोषकः ।
अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षड़ेते भिक्षुकाः स्मृताः ॥ ४
वैश्वदेवकृतं दोषं भिक्षुःशक्तो व्यपोहितुम् ॥
नहि भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो व्यपोहंति ॥ ५
निवेशयति यः श्राद्धे पितृकर्म्मणि भिक्षुकम् ।
आकल्पकालिकी तृप्तिः पितृणामुपजायते ॥ ६
यतिधर्म्मसंग्रहे॥संन्यासाद्ब्रह्मणःस्थानंवैराग्यात् प्रकृतौ लय
ज्ञानात् कैवल्यमाप्नोति तिस्रस्तु गतयः स्मृताः ॥ ७

ब्रह्मिष्ठः परमो हंसो साक्षान्नारायणः स्मृतः ।
यस्तु संपूजयेन्नित्यं विष्णुस्तेन प्रपूजितः ॥ ८ ॥ इति

॥ उक्तञ्च श्रीगीतामाहात्म्ये ॥

यतीन् संपूज्यविधिवत् पादौ मूर्ध्नि प्रगृह्य च ९
यः पठेद्विश्वरूपाख्यं यतीनां पुरतः स्थितः ।
द्वादश्यां जागरे विष्णोस्तस्य पुण्यं वदाम्यहम् । १०
लुप्तपिण्डाश्च ये केचित् पुत्रदाराविवर्जिताः ।
सर्व्वे ते मुक्तिमायान्ति कुले तस्य मृताश्च ये ॥ ११
अपरञ्च ॥ यथा लोको यतिं स्पृष्ट्वा दृष्ट्वा चैव मनःशुचिः ।
शास्त्रमध्ये तथा गीतां स्पृष्ट्वा दृष्ट्वा मनः शुचिः ॥ १२
यतेर्दर्शनमात्रेण तथा पापक्षयो भवेत् ॥
गीतायाः श्लोकमात्रेण यथा नश्यन्ति पातकाः ।
गीतायाः श्लोकपाठेन गोविन्देति च कीर्त्तनात् ॥ १३
यतेर्दर्शनमात्रेण तीर्थकोटिफलं लभेत् ।
गङ्गा गीता तथाभिक्षुः कपिलाश्वत्थसेवनम् ॥१४
वासरं पद्मनाभस्य सुलभं स्यात् कलौ युगे ।
दर्शनात् स्पर्शनाच्चैव भाषणादर्च्चनाद्यतेः ॥ १५
तत्क्षणादेव पूतः स्यात् काश्यां गङ्गोदके यथा ।

इति सन्न्यासिप्रशंसादिप्रकरणमुक्तम् ॥

पितामहः ॥ यतिः परमहंसस्तु तुर्य्याख्यः श्रुतिचोदितः ।
यमैश्च नियमैर्युक्तो विष्णुरूपी त्रिदण्डभृत् ॥ १६
गृह्यसूत्रेभाष्येणोक्तं । देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं चैव त्रिदण्डि-
नम् ॥ नमस्कारं न कुर्य्याच्चेदुपवासेन शुध्यति १७

सर्व्वे वापि नमस्कार्य्याः सर्व्वावस्थासु सर्व्वदा ॥
महानिर्वाणतन्त्रे॥ब्राह्मणोदण्डिनं दृष्ट्वा प्रणमेत्तु विधिपूर्व्वकम्।
यतेर्दर्शनमात्रेण विमुक्तः सर्व्वपातकात् ॥ १८
तीर्थव्रततपोदानसर्व्वयज्ञफलं लभेत् ।
रूपन्तु द्विविधं प्रोक्तं चरं वाऽचरमेव च ॥ १९
चरं सन्न्यासिनां रूपमचरं मृणमयादिकम् ।
यस्याश्रमे यतिर्नित्यं वर्त्तते मुनिसत्तम ॥ २०
न तस्य दुर्लभं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
दूर्वृत्तो वा सुवृत्तो वा मूर्खो वा पण्डितोपि वा ॥ २१
वेषमात्रेण सन्न्यासी पूज्यः सर्व्वेश्वरो यथा ॥
तस्मात् सर्व्वेषु कालेषु पूज्यः सन्न्यासिनां हरः । इति २२
॥ सूतसंहितायां ॥ यति हस्ते जलं चान्नं न दत्तं यै र्न-
राधमैः । इक्षुवत् संप्रपीड्यन्ते मुद्गरै र्मुनिसत्तमाः ॥२३॥
श्रौतस्मार्त्तविहीना ये निषिद्धाचरणे रताः ।
ये शिवायतनारामवापीकूपमठादिकम् ॥ २४
दूर्वृत्तो वा सुवृत्तो वा मूर्खः पण्डित एव वा ।
ज्ञानाभ्यासपरः पूज्यः किं पुनर्ज्ञानवान्नरः ॥ २५
निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्व्वैरं समदर्शिनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूजयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥ २६
यथा राजा जनैः सर्व्वैः पूज्यते मुनिसत्तम ।
तथा ज्ञानी सदादेवै र्मुनिभिः पूज्य एव हि ॥ २७
यस्य गेहं समुद्दिश्य ज्ञानी गच्छति सुव्रत ।
तस्य क्रीडन्ति पितरो यास्यामः परमां गतिम् ॥ २८

प्रणवं परमात्मानं जपेदयुतमादरात् ॥ इति
काशीखण्डे ॥ रागद्वेषविनिर्मुक्तो भिक्षुर्मोक्षाय कल्पते ॥२९
आश्रमे तु यतिर्यस्य मुहूर्त्तमपि विश्रमेत् ॥
किं तस्यानेकतन्त्रेण कृतकृत्यः स जायते ॥ ३०
सञ्चितं यद्गृहस्थेन पापमामरणान्तकम् ।
निर्द्दहयति हि तत् सर्व्वमेकरात्रोषितो यतिः ॥ इति ३१
ब्रह्मवैवर्त्तपुराणे ॥ सन्न्यासिनाञ्च यो धर्म्मो मन्मुखा-
च्च निशामय । दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ॥
पूर्व्वकर्म्माणि दग्ध्वा च परकर्म्मनिकृन्तनम् ।
कुरुतेचिन्तयेन्माञ्च यायात्तु ममममन्दिरम् । ३२
सन्न्यासिनः पदस्पर्शात् सद्यः पूता वसुन्धरा ।
सद्यः पूतानि तीर्थानि वैष्णवस्य यथा व्रजः ॥ ३३
सन्न्यासिनश्च स्पर्शेन निष्पापो जायते नरः ।
भुक्त्वा सन्न्यासिनं लोकश्चाश्वमेध फलं लभेत् ॥ ३४
नत्वा च कामतो दृष्ट्वा राजसूयफलं लभेत् ।
फलं सन्न्यासिनां तुल्यं यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ ३५
सन्न्यासीयतिः सायान्हे क्षुधितो गृहिणां गृहम् ।
सदन्नं वा कदन्नं वातद्दत्तं नैव वर्ज्जयेत् ॥ ३६
दक्षः ॥ योगाश्रमपरिश्रान्तं यस्तु भोजयते यतिम् ॥
निखिलं भोजितं तेन त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ३७
यस्मिन् देशे वसेद् योगी ध्यानयोगविचक्षणः ।
सोऽपि देशो भवेत् पूतः किं पुनस्तस्य बान्धवाः ॥ ३८
द्वैतञ्चैव तथा द्वैतं द्वैताद्वैते तथैव च ।

न द्वैतं नापि चाद्वैतमित्येतत् पारमार्थिकम् ॥ इति ॥३९
निर्व्वाणतन्त्रे ॥ सन्न्यासधारणं कार्य्यं विप्रस्य मुक्तिहेतवे।
यो विप्रो धारयेद्दण्डं सैवनारायणः स्वयम्॥ ४०
चतुर्भुजाः प्रजायन्ते दण्डधारणमात्रतः।
सर्व्वलक्षणसंयुक्तो ब्राह्मणो गमनञ्चरेत् ॥ ४१
गत्वा च दण्डिनं दृष्ट्वा प्रणमेत् दण्डवत् क्षितौ।
त्वमेव देव देवेश त्वमेव त्राणकारकः ॥ ४२
त्वमेव जगतां वन्द्यस्त्राहिमां शरणागतम् ॥ इति
नारायणं सदाभाष्य द्वारे तस्य व्रजेत् सुधीः ४३
इति श्रुत्वा गृहस्थश्च पुटाञ्जलिपरो भवेत्।
द्वारे च दण्डिनं दृष्ट्वा प्रणमेद्ब्राह्मणो वरः॥ ४४
भिक्षां दद्यात् प्रयत्नेन कूर्म्ममांसं विना प्रिये ॥ इति
आत्मपुराणे ॥ देहः परमहंसस्य जीवन् विष्णुरयं स्वयम्॥
अतएव पुराणज्ञा एवमाहु र्मनीषिणः।
वैष्णवीं प्रतिमांदृष्ट्वा यतिं दृष्ट्वैकदण्डिनम् ॥ ४६
प्रणिपातमकुर्व्वाणो नरकं प्रतिपद्यते।
ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्च शक्रो लोकोपसंयुतः। ४७
वस्वाद्याश्च गणाः सर्व्वे यतिदेहे वसन्ति हि।
पूजिते पूजिता एते सर्व्व एव सुरोत्तमाः ॥ ४८
भवन्ति च तिरस्कारात् सर्व्वेऽपि च तिरस्कृताः॥
भिक्षुर्यत्र च तत्रायं विश्वरूपधरो हरिः ४९
नित्यं तिष्ठति सर्व्वात्मा स्वदेहे इवचक्रधृक्।
यत् किञ्चित् क्रियते ह्यस्य जनैरेतैः शुभाशुभम् ॥ ५०

दीयते चान्नपानादि स दद्यात् पुरुषोत्तमे ।
यतीनाञ्च गुरुः शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम् ॥ ५१
इहप्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥
एवं विज्ञाय सततं कर्म्मणा मनसा गिरा ॥ ५२
अनुकूलं यथाशक्ति कुर्य्युः पुण्यार्थिनो जनाः ॥
यतिमात्रस्य किं भूयः परहंसस्य सर्व्वदा ॥ ५३
जीवतोऽपि मृतस्यात्र स्वयं वृद्धिमभीप्सवः ॥
त्रिंशत्परांस्त्रिंशदवरांस्त्रिंशच्च परतः परान् ॥ ५४
सद्यः सन्न्यसनादेव नरकात् त्रायते पितॄन् ।
कुलानाञ्च शतं पूर्व्वमपरञ्च शतत्रयम् ॥ ५५
एतत् स्यात्सुकृते लोके सन्न्यस्तस्य कुलेऽस्ति यत् ॥
न्यासस्त्याग इति प्रोक्तः सम्यक्त्वं तस्य चेदृशं ॥ ५६
सर्व्वथा सर्व्वदा सर्व्वं सर्व्वत्र त्यजनं स्मृतं ।
तच्च मुख्यं परेहंसे जघन्यमपरत्राहि ॥ इति ५७
॥ नारदपरिब्राजकोपनिषदि ॥ तुरीयःपरमो हंसः साक्षा-
न्नारायणो यतिः ॥ इति संन्यासिनः प्रशंसा समाप्ता ॥

अथ यतीनां मृत्युसंस्कारः। सूतसंहितायां। मृतस्य पर-
महंसस्य तत् कार्य्यमाह ।
मृते न दहनं कार्य्यं परहंसस्य सर्व्वदा ।
कर्त्तव्यं खननं तस्य नाशौचं नोदकक्रिया ॥ १
अश्वत्थस्थापनं कार्य्यं तद्देशेऽध्वर्य्युणा मुने !
अश्वत्थे स्थापिते तेन स्थापितो हि महेश्वरः ॥ २
दर्शनात् स्पर्शना त्तस्य सर्व्वं नश्यति पातकम् ।

अन्येषामपि भिक्षूणां खननं पूर्व्वमाचरेत् ॥ ३
पश्चाद् गृही यथाशास्त्रं कुर्य्याद्दहनमुत्तमम् ।
अश्वमेधफलं तस्य स्नानमात्राद्विशुद्धता ॥ ४
सर्व्वमुक्तं समासेन तव शिष्यस्य धीमतः ।
तस्मादेतद्विजानीहि वेदान्तार्थप्रकाशन मिति ॥ ५
यतिधर्म्मप्रकाशे यतीनां मृत्युसंस्कारमाह ॥ स्मृत्यर्थसारे
कुटीचकं चैव दहेत् पूरयेच्च वहूदकम् ।
हंसं जले विक्षिपेत परं हंसं प्रपूरयेत् ॥ इति ६
परम हंसं विकीरयेदिति पाठः ॥ विकिरश्च खण्डान् कृत्वा
चतुर्दिक्षु प्रक्षिपेत् कुटीचकस्य दाह एव वहूदकस्य पूरणं
जल विवेशो वा ॥ हंसस्य जल मेवेति नियमः ॥ ७
परम हंसस्य जलं भूमौ वा पूरणं दिक्षु विकीर्णमिति
विवेकः (विश्वेश्वर पद्धतौ आह) वौधायनः ॥
ब्रह्मनिष्ठे च सन्न्यस्ते पितर्य्युपरते श्रुते ।
सपिण्डीकरणं नैव नाशौचं नोदकक्रिया ॥ ८ ॥
अहन्येकादशेप्राप्ते पार्व्वणन्तु विधीयते ।
सपिण्डीकरणं नैव कर्त्तव्यन्तु सुतादिभिः ॥९
सद्यः सन्न्यसनादेव प्रेतत्वं नैव जायते ।
एको द्दिष्टं न कर्त्तव्यं सन्न्यस्तानां कदाचन ॥ इति ॥१०
॥ शौनकः ॥ ब्रह्मीभूते च सन्न्यस्ते ताते च निधनङ्गते ।
न तस्य सूतकं कार्य्यं न च पिण्डोदकक्रियाः ॥ ११ ॥
ब्रह्मीभूतस्य तस्यान्यत् कर्त्तव्यं नैव विद्यते ।
दशाहेतु व्यतिक्रान्ते पुत्रः कुर्य्यात्तु पार्व्वणम् ॥१२॥

प्रत्यब्दं पार्व्वणं कुर्य्यात् एष धर्म्मः सनातनः ।
द्वादशाहमनध्यायं कुर्य्याच्छिष्यः समाहितः ॥ १३
खननं वहनं स्पर्शं संस्कुर्व्वन् शुद्धिमृच्छति ।
स्नानमात्रेण लभते अश्वमेधं पदे पदे ॥ १४
अपुत्रो लभते पुत्रं चिरं जीवितमुत्तमम् ।
निषेकादिश्मशानान्ता विधयो ब्राह्मणाश्रिताः ॥ १५
तस्माद्यतेस्तु संस्कारं मन्त्रवत् कुरुते गृही ।
यतेर्देहं गृही स्पृष्ट्वा स्नानमात्रेण शुद्ध्यति ॥ १६
अश्वमेधफलं सर्व्वं स प्राप्नोति पदे पदे ।
असंस्कृतं विशीर्य्येत यत्र देशे कलेवरम् ॥ १७
धर्म्मलोपो भवेत्तत्र दुर्भिक्षमरणादिक मिति ।
तथाचोक्तं पितृमेधपद्धतौ ॥ संनिकृष्टो यतेः पुत्रो यदि स्वपितृनाशने ॥ कृत्वा तु वपनं स्नात्वा शुद्धात्मा यति-संस्क्रियाम् ॥१८ असंनिकृष्टश्चेत् पुत्रः सिद्धिवार्त्तां पितु स्तदा
स्नात्वा तु वपनं पूर्व्वं शुक्लायान्तदनन्तरम् ।
दशम्यामेव कुर्य्यात्तु नारायणवलिं ततः ॥ इति ॥ १९
उशनाः ॥ यतौ मृतेच वपनं नोदकं नैव च क्रिया ।
नाशौचं नैव शोकश्च वन्धूनां गोत्रिणामपि ॥ २०
वृषोत्सर्गो न दानञ्च विपन्ने स्याद् गुरौ यतौ ।
सपिण्डीकरणं तेषां न कर्त्तव्यं सुतेन तु ॥ २१
एकोद्दिष्टं न कुर्व्वीत यतीनान्तु कदाचन ।
मृते न दहनं कार्य्यं परहंसस्य सर्व्वदा ॥ २२
कर्त्तव्यं खननं तस्य नाशौचं नोदकक्रिया ।

अश्वत्थस्थापनं कार्य्यं तद्देशेऽध्वर्युना मुने ॥२३
अश्वत्थे स्थापिते तेन स्थापितो हि महेश्वरः ।
दर्शनात् स्पर्शनात्तेभ्यः सर्व्वं नश्यति पातकम् ॥ २४
कुटीचकं संप्रदहेद्बहूदकं जले क्षिपेत्
हंसञ्चैवतुनिक्षिप्य परंहंसं प्रकीरयेत् २५॥ इति
अथ यतीनामन्त्यसंस्कारविधिं व्याख्यास्यामः तत्र-
बौधायनः॥ गृहस्थः शुद्धात्माशेषतः स्नात्वा गन्धपुष्पादिभि-
रलंकृत्यशिक्यशरीरमारोप्यघोषितजयशब्ददुन्दुभिनादरवैर्गा
ग्रामात् प्राचीमुदीचींवागत्वा शुद्धदेशं समाश्रयेत्।नदीतीरे
श्वत्थ वृक्षस्य ब्रह्म वृक्षस्य वा अधस्ताद्देवयजनं दण्ड प्रमाणं
खनित्वा लवणं प्रक्षिप्य दर्भान् संस्तीर्य्य गायत्र्या शरीरं
प्रक्षाल्य पुरुषसूक्तेन मन्त्रेण शंखोदकेन स्नापयित्वा गन्ध
पुष्पैरलङ्कृत्य विष्णोहव्यंरक्षस्वेति शरीरं गर्त्तकुण्डे निधाय
इदं विष्णुर्विचक्रमे इति मन्त्रेण दक्षिणहस्ते दण्डं वक्ष
हंसः शुचिषदिति हृदयदेशे जपेत् । ब्रह्मयज्ञानामिति
मूर्द्धदेशे जपेत् पुरुषसूक्तं भ्रुवोर्मध्ये जपेत् । भूमि भूमि
मगात् मातामातर मप्यगात् भूयास्म पुत्रैः पशुभिर्यो
द्वेष्टि सभिद्यतामिति मन्त्रेण मूर्द्धानं भिद्याद श्मनापरशुना
वा ओं भूर्भुवः स्वरोमित्याभिमन्त्र्य दर्भैराछाद्य मध्ये लव
णेन घनतरेण सप्तव्याहृतिभिः प्रणवेन च देवयजनं
पूरयेत् ओं अग्निनाग्निः सामिध्यते इति अनु
मन्त्रयेत् । न तत्र शेषसंस्कारोस्तीति । अन्यथा ग्रामादस्य
नावृष्टि भवति । तस्माद्भुमिं भूशं खात्वा मृदाछा

दर्शयेद् भृशं ॥ २६ सर्व्वसङ्गनिवृत्तस्य ध्यानयोगरतस्यच ।
न तस्य दहनं कार्य्यं नाशौचं नोदकक्रिया ॥ २७
निदध्यात् प्रणवेनैव ध्यानभिक्षोः कलेवरम् ।
प्रोक्षणं खननं चैव सर्व्वं तेनैव कारयेत् ॥ २८
एकोद्दिष्टं जलं पिण्डं नाशौचं प्रेतसत्क्रियाम् ।
न कुर्य्यात् पार्व्वणादन्यद् ब्रह्मीभूताय कल्पते ॥ २९
यतेः कार्य्या क्रियायस्य न तस्य ब्रह्मणि स्थितिः ।
ब्रह्मीभुतस्य तु यते र्न दाहाद्याः कथञ्चन ।३०
पुत्रैःकुटीचकस्य त्वज्ञानिनोदहनादिक्रियाकलापः कार्य्य एव।
अनग्ने र्दहनं कार्य्यं पूर्व्वभिक्षो र्यथाविधिं इति स्मृतेः ।
विदुषस्तु न तत् कार्य्यं नैकोद्दिष्टादि कर्हिचित् ३१
पूर्व्वभिक्षुः कुटीचकः। वौधायनः।।नारायणवलिंचास्य कुर्व्वीत
द्वादशे हनि।कुर्य्याद्विष्णो र्महापूजां पायसञ्च निवेदयेत् ३२
अग्नौ हुत्वा तु तच्छेषं व्याहृतिभिः समाहितः ।
यतीन् गृहस्थान् साधून् वा गृहीत्वा द्वादशावरान् ॥ ३३
अभ्यर्च्च्य गन्धपुष्पाद्यै र्मन्त्रै र्द्वादशनामभिः ।
संभोज्य हव्येनान्येन दक्षिणां च निवेदयेत् ॥ ३४
त्रयोदश द्विजश्रेष्ठमात्मज्ञं संयतेन्द्रियम् ।
विष्णुं यथा तथाभ्यर्च्च्य पाद्याद्यैश्च विधानतः ॥ ३५
दद्यात् पुरुषसूक्तेन पुष्पहव्यादिकं क्रमात् ।
वस्त्रालङ्कारकाद्यानि यथाशक्ति प्रदापयेत् ॥ ३६
प्रतिष्ठेत् सन्निधौ तस्य दर्भानास्तीर्य्य भूतले ।
ओं भूः स्वधा ओं भुवः स्वधा ओं स्वः स्वधा इति वलीन्

हरेदिति ॥३७ एवं यः कुरुते विद्वान् नारायणबलिं द्विज।
विष्णुलोकमवाप्नोति पुरुषो नात्र संशयः ३८

॥ इति विश्वेश्वरपद्धतावुक्तं ॥

अथ यतिधर्म्मप्रकाशके यतीनां मृत्युसंस्कारमाह।
उशनाः॥ एकोद्दिष्टं न कुर्व्वीत यतीनां चैव सर्व्वदा।
अहन्येकादशे प्राप्ते पार्व्वणन्तु विधीयते ॥१
सपिण्डीकरणं तेषां न कर्त्तव्यं सुतादिभिः।
त्रिदण्डग्रहणादेवप्रेतत्वं नैव जायते ॥२
त्रिदण्डेत्यत्र दण्डमात्रं विवक्षितं । न तु तद्गतं त्रित्वं
उद्देश विशेषणत्वात् गृहैकत्ववत् ॥ आतुर सन्न्यासेतु प्रैष-
मात्रेण दण्डादि कार्य्यस्य सिद्धेरातुरसन्न्यासिनोऽपि ना-
शौचादीत्युक्तप्रायंस्मर्त्तव्यं ॥ खननप्रकारस्तु स्मृत्यर्थसारा-
दिषु यथा ॥ ग्रामात् प्राचीमुदीचीं वा गन्धपुष्पाद्यलङ्कृतं
यतेःशवं गीतवाद्यघोषेण नीत्वा पलाशमूले नदीतीरेऽन्यत्र
वा शुचौदेशेदण्डप्रमाणं देवयजनं खात्वा । सप्तव्याहृ-
तिभिः प्रोक्ष्यदर्भानास्तीर्य्य शवं तत्र निदधाति विष्णोहव्यं
रक्षस्वेत्यादिपूर्व्वोक्तवत् ॥ स्मृत्यन्तरे ॥
यतिं पुरुषसूक्तेन स्नापयित्वा विनिक्षिपेत्।
दण्डश्च दक्षिणहस्ते दद्यात् ॥ भूर्भुवः स्वरिति मूर्द्धानं शंखेन
भेदयेत् ॥ लवणेन गर्त्तभरणं ॥
तत्राश्वत्थ स्थापनमपि कार्य्यमित्यप्युक्तं।
॥स्मृत्यन्तरे॥यतीन् वहन् स्पृशंश्चैव स्नानमात्रेण शुध्यति
अश्वमेधफलं सर्व्वे प्राप्नुवन्ति पृथक् पृथक् ॥३

शुध्यतीति स्नानमात्रेणावभृथवच्छुद्धिमान् भवतीत्यर्थः ॥ प्रेतत्वाभावेनाशुद्धित्वाभावस्य प्रागेवोक्तत्वादित्यवधेयम् । ॥ कुटीचकस्य दाहो यथा ॥ खातं प्राग्वत् कृत्वातस्य समीपेऽग्निं प्रज्वाल्ययते र्दक्षिणकरे उपवरोहेत्य वरोहेत्य निर्मथं वा गर्त्ते चितिं कृत्वा अग्निनाग्निः समिध्यते इत्यग्निं दत्वा सावित्र्या प्रणवेन वा दहेत्। ततोऽष्टशतं प्रणवंनारायणंपरं ब्रह्म इति च जप्त्वा सशिरःप्रणवव्याहृतिभिः गायत्र्या च तद्भस्मास्थि तीर्थे क्षिप्त्वा स्नानादेव शुद्धिः सर्व्वेषां। अस्यापि नान्यवदौर्द्ध्वदेहिकं कार्य्यं ॥ दण्ड ग्रहणेनैव प्रेतत्वाभावादिति॥अथ चतुर्णामपिपुत्रादिना दशदिनानिस्नानसन्ध्याजपध्यानादिना नीत्वा एकादशेऽन्हि पार्व्वणं कृत्वा द्वादशेऽन्हि नारायणवलिः कार्य्यः। तदाह वौधायनः।नारायणवलिमित्यादि पूर्व्वोक्तं ।

अश्वमेधसहस्रस्यवाजपेयशतस्यच ।
फलं स लभते चैव यः करोतिक्रियामिति ॥४ अग्निपुराणे॥

स्वगृह्योक्तविधिना प्रतिष्ठापितेऽग्नौविष्णुनिवेदितशेषं पायसं भूर्भुवः स्वरिति व्याहृतिभि स्तिसृभिर्व्यस्तसमस्ताभिर्हुत्वेत्यर्थः ॥ मन्त्रैर्द्वादश नामभिरिति॥ केशव ॥१॥ नारायण ॥२॥ माधव ॥३॥ गोविन्द ॥४॥ विष्णु ॥५॥ मधुसूदन ॥६॥ त्रिविक्रम ॥७॥ वामन ॥८॥ हृषिकेश ॥ ९ ॥ पद्मनाभ ॥१०॥ दामोदर ॥११॥ जनार्द्दन॥१२॥एते द्वादशनाममन्त्रैरित्यर्थः ॥ एभिस्तु विप्रो वासुदेव नाम्ना संपूज्य इत्यर्थः ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः स्वधा युक्तं वलित्रयं तस्मै

यतये तन्नाम्ने दद्यादित्यर्थः ॥ इति यतीनाम् चतुर्णामन्त्य संस्कारविधिः॥अत्र केचित् यतौ मृते तत्पुत्रपत्न्योरपिचौरं नास्ति ॥ यतौ मृते न वपनं नोदकं नैवच क्रिया ॥
नाशौचं नैव शोकश्च वन्धूनां गोत्रिणामपि ।८
इति उशनः स्मृति वाक्येन सर्व्वेषामेव गोत्रिणां वपनादि-निषेधादित्याहुः ॥ तदसत् ।
गङ्गायां भास्करक्षेत्रेमातापित्रो र्मृतौ तथा ।
आधाने सोमपानेच षट्सु क्षौरं विधीयते ॥६
इत्यादिस्मृतिवाक्यविहितमातापितृमरणनिमित्तकक्षौरस्य तेन वाक्येन निषेद्धुमशक्यत्वात् ॥
तेनाहि सामान्यतो यतिसपिण्डसगोत्रमरणनिमित्तकवप-नस्य एवानुभाविनां परिवापन मित्यापस्तम्बस्मृतिप्रापि-तस्य निषेधात् । न च सन्न्यासेन पितुः पुत्रे जन्य जनक-भावसम्वन्धोऽपि निवृत्त इति भाव्यं ॥ तथा सति पुत्रेण तदीयसांवत्सरिकादेरप्यननुष्ठानापत्तेः । नचेष्टापत्ति र्वाच्या
सन्न्यासिनोऽपि कदाचित् पुत्रः कुर्य्याद् यथाविधि ॥
महालयेतु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्व्वणन्तु तत् ॥
इति कालतत्त्व विवेचनादि संगृहीत स्मृति विरोधापत्तेः॥ तस्मात् सन्न्यस्तपितृमरणेऽपि पुत्रस्य क्षौरमावश्यकं॥ एवं यतिपत्न्या अपि भर्त्तृमरण निमित्तकं क्षौरं भवत्येव॥ विधवाकवरीभारो भर्त्तृवन्धाय जायते॥शिरसो वपनं तस्मात् कार्य्यं विधवया सदेति स्कान्दोक्तेस्तस्यास्तदावश्यकत्वादिति दिक्। आत्मपुराणे ११अध्याये यतीनां मृतौ संस्कारमाह

परोहंस इति ज्ञानाद्‌द्विजस्तु म्रियते यदि ।
पुत्राद्यैरथयस्तस्य संस्कारः परिकीर्त्यते ॥८
संपादयेद्रथं चित्रं विमानश्चापि निर्म्मलम् ।
आन्दोलिकाश्च शिक्यं वा विस्तीर्णं मृदुलन्ध्रुवम् ॥९
वादित्रनृत्यघोषञ्च जयशब्दञ्च कारयेत् ।
महादेवस्य विष्णोर्वा भक्तायद्वत् समुत्सवे ॥१०
स्नात्वा दुकूलवसना स्तद्वच्चन्दनचर्च्चिताः ।
ताम्बूलवदनाः सर्व्वे स्रग्विणोहर्षमागताः ॥११
हरिद्राचूर्णादुग्धाद्यैः फलै र्नानाविधैरपि ।
सुगन्धैः सुमनःसङ्घै रन्योन्यकरसंस्थितैः ॥१२
वसन्तोत्सववत् कुर्य्युः सर्व्वन्तु विभवे सति ॥
गृहाश्च राजमार्गाश्च सर्व्वतः परिमार्जिताः ॥१३
सिक्ताश्चन्दनकर्पूरवारिभि र्गतपांशवः ॥
पञ्चामृतेन तद्देहं स्नापयेच्छिवविष्णुवत् ॥१४
पुण्यै र्जलैः सुगन्धैश्च लेपयेच्चन्दनादिभिः ॥
अलङ्कुर्य्याच्च मालाभिः सर्व्वतः प्रतिमामिव ॥१५
चन्दनागुरुकर्पूरै र्धूपयेच्च मुहुर्मुहुः ।
नीराजनैः सकर्पूरैश्चित्रै र्नीराजयेदपि ॥१६
संस्थाप्य पूर्व्वसंप्रोक्तयाने सम्यगलंकृते ।
देववद्राजवच्चैनं वेदघोषैश्च संयुतम् ॥१७
निःसारयेयुः संस्थानाद्वनादिस्थानकं प्रति ॥
पुण्यवृक्षे वने गत्वा निर्जने वा वनस्पतौ ॥१८
देवालयेऽथवा गोष्ठे महानद्या स्तटेऽथवा ॥

अन्यत्र वा शुभे देशे मलास्थ्यादिविवर्ज्जिते ॥१९
पुंप्रमाणां खनेद्भूमिं कूपवद्वर्तुलीकृताम् ।
पठेयुः खनितारञ्च व्याहृतीरसकृत्ततः ॥२०
सप्तव्याहृतिभिः खातं संप्रोक्ष्यात्र द्विजोत्तमः ।
दर्भासनं प्रकुर्व्वीत प्रणवेन भुवःस्थले ॥२१
सावित्र्यातत्र तद्देहं प्रक्षाल्य मलवर्ज्जितम् ।
पौरुषेणाथ सूक्तेन स्नापयेद्विष्णुबुद्धितः ॥२२
गन्धमाल्यादिभिश्चैतदलङ्कुर्य्याद् यथा पुरा ॥
विष्णोहव्यं रक्षस्वेति मन्त्रमुच्चार्य्य निक्षिपेत् ॥२३
खाते तस्मिंस्ततो दण्डमर्पयेद्दक्षिणे करे ॥
त्रिधा कृत्वो भवेद्दण्ड आतुरस्य न विद्यते ॥२४
संपाद्य तं तदा सद्यो दद्यात् सन्न्यासधर्म्मवित् ।
अमुना मन्त्रतो विद्वानिदं विष्णु र्विचक्रमे ॥२५
हंस इत्यादिकं मन्त्रं जपेद्धृदय देशतः ।
भ्रूमध्ये पौरुषं सूक्तं ब्रह्म इत्यादि मूर्द्धनि ॥२६
भूमि भूमि मगादित्थं मन्त्रतो दृढमश्मना ।
भिन्द्यान् मूर्द्धनि मध्ये च मेधावी ब्राह्मणोत्तमः ॥२७
उच्चारयन्त ॐ कारं व्याहृतीश्च द्विजोत्तमाः ।
अवटं पूरयेयूस्ते पाषाणैश्च मृदादृढम् ॥२८
श्वशृगालादयो यद्वद्भक्षयेयु र्न तं तथा ।
सन्न्यासिनो न कोप्येष संस्कारः परिकीर्त्तितः ।
कर्त्तॄणाममुना यस्माद्भवेदभ्युदयः सदा ॥२९
प्रत्यवायोप्यकरणे ततस्तेष्वेव संस्मृतः ॥

देहःपरमहंसस्य देयश्छित्वात्र खण्डशः ॥३०
भूतेभ्य इति चेच्छन्ति विरक्ता न परे तथा ।
यतः परमहंसस्य पूरणं वृद्धिकारणम् ॥३१
अन्येषां वर्णिनां तेन पूरणीयः स सर्व्वदा ।
कुटीचकादयोदाह्याः पूरणीयाश्च वा द्विजैः ॥३२
दाहः परमहंसस्य नैव कार्य्यः कथञ्चन ।
अस्मिन् दग्धे प्रदग्धाःस्युराशिषः प्राणिसंश्रयाः ३३
भक्षिते भक्षितास्तद्वत्तस्मात्तं पूरयेत् सदा ॥
अग्निनाग्निरिति प्रोच्य सूर्य्यात इति चापरं ॥३४
पठेन्मन्त्रं हि संपूर्णे खाते तस्मिन् द्विजोत्तमः ॥
प्रहृष्टवदनाः सर्व्वे शोकक्लेशविवर्ज्जिताः ॥३५
विवाहाद्युत्सवे यद्वत्तद्वदेव व्यवस्थिताः ।
कुर्य्युः प्रदक्षिणं तद्वन्नमस्कारांश्च शक्तितः ॥३६
अवटस्योर्द्ध्वमास्थाप्य देवालयमथापिवा ।
अश्वत्थं वा वटं वापि शस्यंवाऽन्यबनस्पतिम् ॥३७
वैष्णवीं प्रतिमां तत्र लिङ्गं वा शैवमेवच ।
आदित्यं वा गणेशं वा भवानीं वा श्रियं तथा ।
प्रतिष्ठाप्यच पूजांच तत्र कुर्य्युर्महाधियः ।
किं वहूक्त्या तथा कुर्य्युर्यथा कालान्तरेपिच ॥३८
मलास्थ्यादि पतेन्नास्य ह्युपरिष्टात् कथञ्चन ।
प्रेतस्य दर्शनात् स्पर्शाद्बुद्धिर्याजायते नृणां ॥३९
न तां कुर्य्युःपरं विष्णोः स्पर्शदर्शनसंभवाम् ॥
कृत्वा स्नानञ्च कुर्व्वीरन्नशुचित्वनिवारणम् ॥४०

परं तत् स्नान सम्भूत तीर्थ बुद्धया मनीषिणः ।
कुर्य्यु र्वाप्यथ वा नैव स्नानं स्वेच्छावशादिह ॥४१
प्राणनिर्गमनादूर्द्ध प्रतिमा वैष्णवी तु सा ।
देहः परमहंसस्य जीवन् विष्णुरयं स्वयम् ॥ इति ४२
यतिमात्रस्यकिं भूयः परहंसस्य सर्व्वदा ।
जीवतोऽपि मृतस्यात्र स्वयं वृद्धिमभीप्सवः ॥४३
ततोऽस्य मरणे न स्यान्नाशौचं नोदकक्रिया ।
न घृतप्राशनं ज्योतिःस्पर्शनादि कदाचन ॥४४
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं तद्वहने भवेत् ।
स्पर्शने दर्शने विष्णोः स्पर्शदर्शनसंभवम् ॥४५
यतीनां परहंसानां मनसा वचसापि च ।
प्रैषे स्यात् खननन्त्वेतदन्येषां दहनं भवेत् ॥४६
सर्व्वकर्म्मनिवृत्तस्य परहंसस्य सर्व्वदा ॥
यतेर्न दहनं कार्य्यं नाशौचं नोदकक्रिया ॥४७
ये वहन्ति महात्मानः स्पृष्ट्वा चैवच हर्षतः ।
अश्वमेधफलं तेषां द्विजानां स्यात् क्षणे क्षणे ४८
अनुगच्छन्ति येह्येनं बहन्तिच खनन्तिच ।
पूरयन्तिच ते सर्व्वे सदा शुद्धाः प्रकीर्त्तिताः ॥४९
यतीनां नैव संस्कारो नैव पिण्डोदकक्रिया ।
अहन्येकादशे प्राप्ते पुत्रः कुर्य्याद्धि पार्व्वणम् ॥५०
विष्णुनाम समुच्चार्य्य स्वपितुः स्नेहवर्जितः ।
संकल्पविधिना यद्वद्विवाहाद्युत्सवे तथा ५१
पुत्रादन्ये प्रकुर्व्वीरन् ज्ञातयोऽज्ञातयोऽपिवा ।

यणावलिं सर्व्वे पुरुषोत्तमतुष्टये ॥५२
शे दिवसे प्राप्ते पुत्रोऽपिच तथैवसः ।
त्रेणां प्रतिदायादं ये चान्येच द्विजातयः ॥५३
वा विष्णोर्महापूजां पायसञ्च निवेदयेत् ।
भुवः स्वरिति प्रोक्ते जुहुयात् पायसं पुनः ॥५४
स्कृतन्त्वथ नैवेद्यं ब्राह्मणेषु निवेदयेत् ।
यतीन् गृहस्थान् साधून् वा गृहीत्वा द्वादशावरान् ॥५५
आराध्य गन्धपुष्पाद्यै मन्त्रै र्द्वादशनामभिः ।
संपूज्य भोजयित्वाथ वासांसि विविधानिच ॥५६
यतिभ्योऽत्र प्रदेयानि गृहिभ्यो दक्षिणा अपि ।
त्रयोदश्यां यतीन्द्रन्तमात्मज्ञं विजितेन्द्रियं ॥५७
संपादयेदभावेपि यतीनामत्र सर्व्वथा ।
एकोन यदिलभ्येत यतिः परमहंसकः ॥५८
तदागृहस्थं धर्म्मज्ञमुत्तमंसर्व्वसंमतम् ।
विष्णुवुद्ध्या समभ्यर्च्च्य पाद्याद्यैश्च विधानतः ॥५९
दद्यात् पुरुषसूक्तेन धूपदीपादिकं क्रमात् ।
वस्त्रालङ्करणादीनि यथाशक्ति तथास्तिकः ॥६०
उच्छिष्टसन्निधौ दर्भानास्तीर्य्यान्नैर्मनोरमैः ।
चतुर्विधेभ्यो भूतेभ्यो वलिं व्याहृतिभि र्हरेत् ॥६१
प्रत्येकं तिसृभिः पश्चान्मिलिताभिः स्वधापुनः ।
विभवाभावतोह्यत्र यतयस्तु त्रयोदश ॥६२
विप्रावाविभवेस्थाप्यानात्र किञ्चिद्विधीयते ।
यावतां वसनादीनां दाने शक्तिर्हि विद्यते ॥६३

तावतां समसङ्ख्यास्ते भोज्याः प्रथममेवहि ।
अनन्तान् भोजयेत् पश्चान्मृष्टैरन्नैस्तु सादरम् ॥९४
सर्व्वेभ्योऽपि यथाशक्ति दद्यादेवात्र दक्षिणाः ।
एवं यः कुरुते विद्वान्नारायणवलिं द्विजः ॥९५
अभीष्टमर्थमाप्नोति जीवन्नत्र न संशयः ।
विष्णुलोकं मृतो गच्छेत् स्वकीयैः पूर्व्वजैः सह ॥९६
एवं परमहंसस्य संस्कारस्ते मयेरितः ।
आतुरस्य प्रसङ्गेन प्रकृतन्त्वमतः शृणु ॥९७
कुटीचकोवहुदोवा हंसो वापि यदा भवेत् ।
यतिः परमहंसाख्यः श्राद्धं होमादिकं तदा ॥९८
न कुर्य्याद्यातुरो यद्वत् प्रैषमात्रात् प्रपूरयेत् ।
सन्न्यासं तद्वदेतेऽपि पूरयेयुः सदैवाहि ।
प्रैषमात्रेण विद्वांसः परवैराग्यमाश्रिताः ॥९९
इति आत्म पुराणे यतीनां देहसंस्कार उक्तः ॥
॥ शिवपुराणे कैलाशसंहितायां १२ अध्याये । यतीनां
मृतदेहसंस्कारविधिमाह ॥ वामदेवउवाच ॥
ये मुक्तायतयस्तेषां दाहकर्म्म न विद्यते ।
खननं खलु तेषां तत् कर्म्माचक्ष्व गुरोमम ॥१
पूर्णाहंभावमाश्रित्य ये मुक्ता देहपञ्जरात् ।
ये तूपासनमार्गेण देहमुक्ताः पदं गताः ॥२
तेषां गतिविशेषञ्च भगवन् वक्तु मर्हसि ॥ सूतउवाच ।
मुनिविज्ञप्तिमाकर्ण्य शक्तिपाणिः सुरारिहा ॥३
प्राहात्यन्तरहस्यञ्चक्रभुणाश्रुतमीश्वरात्।श्रीसुब्रह्मण्यउवाच

भव मुनेगुह्यमृभवे शिवयोगिने ॥४
भगवता साक्षात् सर्व्वज्ञेन पिनाकिना ।
यतदद्यते ब्रह्मन् न देयं यस्य कस्यचित् ॥५
माधिस्थो यतिः कश्चिच्छिवभावेन्न देहभुक् ।
अस्तिचेत् स महाधीरः परिपूर्णः शिवो भवेत् ॥६
धैर्य्यचित्तोयः कश्चित् समाधिं न च विन्दति ।
त्रिपदार्थपरिज्ञानं वेदान्तागमवाक्यजम् ॥७
श्रुत्वा गुरुमुखाद् योगं समभ्यस्य यमादिकम् ।
शिवध्यानपरोनित्यं प्रणवासक्तमानसः ॥८
देहदौर्व्वल्यवशतो यद्यधैर्य्यस्तनुंत्यजेत् ।
सदाशिवानुग्रहतो नन्दिना प्रेरितामुने ॥६
आतिवाहिकरूपिण्यो देवताः पञ्च विश्रुताः ।
अग्न्यहन्ताकृतः काश्चिज्ज्योतिः पञ्चवपुष्मती ।
अन्होऽभिमानिनी काचिच्छुक्लपक्षाभिमानि
उत्तरायणरूपाच पञ्चानुग्रहतत्परा ॥११
धूमा तमस्विनी रात्रिः कृष्णपक्षाभिमानिर्न
दक्षिणायनरूपाच कर्म्मानुष्ठानतत्परान् ।
गृहीत्वा त्रिदिवं यान्ति ते तु पुण्यक्षये
मानुषं लोकमासाद्य भजन्ते जन्म पूर्व्व ...ग्रुम् ॥३६
ताः पुनः पञ्चधा मार्गं विभज्यारभ्य ... ।
अग्न्यादिक्रमतो गृह्य सदा ...त्रा मस्तके ॥३७
मुक्तिञ्च परमां ... रुद्रसूक्तं भ्रुवो मध्ये स्पृशन् जपन् ।
एतदेव ...

मुक्तिघराटापथश्चेति वेदान्तानां विनिश्चियः ।
मुमुर्षोस्तत्रमन्दस्य यतेः सतूसंप्रदायिनः ॥१६
यतयः परितः स्थित्वा प्रणावादीन्यनुक्रमात् ।
उपदिश्यच वाक्यानि तातूपर्य्यंच समाहिताः ॥१७
वर्णयेयुर्य्यतेस्तस्य प्राणस्य विलयावधि ।
एतेषां सममेवात्र संस्कारक्रमउच्यते ॥१८
संस्कृतशरीराणां दौर्गत्यं नैव जायते ।
अ न्यस्य सर्व्वकर्म्माणि शिवाश्रयपरायतः ॥१६
कु दूषयतस्तेषां राज्ञो राष्ट्रञ्च नश्यति ।
य ग्रामवासिनस्तेऽपि भवेयु र्भृशदुःखिनः ॥२०
न तद्दोष परिहाराय ।
सन्न्या याथ चांते समारभ्यान्तं जपन् ।
प्रैषमात्रेण जपन् देवयजनं पूरयेत् ततः ॥२१
इति आत्म न्यायं कुर्य्युः संस्कारमुत्तमम् ।
॥ शिवपुराण य शुद्धादैरभ्यर्च्च्य कुसुमादिभिः ॥२२
मृतदेहसंस्कार णञ्च रुद्रसूक्तेनच क्रमात् ।
ये मुक्तायतयस्त स्थाप्य तज्जलेनाभिषिच्यच ॥२३
खननं खलु तेषां नि प्रणवेन प्रमृज्यच ।
पूर्णाहंभावमाश्रित्य ज्य पुनरन्यानिधार्य्यच ॥२४
ये तूपासनमार्गेण देः तदुक्तविधिना ततः ।
तेषां गतिविशेषञ्च भ [illegible] नेन च ॥२५
मुनिविज्ञप्तिमाकर्ण्य शक्तिपाणिः सुरारहा ।
माहात्यन्तरहस्यञ्चऋभुणाश्रुतमीश्वरात्।श्रीसुब्रह्म

रुद्राक्षमालाभरणैरलङ्कृत्यच मन्त्रतः ।
धूपितं समनूत्थाप्य शिक्योपरि निधायच ॥२७
पञ्चब्रह्ममयेस्थाप्यरथे संपूज्य तं रथम् ।
ओमाद्यैः पञ्चभि र्ब्रह्ममन्त्रैः सम्पादितैःक्रमात् ॥२८
सुगन्धिकुसुमै र्माल्यैरलङ्कृत्य समन्ततः ।
नृत्यवाद्यै र्ब्राह्मणानां वेदघोषैश्च सर्व्वतः ॥२९
ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्यग्रामप्राच्यामथापिवा ।
उदीच्यां पुण्यदेशेतु पुण्यवृक्षसमीपतः ॥३०
खनित्वा देवयजनं दण्डमात्रप्रमाणतः ।
प्रणवव्याहृतिभ्याञ्च प्रोक्ष्य चास्तीर्य्यच क्रमात् ॥३१
शमीपत्रैश्च सकुशैरुत्तराग्रांस्तदूर्द्ध्वतः ।
आस्तीर्य्य दर्भांस्ततूपीठं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥३२
प्रणवेन ब्रह्मभिश्च पञ्चगव्येन तां तनुम् ।
प्रोक्ष्याभिषिच्य रौद्रेण सूक्तेन प्रणवे न च ॥३३
शङ्खतोयेनाभिषिच्य मूर्द्ध्नि पुष्पं विनिक्षिपेत् ।
ओमित्यथ समुद्धृत्य स्वस्तिवाचनपूर्व्वकम् ॥३४
गर्त्तेयोगासनेस्थाप्य प्राङ्मुखं स्याद् यथा तथा ।
गन्धपुष्पैरलङ्कृत्य धूपं गुग्गुलुना ततः ॥३५
विष्णोहव्यमिति प्रोच्य रक्षस्वेति वदन्ददेत् ।
दण्डं दक्षिणहस्तेतु वामेदद्यात् कमण्डलुम् ॥३६
प्रजापतेन त्वदेतान्य न्यमन्त्रेण सोदकम् ।
ब्रह्मयज्ञानां प्रथममितिमन्त्रेण मस्तके ॥३७
स्पृशन् जप्त्वा रुद्रसूक्तं भ्रुवो र्मध्ये स्पृशन् जपन् ।

मानो महान्तमित्यादि चतुर्भि र्मस्तकं ततः ॥३८
नारिकेलेन निर्भिद्यादवटं पूरयेत् ततः ।
ब्रह्मभिः पञ्चभिः स्पृष्ट्वा जपेत् स्थलमनन्यधीः ॥३९
यो देवानामुपक्रम्य यः परः स महेश्वरः ।
इति जप्त्वा महादेवं संसारभेषजं शिवम् ॥ ०
सर्व्वज्ञमपराधीनं सर्व्वानुग्राहकं परम् ।
एकारत्निसमुत्सेधमरत्निद्वयविस्तृतम् ॥४१
मृदापीठं प्रकल्प्याथ गोमयेनोपलेपयेत् ।
चतुरस्रञ्च तन्मध्ये गन्धाक्षतसमन्वितैः ॥४२
सुगन्धिकुसुमै र्बिल्वैस्तुलस्याच समर्च्चयेत् ।
प्रणवेन ततो दत्वा धूपदीपौ पयो हविः ॥४३
दत्वा प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्यच पञ्चधा ।
प्रणवं द्वादशावृत्त्या सञ्जप्य प्रणमेत् ततः ॥४४
दिग्विदिक् क्रमतो दद्याद्ब्रह्मार्घ्यं प्रणवेनच ।
एवं दशाहपर्य्यन्तं विधिरेकादशेऽहनि ॥४५
संमार्ज्ज्य वेदिमालिप्य कृत्वा पुण्याहवाचनम् ।
प्रोक्ष्य पश्चिममारभ्य पूर्व्वान्तं पञ्चच क्रमात् ॥४६
मण्डलान्युत्तराशास्यः कुर्य्यात् स्वयमवस्थितः ।
प्रादेशमात्रं सङ्कल्प्यचतुरस्रञ्च मध्यतः ॥४७
विन्दु त्रिकोण षट्कोण वृत्ताकाराणि च क्रमात् ।
शंखञ्चपुरतः स्थाप्य पूजोक्तक्रममार्गतः ॥४८
प्राणानायम्य संकल्प्य पूजयिष्ये सुरेश्वरीः ।
देवताः पञ्च पूर्व्वोक्ता आतिवाहिकरूपिणीः ॥४९

सन्त्यज्योत्तरतो दर्भानऽपश्च संस्पृशेत् ततः ।
पश्चिमादि समारभ्य षडुत्थासन मार्गतः ।
मण्डलानि च तेष्वन्तः पुष्पाण्याधाय पीठवत् ।
ॐ ह्रीमित्युच्चार्य्याग्निरूपामातिवाहिकदेवताम् ॥५०॥
आवाहयामि नम इत्यन्तं सर्व्वत्र भावयेत् ।
स्थापनाद्यास्तु संदर्श्य मुद्राः प्रत्येकमादरात् ॥ ५१
ह्रां ह्रीं मित्यादिना कुर्य्यादासामङ्गानि च क्रमात् ।
पाशाङ्कुशाभयाभीष्टपाणिचन्द्रोपलप्रभाः ॥ ५२
रक्ताङ्गुलीयकच्छायारञ्जिताखिलदिङ्मुखाः ।
रक्ताम्बराधरकरपद्मपङ्कजशोभिताः ॥ ५३॥
त्रिनेत्रोल्लासिवदनपूर्णचन्द्रमनोहराः ।
माणिक्यमुकुटोद्भासिचन्द्रलेखावतंसिनीः ॥ ५४
कुण्डलामृष्टगण्डाश्च पीनोन्नतपयोधराः ।
हारकेयूरकटककाञ्चीदाममनोहराः ॥५५
तनुमध्याः पृथुश्रोण्यो रक्तदिव्याम्बरावृताः ।
माणिक्यमयमञ्जीर शिंजत्पदसरोरुहाः ॥५६
पादाङ्गुलीयकश्रेणीमंजुलातिमनोहराः ।
अनुग्रहेणामूर्त्तेन शिववत् किन्न साध्यते ॥ ५७
तस्माच्छक्त्यात्ममूर्त्तेन सर्व्वं साध्यंमहेशवत् ।
सर्व्वानुग्रहकर्त्रैव स्वीकृताः पञ्चमूर्त्तयः ॥५८
एवं ध्यात्वा तु ताः सर्व्वा अनुग्रहपराःशिवाः ।
पादयोः पाद्यमेतासांदद्याच्छंखोदविन्दुभिः । ५९
हस्तेष्वाचमनीयञ्च मौलिष्वर्घ्यं प्रदापयेत् ।

शंखोदविन्दुभिस्तासां स्नानकर्म्म च भावयेत् ॥ ६०
रक्ताम्बराणि दिव्यानि सोत्तरीयाणि दापयेत् ।
मुकुटादीन्यनर्घ्याणि दद्यादाभरणानि च ॥ ६१
सुवासितञ्च श्रीगन्धमक्षतांश्चातिशोभनान् ।
सुरभीणि मनोज्ञानि कुसुमानि च दापयेत् ॥६२
धूपञ्च परमामोदं साज्यवर्त्तिञ्च दीपकं ।
सर्व्वं समर्पयामीति प्रणवं ह्रीमुपक्रमात् ॥ ६३
नमोऽन्तञ्च ततो दद्यात् पायसं मधुना युतम् ।
साज्यशर्क्करया पूपकदलीगुडपूरितम् ॥ ६४
प्रत्येकं कदलीपत्रे भरितञ्च सुवासितम् ।
ॐ भूर्भुवः स्वरिति च प्रोक्षणादीनि कारयेत् ॥६५
ॐ ह्रीमितिस मुच्चार्य्य नैवेद्यं वन्हिजायया ।
पानीयं नम इत्युक्त्वा समर्घ्योद्वास्य पूर्व्वतः ॥ ६६
स्थलं विशोध्य गण्डूषाचमनार्घ्याणि दापयेत् ।
ताम्बूलं धूपदीपौ च प्रदक्षिणनमस्कृती ॥ ६७
विधाय प्रार्थयेदेताः शिरस्यञ्जलिमादधत् ।
श्रीमातरः सुप्रसन्नायतिं शिवपदैषिणां ॥ ६८
रक्षणीयं प्रभुवन्तु परमेशपदाब्जयोः ।
इति संप्रार्थ्य ताः सर्व्वा विसृज्य च यथागतं ॥ ६९
तासां प्रसादमुद्धृत्य कन्यकाभ्यः प्रदापयेत् ।
गवां वा जलमध्ये वा विक्षिपेन्नान्यथा क्वचित् ॥ ७०
अत्रायं पार्व्वणश्राद्धे नियमः प्रोच्यते मया ॥ ७१
कर्त्ता स्नात्वा धृतप्राण उपवीतीसमाहितः ।

सपवित्रकरस्त्वस्यां पुण्यतिथ्यामिति ब्रुवन् ॥ ७२
करिष्ये पार्व्वणश्राद्धमिति संकल्प्य चोत्तरे ।
दत्त्वा दर्भानुपस्पृश्य साभ्यङ्गकृतमज्जनान् ॥ ७३
आहूय चतुरो विप्रान् शिवभक्तान् दृढव्रतान् ।
विश्वेदेवार्थे भवता प्रसादः क्रियतामिति ॥ ७४
आत्मने भवता पश्चादन्तरात्मन इत्यपि ।
परमात्मन इत्येवं कृत्वा वरणमादरात् ॥ ७५
पादौ प्रक्षाल्य तेषान्तु प्राङ्मुखानुपवेश्य च ।
गन्धादिभिरलंकृत्य भोजयित्वा शिवाग्रतः ॥ ७६
गोमयेनोपालिप्यात्र दर्भान् प्रागग्रकल्पितान् ।
आस्तीर्य्य संयतप्राणः पिण्डानाञ्च प्रदानकम् ॥७७
करिष्य इति संकल्प्य मण्डलत्रयमर्च्चय च ।
आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमप्यतः ॥ ७८
चतुर्थ्यन्तं वदन् पश्चादिदं पिण्डमितीरयन् ।
ददामीति च सम्प्रोच्य दद्यात् पिण्डान् कुशोदकम् ॥७९
दत्त्वोत्थाय विधायाथ प्रदक्षिणनमस्कृती ।
कृत्वा दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणाञ्च यथाविधि ॥८०
नारायणबलिं कुर्य्यात् तस्मिन्नेव स्थले दिने ।
रक्षार्थमेव सर्व्वत्र विष्णोः पूजाविधिः स्मृतः ॥ ८१
कुर्य्याद्विष्णोर्महापूजां पायसान्नं निवेद्य च ।
द्वादशाथ समाहूय ब्राह्मणान् वेदपारगान् ॥ ८२
केशवादिभिरभ्यर्च्चय गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
उपानच्छत्रवस्त्रादि दत्त्वा तेभ्योऽथ भूतले । ८३

आस्तीर्य्य दर्भान् पूर्व्वाग्रान् भूः स्वाहा च भुवः सुवः।
प्रणवादि समुच्चार्य्य पायसान्नं वलिं हरेत् ॥ ८४
द्वादशाहे समुत्थाय प्रातः स्नात्वा कृतान्हिकः।
शिवभक्तान् यतीन् वापि ब्राह्मणान् वा शिवप्रियान् ८५
निमंत्र्य तान् समाहूय मध्यान्हेऽभ्यज्य चाप्लुतान्।
सन्निधौ परमेशस्य पञ्चावरणमार्गतः ॥ ८६
संपूज्य तस्य संस्थाप्य प्राणानायम्य च त्रिधा।
महासंकल्पमार्गेण संकल्प्याऽस्मद्गुरोरिह ॥ ८७
पूजां करिष्य इत्युक्त्वा ततो दर्भानुपस्पृशेत्।
पादौ प्रक्षाल्य चाचम्य स्वयं कर्त्ता च वाग्यतः ॥ ८८
तानासनेषु संस्थाप्य प्राङ्मुखान् भस्मभूषितान्।
सदाशिवादिक्रमतो ध्यात्वाष्टौ तत्रचेतरान् ८९
गुरुञ्च परमं तस्मात् परात्परगुरुं ततः।
परमेष्ठिगुरुं ध्यात्वा साम्वबुद्ध्या स्वनामतः ॥ ९०
इदमासनमित्युक्त्वा चासनानि समर्पयेत्।
प्रणवादि द्वितीयान्तंस्वस्वनाम समुच्चरन् ॥९१
आवाहयामि नम इत्यावाह्याघ्योंदकेन तु।
पाद्यमाचमनञ्चार्घ्यं वस्त्रगन्धाक्षतानपि ॥ ९२
दत्वा पुष्पैरलंकृत्य प्रणवाद्यैः स्वनामभिः।
सचतुर्थीनमोऽन्तैश्च सुगन्धिकुसुमैस्ततः ॥ ९३
धूपदीपौ प्रदत्त्वा च सकलाराधनं कृतम्।
संपूर्णमस्त्विति प्रोच्य नमस्कृत्य समुत्थितः ९४॥
पात्राणि कदलीपत्राण्यास्तीर्य्याद्भिर्विशोध्य च।

शुद्धान्नपायसापूपसूपव्यञ्जनपूर्व्वकान् ॥ ९५
दत्त्वा पदार्थान् कदलीनारिकेलगुड़ान्वितान् ।
पात्रासनानि च पृथग् दत्त्वा संप्रोक्ष्य च क्रमात् ॥ ९६
परिषिच्य च संप्रोक्ष्य विष्णोहव्यमितिब्रुवन् ।
रक्षस्वेति करस्पर्शं कारयित्वा समुत्थितः ॥ ७९
आपोशनं समर्प्याथ प्रार्थयेत् तानिदं प्रति ।
सदाशिवाद्यः प्रीतावरदाश्च भवन्तु मे ॥ ९८
ये देवा इति च ततो जप्त्वेदं साक्षतं त्यजेत् ।
नमस्कृत्य समुत्थाय सर्व्वत्रामृतमस्त्विति ॥९९
उक्त्वा प्रसाद्य च जपेद् गणानां त्वेत्युपक्रमात् ।
वेदादीन् रुद्रचमकौ रुद्रसूक्तांश्च पञ्च च ॥ १००
ब्राह्मणभोजनान्तश्च यावन्मन्त्रांश्च शाङ्करान् ।
दत्त्वोत्तरापोशानश्च हस्ताङ्घ्रिमुखशोधनम् १०१
कृत्वा चान्तश्चासनेषु स्थापयित्वा यथासुखम् ।
शुद्धोदकं प्रदत्त्वाथ कर्पूरादि यथोचितम् ॥ १०२
मुखवासं दक्षिणाञ्च पादुकामातपत्रकम् ।
व्यजनं फलकान् दण्डं वैणवञ्च प्रदाय तान् ॥ १०३
प्रदक्षिणनमस्कारैः सन्तोष्याशिषमावहन् ॥
पुनः प्रणम्य संप्रार्थ्य गुरुभक्तिमचञ्चलाम् ॥ १०४
सदाशिवाद्यः प्रीता गच्छन्तु च यथासुखम् ।
इत्युद्वास्य द्वारदेशावधि सम्यगनुव्रजन् ॥ १०५
निरुद्धस्तैः परावृत्य द्वाःस्थैर्विप्रैश्च वन्धुभिः ।
दीनानाथैश्च सहितो भुक्त्वा तिष्ठेद् यथासुखम् ॥ १०६

प्रत्यक्षमेवं कुर्व्वाणो गुर्व्वाराधनमुत्तमम् ।
इह भुक्त्वा महाभोगान् शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ १०

इति॥ श्रीशिवपुराणे कैलास संहितायां यतीनां मृत्यु संस्कारः समाप्तः ॥ अथ ब्रह्मानन्द पद्धतौ यतीनां संस्कार विधिं दर्शयति सिद्धयनन्तरं पुत्रादिः शिष्यो वा स्नात्वा अधिकार-सिद्धयर्थे वपनं कृच्छ्राचरणञ्च कुर्य्यात् ॥ तत्र संकल्पः। करिष्यमाण यति संस्काराधिकारार्थं कृच्छ्रत्रयात्मक-प्रायश्चित्तं प्रतिकृच्छ्रमेकैक गो निष्क्रय द्रव्यद्वारा अहमा-चरिष्य इति संकल्प पूर्व्वकं वपनं कुर्य्यात् ॥ पुत्रातिरिक्त-स्यवपनं नेति केचित् ॥ देश कालौ स्मृत्वा ब्रह्मीभूतनारा-यणरूपिणं भिक्षुंशौनकोक्त विधिना संस्करिष्य इति सक-ल्प्य । अव्रणं नवं कलशमादाय तीर्थोदकेनापूर्य्य तदुदकं गङ्गेचयमुने चैवगोदावरि सरस्वतिनर्मदे सिन्धु कावेरिजले ऽस्मिन् सन्निधिंकुरु। नारायणःपरं ब्रह्मतत्त्वं नारायणःपरः॥ नारायणः परंध्यानं ज्ञानं नारायणः परः। यच्चकिञ्चिज्ज-गत्सर्व्वं दृश्यते श्रूयतेपिवा । अन्तर्वहिश्चतत् सर्व्वंव्याप्य नारायणःस्थितः। देवदत्तमयः कश्चिद्ब्रह्मैव विकृतिं गतः। पूर्णब्रह्मैव संप्राप्त स्तस्यब्रह्म तदुच्यते ।
इत्येतैर्मन्त्रैः कलशमभिमन्त्र्य प्राणायाम पुरःसरं रौद्र मन्त्रै विष्णु सूक्तै रापोहिष्ठेति तिसृभिः यतेः स्नानं कारयित्वा पश्चात्तच्छरीरंवस्त्रचन्दनाद्युपचारै-रभ्यर्च्य शिक्यो परिशरीर मारोप्य गन्धपुष्पैरलंकृत्य मन्त्रघो-षैर्जयशब्दादिभिर्दुन्दुभिर्नादै भेरीरवैरपि वाद्यं कुर्य्यात् ।

ततो ग्रामात् प्रतीचीं मुदीचीं वा दिशं नीत्वा शुद्धदेशंसमा-
श्रयेत् ॥ नदीतीरेऽश्वत्थमूलेदेवायतने वा अधस्ता द्ब्रह्मवृक्ष-
स्यगर्तंकुर्यादिति यथाविधि । ततो भूमिंव्याहृतिभिः संप्रो
क्ष्य दण्ड प्रमाण मधो गर्त्ताचतुरस्रां देवयजन नाम्नीं
खनित्वा तन्मध्ये सूक्ष्म गर्त्तं सार्धहस्तपरिमितं कृत्वा
सप्तव्याहृतिभिः पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य ॥ जलसमाधिपक्षे
गर्तस्थाने महानदीं वा परिकल्प्य । तत्र पञ्चगव्यंप्रक्षिप्य
दक्षिणाग्रान् कुशानास्तीर्य्य सावित्र्याशरीरं संप्रोक्ष्य पुरुष-
सूक्तेन शंखोदकेन संस्नाप्य प्रणवेनाष्टोत्तरशतवारं स्नाप्य
षोडशोपचारैरभ्यर्च्य तुलस्यादिमिलित पुष्पमालादिभि-
रलंकृत्य विष्णोहव्यंरक्षस्वेति मन्त्रेण शरीरं गर्त्ते नद्यांवा
निधाय । इदं विष्णु विंचक्रमेत्रेधानिदधे पदं समूढमस्य
पांशुले स्वाहा इति मन्त्रेण दक्षिणहस्ते दण्डं त्रेधाकृत्वा
निधाय ॥ ॐ हं सः शुचि सद्वसुरन्तरिक्ष सद्धोता वेदिषद-
तिथिर्दुरोण सत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जागोजाऋतजा
अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ परेणनाकं निहितंगुहायां बिभ्राजते
यद्यतयो विशन्ति ॥ वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाःसंन्या-
स योगाद् यतयः शुद्धसत्वाः ते व्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्व्वे इति हृदये जपेत् ॥
ततः पुरुषसूक्तं भ्रुवो मध्ये जपेत् ॥ ततः ॐ व्रह्मयज्ञानां
प्रथमं पुरस्ताद्विशीमतः सुरुचोवेन आवः सबुन्ध्या उपमा
तस्यविष्णोःसतश्चयोनिमसतश्च विवः मूर्ध्नि जपेत् । ततः
ॐ विष्णोरराटमसि । विष्णोः पृष्ठमसि । विष्णोःश्नप्रेस्थो

विष्णोः स्यूरसि। विष्णोर्ध्रुवोसि वैष्णव मसि। विष्णवे त्वेति नाभौ जपेत्। ॐ देवस्यत्वा सवितुःप्रसवेश्विनो र्वाहुभ्यां पुष्णो हस्ताभ्या मिति कर्णयोः।

ॐ भूमि र्भूमि मगान् माता मातरमध्यगात्। भूयास्मपुत्रैः पशुभि र्योनो द्वेष्टि स भिद्यता मिति मन्त्रेण मूर्द्धानमश्मनापरशुना शंखेन नारिकेलेन वा भिंद्यात् शरीर भेदनं कर्तु मशक्तश्चेच्छिरसि गुड़ पिण्डमन्यद्वाफलं नारिकेलादि निधाय भिन्द्यादित्याचारः॥ दर्भैराच्छाद्य प्रणवेन देवयजनं लवणासिक तादिना पूरयेत्। नद्यादौ चेच्छिरो भेदनानन्तरं भूमि र्भूमि मित्यादिनाऽभिमन्त्रयदर्भै राच्छाद्य भूर्भुवः स्वरो मित्याभिमन्त्र्य पाषाणौ र्दृढं वद्धाजले महाह्रदे प्रणवेन स्वाहान्तेन भिक्षोर्देहं मोचयेत्॥ ततः कृताञ्जलिः पठेत्॥

अग्नि नाग्निः समिध्यते कवि र्गृह पतिर्युवा हव्यराट्जुह्वास्यः त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सत् गतासखा सख्या समिद्ध सेतुं मर्ज्जयन्त सुक्रतु पुरो वान माजिषु स्वेष्व क्षयेषु वाजिनं यज्ञेन यज्ञमजयन्त देवा स्तानि प्रथमान्यासन् ते ह नाकं महिमानः सचन्तः। यत्र पूर्व्वे साध्याः सन्ति देवाः॥ इति चतस्रऋः च पठेत्॥ इति विसर्ज्जनंः समाप्तम्॥ ततऋक्चतुष्टय पाठान्ते अश्वमेध सहस्रस्यफलं प्राप्तं भावयन्तः स्नानं कृत्वा॥ ॐ चित्तं स्रुक्। चित्त माज्यं। वाग् वेदिः। अधीतं बर्हिः। चेतोऽग्निः। विज्ञातमग्निः। वाक्पातिर्होता। मन उपवक्ता। प्राणो हविः। सामाध्वर्युः। वाचस्पते विधेनामन्। विधेमते नाम। विधे स्त्वम स्माकंनाम। वाच स्पतिःसोमम्

पिवतु । अस्मासुनृणां धातु स्वाहा ॥ पृथिवी होता । द्यौर ध्वर्य्युः । रुद्रो अग्निः । वृहस्पति रुपवक्ता । वाचस्पते वाचो वीर्य्येण । संभृततमेनायक्षसे । यज्ञमानाय वीर्य्यं । आसुवस्करस्मै वाचस्पतिः सोमं पिवतु । यजनादिन्द्र मि- न्द्रियायस्वाहा ॥ अग्निर्होता । अश्विनावध्वर्य्युः।त्वष्टाग्निः मित्र उपवक्ता । सोमः सोमस्य पुरोगाः । शुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः । श्रोतास्तुइन्द्रसोमाः ॥ वातातेहव श्रुतः स्वाहा सूर्य्यतेचक्षुः । वातं प्राणःद्यांपृष्ठं । अन्तरिक्षमात्माऽङ्गैर्यज्ञं पृथिवीं शरीरैः । वाचस्पतेच्छिद्रया वाचा । अच्छिद्रयाजुह्वा । दिव देवावृधं होत्रामेरयस्व स्वाहा ॥ महाहविर्होता सत्य हविरध्वर्य्युः । अच्युतयाजा अग्निः । अच्युतमना उपवक्ता अनाधृष्यश्चा प्रतिधृष्यश्च यज्ञस्याभिगरौ । अयास्य उद्- गाता । वाचस्पते हृद्विधेनामन्विध मेतेनाम विधेस्त्वमस्माकं नाम । वाचस्यतिः सोममयातु । मा दैव्यस्तन्तुश्छेदिमनुष्यः ममो दिवे नमः पृथिव्यै स्वाहा ॥ इति पश्चानु वाक् संग्रहः ॥ अतो देवा इति षड्ऋचो जपित्वा । अतो देवा अवन्तुनो। तद्विष्णोःपरमं पदं तद्विप्रासो इत्यादि मन्त्रं पठित्वा जन्मादि- सम्भावित पापे मुक्तावयं अश्वमेध सहस्रफलं प्राप्ता इति भावयन्तो नमस्कृत्य अवभृथवुद्धया स्नात्वा गन्धादि धृत्वा नैवेद्यशेषं गृहीत्वा आगमनोत्सवा गच्छेयुरुच्चैर्हरिस्मरणं कुर्य्यात् इति ॥ पुत्रश्वेत् प्रकेतुनेति अनुवाकंगर्त्तस्य हृदयस्य वा पश्चादुपविश्य होतृवदेकस्वरेण शंसेत् ॥ तत अग्निनाग्निः समिध्यते इत्यादि विशेषः ॥ ततः कर्त्ता स्ना-

त्वाचम्य सिद्धिंगतस्य ब्रह्मीभूतस्य नारायणरूपिणस्तृ-प्त्यर्थं तर्पणं करिष्य इति संकल्प्य सव्येन देवतीर्थेनैव ॐ आत्मानं तर्पयामि। ॐ अन्तरात्मानं तर्पयामि । ॐ परमात्मानं तर्पयामि ॥ इत्यावृत्याचतुर्व्वारं तर्पणं कुर्य्यात् ॥ ततः शुक्लपक्षमृतस्य केशवादि द्वादशनामभिः ॥ कृष्णपक्षेमृतस्य सङ्कर्षणादि द्वादश नामभि रित्येवं तर्पणं कुर्य्यात् तच्चकेशवं तर्पयामि इतिप्रकारेण द्वितीयान्त नामोच्चारण पुरःसरं तर्पयामीत्यादिना कुर्य्यात् ।इदं तर्पणं क्षीरेणेति केचित् । ततःतीरं प्राप्य धौतवस्त्रं परिधायाचम्य सिद्धिंगतस्य ब्रह्मी भूतस्य परमहंसस्य नारायणरूपिणस्तृप्त्यर्थं नारायण-पूजनं करिष्ये इति संकल्प्य । देवयजनोपरिनदीतीरे वा चतुरस्रां वेदिकां संपाद्य तत्रमृण्मयं लिङ्गंसंस्थाप्यालङ्कृत्य।अशक्तौ नदीजल एव तत् स्वरूपं विचिन्त्य वा पुरुष-सूक्तेन एकैकाच्चर्यान्ते नमो नारायणाय इतिमन्त्र सूक्त मन्त्रसहित षोडशऋग्भिरावाहनादि षोड़शोपचारैः पूजां कृत्वा घृतमिश्रपायसवलिं निवेद्य घृतदीपञ्च निवेद्य तं निवेदितपायसं नद्यादिजले निक्षिपेत्॥ ततः शंखेशुद्धजल मादाय तत्रगन्धपुष्पतुलसीदलफलादिकञ्च प्रक्षिप्य ॥ ॐ ब्रह्मणेनमः । इदमर्घ्यं समर्पयामीत्येवमष्टावर्घ्याणि दत्वा गृहं गच्छेत् ॥ इति प्रथमदिनाद्दशदिनपर्य्यंतं क्षीरं तर्पणे पूजनेपायसं वलिदान दीपदानार्घ्यदानादि प्रत्यहं कुर्य्यात्॥ तत एकादशेन्हि पार्व्वण विधिः । तत्र प्रयोगः॥एकादशाहे पुत्रःस्नातःकृत नित्य क्रियो मध्यान्हेविप्रानाहूयनद्यादौगत्वा

तिलतर्पणं कृत्वा देशकालौ स्मृत्वा। प्राचीनावीती काश्यप गोत्रस्य केशवशर्म्मणः मम ब्रह्मीभूतस्य पितुः करिष्यमाण दर्शादि सर्व्व श्राद्धाधिकारार्थं मद्य पार्व्वण श्राद्धं करिष्ये॥ इति संकल्प्य॥ यज्ञोपवीती पुरूरवाद्रवसंज्ञकविश्वेदेवार्थं द्वावेकं वा ब्राह्मणं निमन्त्र्य प्राचीनावीती अस्मत् पितुः ब्रह्मीभूत गोविन्द शर्म्मणः काश्यप गोत्रस्य वसुरूपस्य स्थाने क्षणः क्रियतां॥ पितामहस्य प्रपितामहस्य स्थाने इत्यादि॥ विप्रैक पक्षे ब्रह्मीभूत पितृ पितामहप्रपितामहाना मित्यादि दर्श श्राद्ध वत् पित्रादि त्रीनुद्दिश्य पार्व्वण विधिनैव श्राद्धं समाप्य यथा धिकारं वैश्वदेवादि कृत्वा सुहृद्यतीन् भोजयेदितिपुत्रादन्यःशिष्यःकर्त्ताचेन्नद्यादौगत्वायज्ञोपवीत्येव आत्मानंतर्पयामि अन्तरात्मानं तर्पयामि परमात्मानं तर्पयामि इति देवतीर्थेनैकैकमञ्जलिं दत्वा। गृहमेत्य प्राणानायम्य देशकालौस्मृत्वा ब्रह्मीभूतस्य गुरोः प्रत्यब्दादि श्राद्धाधिकार सिध्यर्थं मद्यपार्व्वण श्राद्धं करिष्ये इति संकल्प्य। साधु रु रु संज्ञक विश्वेदेवार्थे क्षणः क्रियतां। विप्रत्रयं इति विप्र द्वय मेकं वा। निमन्त्र्यसम्बन्धनामाद्युल्लेख वर्जं गुरोः कर्त्तव्य-पार्व्वणश्राद्धे आत्मनः स्थानेक्षणःक्रियतामिति क्षणं दत्वा॥ एवं अन्तरात्मनः स्थाने क्षणः क्रियतां। एवं परमात्मनः स्थाने क्षणः क्रियतां इति॥ एक विप्र पक्षेतु आत्मान्तरात्म परमात्मनां स्थाने क्षणः क्रियता मिति बिशेषः। ततो ब्राह्मणान्कृतशौचानाचान्तान्प्राङ्मुखान्उदङ्मुखान्वाउपवेश्य साधु रुरुसंज्ञकानां विश्वेदेवाना मिदमासनमित्यादि

विश्वेदेवार्च्चनं विधाय यज्ञोपवीत्येव आत्मनः इदमासनं स्वाहा नमम इति यवसहित ऋजुदर्भद्वयमासनं दक्षिणतो दत्वा ॥ एवमग्रेपि अन्तरात्मनः इदमासनं स्वाहा नमम। परमात्मनः इदमासनं स्वाहा नमम ॥ ततः प्रागग्र दर्भो-परिपत्रत्रयं प्राक्संस्थं आमाद्यप्रतिपात्रे दर्भद्वया-न्विते जलमासिच्य ॐ शन्नोदेवी रिति सकृदनुमन्त्र्य। ॐ यवोसि सोमदेवत्यो गोसवो देव निर्म्मितः प्रत्नवद्भिः पृक्तः स्वाहा आत्मने इमान् लोकान् प्रीणा हिनःस्वाहा नमम। इति मन्त्रेण प्रतिपात्रं यवान् विकिरेत् ॥ ततो द्वितीय-पात्रे अन्तरात्मने। एवं तृतीय पात्रे परमात्मने इत्यूहः॥ तुष्णीं वा गन्धपुष्पाणिच प्रक्षिप्य स्वाहा इति निवेद्य॥ सर्व्वत्र क्षिपेत्। ॐ आत्मन् इदमर्घ्यं स्वाहा नमम। अन्तरात्मन् इदमर्घ्यंस्वाहा नमम।परमात्मन् इदमर्घ्यंस्वाहा नमम। इत्यर्घ्यं दत्वा ततो गन्धादि दानं कुर्यात् आ-त्मन एष गन्धः स्वाहा नमम। अन्तरात्मन एष ग-न्धः स्वाहा नमम॥ परमात्मन एष गन्धः स्वाहा नमम। एवं इति पुष्पाणि एष धूपः एष दीपः। इदमाच्छादनं॥ इत्यभ्यर्च्च्य॥ ततो निहन्मीत्यादि मन्त्रेण सर्व्वत्र ब्राह्मणाग्रे मण्डलादिकं कृत्वा भोजनपात्राण्यासाद्य उपस्तीर्य्य भोज-नार्थादन्नात् किञ्चिदुद्धृत्य घृताक्तं कृत्वा। आत्मने स्वाहा अन्तरात्मने स्वाहा परमात्मनेस्वाहेति॥ यथा शक्ति अग्नौकरणपाणिषु हुत्वा। अत्राग्नौकरणन्नास्तीति केचित्॥ ततोऽन्नादि परिवेष्य गायत्र्या प्रोक्ष्य प्रणवेन वा अ-

न्नादिकं सर्व्वत्र परिवेष्य । पृथिवीते । इदं विष्णु र्विच-
क्रमे । विष्णोहव्यं ॥ साधु रुरु संज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यः॥
सोपकरण मिदमन्नं स्वाहा नमम। आत्मने इदमन्नं स्वाहा
नमम । अन्तरात्मने इदमन्नं स्वाहा नमम । परमात्मने
इदमन्नं स्वाहा नमम । त्यागं कृत्वा ब्रह्मार्पणं । एको
विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः । त्रीन् लोकान् व्याप्य
भूतात्मा भुंक्ते विश्वभुगव्ययः । अनेन ब्राह्मण भोजनेन
नारायणः प्रीयताम् ॥ ओं तत् सत् तत अपां मेध्य मिति
वहिराहृत्य अपहतेति प्रागग्रामेकां रेखां कृत्वा मार्ज्जयन्ता
मात्मनः। मार्ज्जयन्ता मन्तरात्मनः। मार्ज्जयन्तां परमात्मनः॥
इति दर्भमूल मध्याग्रेषु त्रिषुस्थलेषु जलं निनीय ॥
तत उत्तान हस्तेनाङ्गुल्यग्रेण पिण्डं देयं ॥ ओं आत्मन्
अयंते पिण्डः स्वाहा नमम । कुशमुलेदद्यात् । ओं अ-
न्तरात्मन् अयन्ते पिण्डः स्वाहा नमम । एवं ओं परमा-
त्मन् अयन्ते पिण्डः स्वाहा नमम ॥ इति पिण्डत्रयम्
दत्वा तुष्णीं गन्ध पुष्पताम्बूलादिः पिण्डोपरिदत्वा तुष्णी
मनुमन्त्रणादि पिण्ड प्रवाहणान्तं कर्म्म कृत्वा
दक्षिणोत्सर्गमच्छिद्राव धारणं हरि कीर्त्तनं ब्राह्मण विस-
र्ज्जनञ्च कार्य्यं ॥ द्विजेभ्यो ताम्बूलदक्षिणां दत्वा नमस्कृत्य
विसृज्य वैश्वदेवादि कृत्वा सुहृद्भृत्यादिभ्यो भोज्यं दद्यात्।
इति शिष्यं प्रति पुत्रंप्रतिवा पार्व्वण प्रयोगः ॥ततो द्वादशाहे
नारायण वलिं कुर्य्यात् । तत्र प्रयोगः । प्रातः कृत्याद्य-
नन्तरं नद्यादौ गत्वा कृत नित्य क्रियः सन् पूर्व्ववत् आत्मा-

दीनां तर्पणं कृत्वा गृहे आगत्यमासाद्युल्लिख्य ब्रह्मी भूतस्य गुरोः सिद्धि दिनमारभ्य द्वादशेऽहानि विष्णुकेशवादि द्वादश रूपिणो गुरोः संभावित सर्व्व पापक्षय पूर्व्वक विष्णु-लोका वाप्ति द्वारा श्रीनारायण प्रीत्यर्थं नारायण वलिमहं करिष्ये । इति संकल्प्य ॥

कृष्ण पक्षे मृतस्यतु केशवादि स्थाने संकर्षणादि द्वादश नामोल्लेखः ॥ तत स्त्रयो दशावरान् यतीन् तदसंभवे त्रयोदश विप्रान् वा सपत्नीकत्व साधुत्वादिगुणकान्निमन्त्रयेत् तत्र शुक्ल पक्षे केशव रूपि गुर्व्वर्थे भवद्भिः क्षणः कर्त्तव्यः ॥

॥ इति ब्रह्मानन्दीय पद्धतौ ॥

कामरुप मठस्थ पद्धतौ यदुक्तं तदाह ।

संकल्पानन्तरं स्वशाखोक्त पद्धति रीत्या क्रमेण पञ्च भू संस्कारं कृत्वा स्थण्डिलं निर्म्माय तत्राग्निं प्रतिष्ठाप्य वृहत् पात्रे यथेष्टं पायसं श्रपयित्वा उदीच्यां संस्थाप्य अग्नेरग्रे शालग्रामादि संस्थाप्य ॐ सहस्र शीर्षेत्यादि प्रति मन्त्रान्ते ॐ नमो नारायणायस्वाहा इत्येवं क्रमेण षोडशमन्त्रेण षोडशोपचारैः विष्णुं सं पूज्य पायसेन हूत्वा ॥ तथा च भूः अग्नये स्वाहा इदमग्नये ॐ भुवः सोमाय स्वाहा इदं सोमाय । ॐ स्वः सूर्य्याय स्वाहा इदं सूर्य्याय ॐ भूर्भुवः स्वः प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये । ॐ अतो देवा अवन्तुनो यतो विष्णु र्विचक्रमे पृथिव्याः सप्तधामभि रिदं विष्णवे स्वाहा । ॐ इदं विष्णु र्विचक्रमे इत्यादि विष्णवे स्वाहा ॥ ॐ त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णु र्गोपादाभ्यः

ततो धर्म्माणिधरान् इदं विष्णवे स्वाहा ॥ ॐ विष्णोः कर्म्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे इदं विष्णवे स्वाहा ॐ तद्विष्णोः परमं पदमित्यादि इदं विष्णवे स्वाहा ॐ तद्विप्रासो विपन्नवो जागृवांसः समिन्धते विष्णो र्यत् परमं पदं इदं विष्णवे स्वाहा ॥ ॐ सहस्र शीर्षेत्यादि मन्त्रेण ॐ नमोनारायणाय स्वाहा ॥ प्रत्येकेन दद्यात् ॥इति ब्रह्मानन्दीय पद्धतौ ॥

शुक्ल पक्षे नारायण । माधव । गोविन्द । विष्णु मधुसूदन । त्रिविक्रम । वामन । श्रीधर । हृषीकेश । पद्म नाभ । दामोदर रूपिणः ॥ कृष्ण पक्षेतु ॥ संकर्षण वासुदेव । प्रद्युम्न । अनिरुद्ध । पुरुषोत्तम । अधोक्षज । नर-सिंह । अच्युत । जनार्द्दन । उपेन्द्र । हरि । कृष्ण । इति द्वादश विप्रान्निमन्त्र्य ॥ त्रयोदश विप्रा नात्म संस्थत्व जितेन्द्रियत्व गुणकान् विष्णवर्थे भवद्भिः क्षणः कर्त्तव्यः ॥ इति निमन्त्र्य ॥ पादान्प्रक्षाल्य प्राङ्मुखानुपवेशयेत् ॥ ततो ब्राह्मग्रे होम स्थानं प्रकल्प्य तत्रस्थण्डिले यत्र क्वचा ग्नि मिति विधिनाग्निं प्रतिष्ठाप्य पायसमष्टा त्रिंशदाहुति पर्य्याप्त पुरुषाहार पर्य्याप्तं विष्णु नैवेद्यार्थश्चश्रपयित्वाऽभि घार्य्य प्राची मुदीचीं वा उद्वास्य प्रतिष्ठितमभिघार्य्याग्नि समिद्धेत्याद्यग्नि मुखान्तं कुर्य्यात् ॥ कर्त्ता आश्वलायन श्चेत् स्थण्डिलादि करिष्येइयाद्याग्नि ध्यानान्तेऽन्वा दद्यात्॥ समिद्द्वय मादाय क्रियमाणे नारायण वलि होमे देवता परिग्रहार्थ मन्वाधानं करिष्ये ॥ अस्मिन्नन्वाहितेऽग्ना

वित्यादि चक्षुषी आज्येनेत्यन्त मुक्त्वाऽत्र प्रधान मग्निं वायुं सूर्य्यं प्रजापतिश्च व्यस्त समस्ताभि र्व्याहृतिभिरेकैकया पायसाहुत्या केशवादि द्वादशदेवताः । कृष्णोतु संकर्षणादि द्वादश देवता एकैकया पायसाहुत्या शेषेणेत्यादि पूर्णपात्र निधानान्ते द्विपञ्चाशद धिकशतमुष्टीःतुष्णीं निरूप्यावघात्या दि पायसं श्रपयित्वा इत्याज्य भागान्तं कुर्य्यात् इति विशेषः ततोऽग्रेनाग्नि शालग्रामे विष्णु पुरूष सूक्तेन प्रति ऋचं ओं नमो नारायणाय इत्यन्ते षोडशोपचारैरभ्यर्च्याग्नि समीप मेत्या वदान संपत्त्या श्रुचा हस्तेनवा होमं कुर्य्यात् तत्र क्रमः ॥ ओं भूः स्वाहा । ओं भुवः स्वाहा । ओं स्वः स्वाहा ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहा । ओं अतो देवाभिः स्वाहा ओं विष्णवे स्वाहा । इदं विष्णवे स्वाहा । ओं त्रीणिपत स्वाहा । विष्णोःकः स्वाहा ॥ ओं तद्विष्णोः तं स्वाहा । ओं तद्विप्राः पद स्वाहा । ओं सहस्रशीर्षं स्वाहा ओं नारायणाय इदमिति षोडशेषु व पुरुष त्र्ःति स्वाहा ॥ ओं त्रिपादूर्ध्वंभि स्वाहा । ओं तस्माद्वि० पुर० स्वाहा । ओं यत् पुरुषेण० विः स्वाहा ओं तं यज्ञ० ये स्वाहा । ओं तस्माद् यज्ञात् सर्व्व हुत सव्ये स्वाहा । ओं तस्माद् यज्ञात् सर्व्व हुत ऋच० त० स्वाहा । ओं तस्माद श्वाय श्वा०यःस्वाहा । ओं यत् पुरूषंव्यते स्वाहा । ओं ब्राह्मणो ऽस्य०त स्वाहा । ओं चन्द्रमा०त स्वाहा । ओं यज्ञेन देवा० स्वाहा ॥ इति पुरूष सूक्तेन होमउक्तः ॥ ततो केशवादि नारायण रूपिभ्यो होमं कुर्य्यात् ॥ शुक्ल पक्षेऽ

ओं केशवाय नमः स्वाहा १॥ यथा लिङ्गं त्यागः ॥ ओं नानारायणाय॥२ओं माधवाय३ ओं गोविन्दाय ४ओंविष्णवे ५ ओं मधुसूदनाय॥६ ओं त्रिविक्रमाय॥७ओं वामनाय॥८ ओं श्रीधराय॥९ ओं हृषीकेशाय॥१० ओं पद्मनाभाय॥११ ओं दामोदराय ॥१२ इत्यष्टा त्रिंशदाहुतीः पायसेन हुत्वा॥ कृष्णपक्षे मृतस्य । संकर्षणादि नामभ्योः जुहुयात् ॥ ओं संकर्षणाय ॥१॥ ओं वासुदेवाय ॥२ ओं प्रद्युम्नाय॥३ ओं अनिरुद्धाय ॥४ ओं पुरुषोत्तमाय ॥५ ओं अधोक्षजाय ॥६ ओं नरसिंहाय ॥७ ओं अच्युताय ॥ ८ ओं जनार्दनाय॥९ओं उपेन्द्राय॥१० ओंहरये ॥११ओं कृष्णाय नमः स्वाहा॥१२ ततः स्विष्टिकृदादितंत्रहोमशेषं समाप्य ॥ पुनर्विष्णुं संपूज्य ।. ओं नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् विष्णवे नमः इदमर्घ्यं समर्पयामि ॥ इत्यर्घ्यंदत्वा ॥ हुत शेषेण पायसेन पूर्वोक्त मन्त्रेण विष्णवे नमइमंवलिं समर्पयामि । इतिवलिंदद्यात्॥ ततो निमन्त्रित व्राह्मणान् पूजयेत् । यथा केशव रूपिणे गुरवेनमः।इदमासनं॥एवं नारायण रूपिणे।माधव रुपिणे हृषीकेश रूपिणे पद्मनाभरूपिणे।दामोदररूपिणे॥इत्यर्घ्यसनं दत्वा। कृष्णपक्षेतु।संकर्षण रूपिणे विष्णवेनमः। इदमर्घ्यं समर्पयामि । इत्यर्घ्यंदत्वा । वासुदेव रूपिणे । प्रद्युम्नरूपिणे । अनिरूद्ध रूपिणे । अधोक्षज रूपिणे । नरसिंह रूपिणे । अच्युत रूपिणे । जनार्दन रूपिणे उपेन्द्र रूपिणे । हर रूपिणे । कृष्ण रूपिणे। गुरवे-

नमः ॥ एवं गन्धपुष्पधूपदीप नैवेद्याच्छादनानिदत्वा ॥ त्रयोदश विप्राग्रेपुरुष सूक्तेन प्रतिऋचान्ते विष्णवेनमः ॥ विष्णुं आवाहयामि।एवं आसनादि दीपान्तोपचारैरभ्यर्च्य चतुरस्त्रमण्डलोपरि भोजन पात्राण्यासाद्योपस्तीर्य्य विशिष्ट पायसादि भोज्यद्रव्यं पात्रेषु परिवेश्य गायत्र्यातत्तत् पात्रस्थमन्नं प्रोक्ष्यपृथिवीते पात्रं । इदं विष्णुरिति मन्त्राभ्यामुपस्पृश्य तत्तद्रूपि गुरुपदेन विष्णूद्देशेनच तत्तत् पात्रस्थमन्नंत्यक्त्वा अतोदेवा इतिषट्ऋचं जपित्वा ओंतद्ब्रह्म।ओं तद्वायुः। ओं तदात्मा ओं तत् सत्यं । ओंतत् सर्व्वं ओं तत् पुरोनमः ॥ओं अन्तश्चरसिभूतेषु गुहायांविश्वतो मुखः त्वंयज्ञस्त्वंवषट्कारस्त्व मिन्द्रस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिस्त्वमापआपोज्योतिरसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरोम् ॥ इत्यनुवाकं जपेत्।ततो ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविरित्यादि पठित्वा। भोजनकाले गीतादिकं पठेत् ॥ आपोशनादि काले चन्द्रमामनसाजात इतिऋचमुक्त्वा प्राणायस्वाहेत्यादि मन्त्रेण प्राणाहुती र्ग्राहयित्वा अपेक्षितं याचितमित्यादिभिः संप्रार्थ्य। अथ ह वै पुरुषो नारायणोऽकामयत इत्यादि कामोपनिषद्भाग नारायणो पनिषद्भागांच्छ्रावयेत्॥ततःक्षुतृप्तेषु पुनःओं तद्ब्रह्मेत्यनुवाकं जपित्वा तृप्ताःस्थइति पृष्टोत्तरापोशनं दद्यात् ॥ तत आचान्तेषु उपविष्टेषु द्विजोच्छिष्टसन्निधौ प्राङ्मुख उपविश्य तत्र प्रागग्रान् दर्भानास्तीर्य्य तेषु ओं नमो नारायणाय स्वाहा इत्यष्टाक्षरेण। क्षतोदकं दत्वा ॥ॐ केशव स्वरूपिणे गुरवेऽयं पिण्डः स्वाहा नमम॥ इत्येवं द्वादश नामभिर्द्वादशपिण्डान्

पायसेन दद्यात् । यद्वा ओं भूःस्वधा भुवः स्वधा सुवः स्वधेति बौधायनोक्तै स्त्रिभि र्मन्त्रैः केशवादि द्वादश मूर्त्तिरूपिणेऽयं पिण्डः स्वाहा नमम इत्येवं मन्त्रैः त्रीन् पिण्डान् पायसेन दद्यात् ॥ कृष्ण पक्षेतु संकर्षणादि द्वादश रूपिणे गुरवेऽयं पिण्डः स्वाहा नमम ॥ततः पूर्व्ववदक्षतोदकं दत्वा पिण्डेषु विष्णुं संपूज्य पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा विष्णवर्थे त्रयोदश द्विजाय । नाभ्याआसीति मन्त्रेण फलं दत्वा॥ सप्तास्यासन्निति मन्त्रेण ताम्बूलं दत्वा ॥ यज्ञेनेति मन्त्रेण दक्षिणां दत्वा ॥ सर्व्वान् प्रदक्षिणीकृत्य साष्टाङ्गं प्रणमेत् ॥ यथा शक्त्यनुव्रज्य हर्ष पुरःसरंतान् प्रेषयेत् ॥ नारायण वलि काले पूजितां विष्णुमूर्त्तिं माचार्य्याय दद्यात् ॥ इत्याचारः केषांचित् । ततः कर्म्मेश्वरार्पणं कृत्वा सुहृद्युतो भुञ्जीत ॥ एताव द्विस्तर प्रयोगाशक्तौ बौधायनोक्त व्याहृति होमः वलित्रयमात्र सहितो वा प्रयोगः ॥एतै र्मन्त्रैः समिदाज्ययो रपि प्रत्येकं होम इति केचित् ॥ तत्र मूलं चिन्त्यं ॥ इति बौधायन शौनकयमस्मृत्यनुसार्य्याचारानु गृहीतो नारायण वलि प्रयोगः ॥ अथ द्वादशाहे वा यथा चारं समाराधनं । तत्रायं प्रयोगः । गुरुचतुष्टय केशवादीनाञ्च प्रत्येक मेकैक इत्येव षोडश ब्राह्मण पक्षमभि प्रेत्य उच्यते ॥ तत्र अयं प्रयोगः ॥ प्रातर्होमोत्तरं ब्रह्मीभूतस्य गुरोः समाराधने गुर्व्व र्थे भवद्भिः क्षणः कर्त्तव्यः एवं परम गुर्व्वर्थे भवद्भिः क्षणः कर्त्तव्यः परमेष्टि गुर्व्वर्थे भवद्भिः क्षणः कर्त्तव्यः । एवं परा पर गुर्व्वर्थे भवद्भिः क्षणःकर्त्तव्यः यद्वा ॥

विश्वरूप धराचार्य्यार्थे भवद्भिः क्षणः कर्त्तव्यः ॥ ततो गुरु त्रयमिति चतुरो ब्राह्मणा न्निमन्त्र्य। ततः केशवार्थे क्षणःइत्यादि॥० कृष्णपक्षेतु संकर्षणार्थे भवद्भिः क्षणः कर्त्तव्यः ॥ इत्येवं द्वादश विप्रान्निमन्त्र्य मध्यान्हे विप्रानाहूय ॥ कर्त्ता शुचिराचम्य पवित्रपाणिः प्राणानायम्य देश कालौ स्मृत्वा श्रीनारायण प्रीत्यर्थं ब्रह्मी भूतस्य गुरोराराधनं करिष्ये। इति संकल्प्य ॥ गन्धाक्षत तुलसी कर्पूरमिश्र जलेन वरानु क्रमेण तेषां पाद प्रक्षालनं कृत्वा तानाचामय्य स्वयञ्चाचम्य पादप्रक्षालनोदकं पात्रान्तरे गृहीत्वा तत् पादौ साक्षत गन्ध पुष्प तुलसीदलैरभ्यर्च्च्य ॥

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजबोध युक्तं। योगीन्द्रमीड्यं भवरोग वैद्यं श्रीमद् गुरुं नित्यमहं नमामीति नमस्कुर्य्यात् ॥ एवं सर्व्वेषां पूजां कृत्वा गन्धादिभिः तत् पात्रमलंकृत्य देव सन्निधौ संस्थाप्य कुशासनेषु प्राङ्मुखान् वा उपवेश्य पुरुष सूक्तेन प्रत्यृचं ओं नारायणायेति मन्त्र सहितमा वाहनादिषोडशोपचारैः पदार्थानुसमये नाभ्यर्च्चयेत् ॥ यद्वा ॥ गन्ध पुष्पधूपदीपाच्छादनान्ता पूजा द्रष्टव्या ॥ ततः सर्व्वेषुपात्रेषु पायसादि विशिष्टद्रव्यं साज्यं व्यञ्जन सहितञ्च परिवेश्य गायत्र्या प्रोक्ष्य गुरवे इदमन्नं परिविष्टं परिवेक्षमाणञ्चातृप्तेः स्वाहा हव्यं नमम ॥ एवं परम गुरवे इदमन्नं० ॥ परमेष्ठिगुरवे इदमन्नं०। परा पर गुरवे इदमन्नं०। विश्वरुपधराचार्य्याय वा आदौ ततो गुरु त्रयं ॥ ततःकेशवाय इदमन्नं परिवेक्ष्यमाणञ्चा तृप्तेः

स्वाहा नमम॥ इत्यादिदामोदरान्तायनिवेदयेत्॥कृष्णापचेतु संकर्षणायइदमन्नं परिविष्टं परिवेद्यमाणञ्चा तृप्तेःस्वाहा नमम । इति सर्व्वत्रान्न त्यागं कृत्वा॥ ओं तद्ब्रह्मइत्यादि पूर्व्वोक्तापोशनोत्तर माचान्तेषू पविष्टेषु विशिष्टताम्बूलदक्षिणा-वस्त्रादिभिरभ्यर्च्च्य उपविष्टेष्वेव तेषु गुर्व्वाराधनाङ्गभूतं तीर्थ-पूजनं करिष्ये ॥ चतुरस्रं मण्डलं गोमयेनोपलिप्य तत्र रङ्ग वल्यादिभिरभ्यर्च्च्यालंकृत्य तन्मण्डले धान्योपरि पादो-दककलशंसंस्थाप्यतत्र गन्धादिभिः सर्व्वतीर्थान्यावाहयित्वा पुरुष सूक्तेन प्रति ऋचं तीर्थराजायनमः । इत्यन्तेन षोड-शोपचारैः अभ्यर्च्च्य तत् पात्रं शिरसि धृत्वा ॥ लोकः सरस्वत्या यन्त्येष वै देवयानः पन्थास्तमेवान्वारो हन्त्या क्रोशन्तोयान्त्य वर्त्तिमेवान्यास्मन् प्रतिषज्य प्रतिष्ठां गच्छान्ति। यदा दशशतं कुर्व्वन्त्यथैक मुत्थानं शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्ये वेन्द्रि प्रतितिष्ठान्ति ॥ यदाशतं सहस्रं कुर्व्वन्त्य थैक मुत्थानं सहसम्मितोवा ॥ असौलोके भूमेवलोकमभि-जयन्ति । यदेषां प्रमीय यदा वा जीयेरन्नथैक मुत्थानं तद्धितार्थं ॥ इत्यनुवाक शेषं ॥ भीषास्माद्वातः पवते । इत्य नुवाकश्च जपित्वा ॥ हरिकीर्त्तन पुरः सरं सहर्षं नृत्यञ्च कृत्वा ॥ तत् पात्रं पुनर्मण्डले संस्थाप्य चन्दनाक्षत पुष्पा-णि पूजावशिष्टानि वन्धुभिः सहस्वयं धृत्वा विप्रान् प्रदक्षि-णीकृत्य ॥ आनन्द मानन्द० ॥ गुरुर्ब्रह्मा गुरुरित्यादि मन्त्रै र्द्विजांस्तीर्थराजञ्च नमस्कृत्य गुर्व्वर्थे विप्रहस्ते पादो-दक पात्रं दत्वा तदाज्ञया तदत्त मन्त्रेण गृन्हीयात् ॥

तत्र मन्त्रः ॥ अविद्यामूल शमनं सर्व्वपाप प्रणाशनं गुरोः पादो दकं पीत्वा संसारमल नाशनं पुत्रादि कामनायान्तु । शोषणं पापसङ्घस्य दीपनं ज्ञान चेतसः ॥ गुरोः पादोदकं चित्रं पुत्र पौत्र विवर्द्धनं ॥ इति गृह्णीयात् ॥ तान् पुनः प्रणम्य तानन्यांश्च दक्षिणाभि स्तोषयित्वा सम्मानपुरः सरंताननुव्रज्य कर्म्मेश्वरार्पणं कृत्वा सुहृद्युतो भुञ्जीतेति । ततः प्राप्तेदर्शे महालये तीर्थे प्रयुक्त श्राद्धानि कुर्य्यात् । प्रति मासमेवाराधनं॥ प्रत्यब्दं पार्व्वणोत्तमञ्चा राधनञ्चैवमेव ॥ इत्थं करणाशक्तौ यथा शक्ति ब्राह्मणानाहूयपादप्रक्षालन पूर्व्वकं गन्धादिभिरभ्यर्च्च्य भोजयेदिति ॥ इति नागर खण्डानुसार्य्याचारानु गृहीत आराधना प्रयोगः ॥

॥ अथ यति संस्कारोप योगि किञ्चिन्निर्णयः ॥ तत्रयमः ॥ दण्ड ग्रहण मात्रेण तत्त्वं नैवोपजायते । प्रेतत्वस्य विमोक्षार्थं षोडश श्राद्धिको विधिः१॥ पिण्डोदकं नवान्नादिक्षुत्तृष्णा विनिवृत्तये । सपिण्डीकरणं श्राद्धं पितृत्व प्राप्तये विधिः२॥ अवस्थात्रय हीनानां यतीनां द्वादशे हनि । श्राद्धाधिकार सिद्ध्यर्थं पार्व्वणान्तु सुतश्चरेत्३॥ नामगोत्र संवन्ध रूपावस्थात्रय प्रच्युतानां यतीनां पूर्व्वसम्वन्ध नाम गोत्रोल्लेखन क्रियमाण प्रत्यब्द दर्शादि श्राद्धेषूद्देश्यत्व सिद्ध्यर्थमित्यर्थः ॥ वसिष्ठः ॥ चतुर्विधानां भिक्षूणां ज्ञातिवन्धुसुतादिभिः । एकादशेऽन्हि कर्त्तव्यं श्राद्धं तेषान्तु पार्व्वणम्४ सत्रवः ॥ एकोद्दिष्टं जलं पिण्ड मशौचं प्रेत सत्क्रियाम् ।

न कुर्य्यात् पार्व्वणादन्य द्ब्रह्मीभूत परिव्रजे ॥५ इति ॥
पुलस्त्यः॥ कुटीचकन्तु प्रदहेत् पूरयेत्तु वहूदकम् ॥
हंसं जले विनिक्षिप्य परहंसं प्रकीरयेत्६ ॥
सपिण्डनादि नैवेषां सर्व्वेषां स्मृतिशासनात् ।
अहन्येकादशे प्राप्ते पार्व्वणं श्राद्धमाचरेत् ।७
॥सुमन्तुः॥ मासिकं नैव कूर्व्वीत सपिण्डीकरणं न च ।
औरसः क्षेत्रजो वापि भ्राता वा तत् सुतो पिवा ॥८
कुर्य्यात्तु पार्व्वणं श्राद्धं शिष्यान्तेवासिभूमिपः ।
पिण्डयज्ञं सुतः कुर्य्याद्दर्शश्राद्धं मृतेऽहानि ॥९
यते महालयेदर्शे तस्य वा मृतिवासरे ।
पार्व्वणान्त्वितरेषान्तु एकोद्दिष्टन्तु बा भवेत् ॥१० इति
स्कान्दे ॥ चतुर्थेनाश्रमं गच्छेद्ब्रह्मविद्यापरायणः ।
एकदण्डी त्रिदण्डीवा सर्व्वसङ्गविवर्ज्जितः११ ॥
एकादशेऽन्हि संप्राप्ते यद्वा तु द्वादशे हानि ।
पार्व्वणेन बिधानेन श्राद्धं कुर्य्यात्तदौरसः ॥१२
नारायणवलिं कृत्वा पार्व्वणश्राद्धमाचरेत् ।
प्रत्यव्दे दार्शिक श्राद्धे तीर्थेष्वपि महालये ॥१३
संवन्धनामगोत्रेण श्राद्धकाले तु नित्यशः ॥
अन्यत्रापि संवन्धनाम गोत्रञ्च पार्व्वणं द्वादशे हानि१४। तत्
क्रमात्ज्ञातयःकुर्य्युरेकादश दिने पिवा। अथ वात्मान्तरात्मेति
परमात्मेत्युदाहृतः।तच्छ्राद्धे साधुगुरवो विश्वेदेवाःप्रकीर्त्तिताः१५
इति पुत्रादि ज्ञाति कर्तृक श्राद्धे संवन्ध नामगोत्रादेरुल्लेखः
शिष्यादि कर्तृक तत् पार्व्वण श्राद्धेतु आत्मान्तरात्म पर-

मात्मेत्युल्लेखः। साधु रुरु संज्ञका विश्वेदेवाः। न पुरुरवा द्रेव संज्ञका विश्वेदेवाः॥ एतत् पत्ते यज्ञोपवीती यवाश्च तिलार्थे संकल्पादि पिण्डदानान्त मग्नौ करणवर्ज्जं देव श्राद्ध-वद् विकृत मिति विशेषः इति॥ यमः॥ एकादशेन्हि कर्त्तव्यो नारायणवलि स्ततः। पाकान्तरेण तत्रैव पार्व्वण श्राद्ध माचरेत्॥ १६॥ पाकान्तरेणे तियम वाक्यात् काल भेदाच्च॥ शिष्यादि कर्तृक तत् पार्व्वण श्राद्धस्य दैवत्वेन तेनैककालिकत्वादेकपाकेन॥ वोधायन शौनकौ॥ अहन्येकादशे प्राप्ते पार्व्वणन्तु विधीयते। नारायणवलि श्चास्य कर्त्तव्यो द्वादशे हनि१७अत्र नारायणवलि श्राद्धयो-रेक दिनानुष्ठान पत्ते एकादशे द्वादशे वान्हीति काल विक-ल्पः॥ नारायणवलिं कृत्वेत्यादिस्कान्दात्। पाकान्तरेण वा तत्रानुष्ठान मिति बिशेषः॥ दिनभेदेन तयोः करण-पत्तेतु एकादशे पार्व्वणं द्वादशे नारायणवालिः॥ तद्दिन एक पाकान्तरेण वा आराधने असम्भवे त्रयोदशे वेति भेदः॥ ततः प्रति मासं मृत तिथौ आराधनं॥ एवं संवत्सरान्ते मृत तिथावपि॥ तथा च संग्रहे॥ यतौ मृते तु वपनं पार्व्वणं विष्णु पूजनं। प्रत्यब्दं प्रति मास-श्च कुर्य्या दाराधनं बुधः१८। रुद्राक्ष मालां गति श्च शिवं विष्णु तथैव च। मुख्या न्येतानि दानानि पुरा प्राहु र्मनीषिणः॥१६ अस्यार्थः॥ यतौ मृते तु वपन पूर्व्वकं तत् संस्कारः पुत्रादिभिः कार्य्यः॥ तत एकादशे द्वादशे वा इति विहित काले पार्व्वण-श्राद्धं। तथैव विहित काले विष्णुपूजनं॥ नारायण वलिः।

ततः प्रतिमासं प्रत्यब्दश्च च कारान्मरणोत्तरं द्वादशाहे चाराधन मिति । द्वादशाहे मृतस्यै वाराधन मथाचरेदिति नागरखण्डात् ॥ समानन्यायात् पूजनादि कालेष्वप्याराधनमिति केचित् ॥ तत्र प्रति मास माराधनमेव न पार्व्वणं । मासिकं नैवेति वाक्यान्तरेण तस्य निषेधात् ॥ प्रत्यब्दन्तु पार्व्वणोत्तरं तद्दिन एव पाकान्तरेणाराधनं प्रत्यब्द इति पूर्व्वोदाहृत स्कान्द वाक्येन तत्र पार्व्वण विधानात् । तच्च प्रत्यब्दं पार्व्वणं पुत्रादीनामेव । तन्नियामक सुमन्तुवाक्ये तु सुत ग्रहणात् । शिष्यादीनांतु आराधनमेव । अपुत्र यतिविषये तु प्रत्यब्दं शिष्यादेरप्युक्तदेवश्राद्ध प्रकारेण पार्व्वणमपि भवतीति केचित् । तत्रैकादशेऽन्हि पूर्व्वसम्बन्ध नामगोत्रोल्लेखेन पित्र्युद्देश्यकं प्रसिद्धपार्व्वण धर्म्मकं श्राद्धं कार्य्यं ॥ तिथ्यादि श्रवणान्ते ब्रह्मीभूतस्यगुरोर्मृत दिनादारभ्य एकादशे हनि पितुः सम्बन्धनाम गोत्रोल्लेखन पूर्व्वक करिष्यमाण सर्व्व श्राद्धोद्देश्यता सिद्ध्यर्थं पार्व्वण श्राद्ध करिष्ये इति संकल्पे विशेषः ॥ अवस्थात्रयहीनानामिति यम बचनं सम्बन्ध नाम गोत्रैश्चेति स्मृत्यन्तर वचनञ्चेतादृशसंकल्पे मूलं । इतरदु विकृतं प्रत्यब्दवत् पूर्व्व कृतेनैवच तिलतर्पणेन तदङ्गस्यापि सिद्धिः ॥ न परेहनि प्रत्यब्दवद्विधायकं वचनाभावात् द्वादशेहनि नारायणवलिः ॥ तत् प्रकारमाह ॥

॥ वौधायनः ॥ नारायण वलिश्चास्य कर्त्तव्यो द्वादशे हनि । कृत्वा विष्णोर्महापूजां पायसञ्च निवेदयेत् ॥१
अग्नौहुत्वा तु तच्छेषं व्याहृतिभिः समाहितः ।

यतीन् गृहस्थान् साधून् वा निमन्त्र्य द्वादशावरान् ॥२
अभ्यर्च्यर्गन्धपुष्पाद्यै मन्त्रै र्द्वादश नामभिः ।
संभोज्य हव्येनान्नेन दक्षिणाञ्च निवेदयेत् ॥३
त्रयोदशद्विज श्रेष्ठमात्मसंस्थं जितेन्द्रियम् ।
विष्णुंयथातथाभ्यर्च्य पाद्याद्यैश्च विधानतः ॥४
दद्यात् पुरुषसूक्तेन पुष्पहव्यादिकं क्रमात् ।
वस्त्रालङ्करणादीनि यथाशक्ति प्रदापयेत् ॥५
उच्छिष्टसन्निधौतस्य दर्भानास्तीर्य्य भूतले ।
भूर्भुवःस्वःस्वधायुक्तै स्तस्मै दद्याद्बलित्रयम् ॥
अश्वमेध सहस्रस्य वाजपेयशतस्यच ।
यत् फलं तत् फलेनैव यः करोति यतिक्रिया मिति ॥७

शौनकस्तु॥ शौनकोहं प्रवक्ष्यामि नारायणबलिंपरं। चण्डाला दुदकात् सर्पाद्ब्राह्मणा द्वैद्युतादपि।८।दंष्ट्रिभिश्च पशुभ्यश्च रज्जु-शस्त्र विषादिभिः।देशान्तरमृतानाञ्च मृतानाञ्चान्य साधनैः।९ जीवच्छ्राद्धं मृतानाञ्च कनिष्ठानान्तथैवच । यतीनां योगिनां पुंसा मन्येषां मोक्ष कांक्षिणां॥१० पुण्यपाप क्षयार्थाय द्वादशे हानि कारयेत्। द्वादश्यां श्रवणेऽब्दान्ते पञ्चम्यां पार्व्वणे न्तु वा॥११॥अस्यार्थः पूर्व्वोक्त विष्णु पूजादि होमान्तेऽग्नौ दैवेतिषड्भिः पुरुष सूक्तेनच प्रत्यृचं पायसं हुत्वा केशवादि द्वादशनामभिस्तद्रूपिणो द्वादश विप्रान् संभोज्य तैरेव द्वादश पिण्डान् दद्यादित्यधिकं । वौधायन कल्पादाह॥ द्वादशाहादूर्द्ध्वं मुक्तकाला संभवे द्वादश्यादयः षड्गौणकालाः। तेष्व-पि पूर्व्वः पूर्व्वः श्रेयान् तत्रद्वादशीश्रवण पञ्चम्यः शुक्लस्याः

॥ पर्व्वणोरपि पौर्णमासी पूर्व्वासंभवे त्वयमेवेति शेषः ॥
॥ यमः ॥ हंसे मृते सुतः कुर्य्यात् पार्व्वणं पितृयज्ञवत्।
नारायणबलिञ्चैव तथा परम हंसके १। विष्णुं संपूज्य
विधिवद्दत्वार्घ्यबलि मुत्तमम्। चरुंहुत्वा तु सूक्तेन पौरुषेणतु
षोड़शीं २। केशवाद्यैर्नामभिस्तु नामभिर्जुहूयात्तथा। द्वादश
ब्राह्मणा भोज्या विष्णवर्थेतु त्रयोदश ॥३। शुक्लपक्षे केश-
वाद्याः कृष्णा सङ्कर्षणादयः। एवंकृते विधानेन नारायणबलौ
द्विजः४॥ विष्णुलोक मवाप्नोति पुरुषोनात्र संशयः। इति॥
अथ द्वादशाहेऽहन्येवाराधनं॥ तत्रासंभवेशुक्ल द्वादश्यांकार्य्यं
द्वादश्या मथवेति वक्ष्यमाणनागरखण्डवचनात्। तत्रासंभवे
त्रयोदेशेऽन्हि वा आचारात्। तत् प्रकारो नागरखण्डे।
द्वादशाहे मृताहेच आराधनमथा चरेत्। श्रीगुरुं
पर गुरुञ्च परमेष्ठि गुरुं तथा ॥५॥ परा परगुरुञ्चैव केशवा
दीन् स्वनामभिः। गुर्व्वर्थे चतुरो विप्रान् केशवादीन् स्व-
शक्तितः ॥६॥ संपूज्य भोजयेदन्नैः सघृतव्यञ्जनादिभिः।
द्वादश्यामथवा शुक्ले सम्यग् आराधनञ्चरेत्॥७॥ अस्यार्थ
इति। मृताहे चेति चकारात् षोड़श श्राद्धकालेषु प्रत्यब्देति
मासंचेति पूर्व्वोदाहृत वचनात्। गुर्व्वर्थे चतुर इति। गुरु
पद घटितनाम धेयार्थे यतिनामधेयचतुर इति ॥ प्रतिनाम
धेय मेकैक इति। चतुर्णामर्थे चतुर इति वा। आद्यपक्षे
गुर्व्वादि चतुष्टयार्थे षोड़श ॥ द्वितीयेचत्वार इति भेदः। गुरु-
त्रयान्ते परापरगुरुं विहायादौ विश्वरूपधराचार्य्यं ततो गुर्व्वा
दित्रयं। ततः केशवादीत्येव प्रकार उक्तो ग्रन्थान्तरे ॥

विश्वरूप धराचार्य्यं गुर्व्वादि त्रयमेवच । केशवादींस्ततः शुक्ले कृष्णे संकर्षणादिकान् ॥८॥ इति ॥ अन्य कन्या भार्य्यादि स्त्री कर्तृके यति संस्कारेतु विप्रद्वारावैदिक मन्त्रकः स्वकर्तृको वा पौराणानामन्यतरमन्त्रकः प्रयोगऊह्यः ॥ सन्निकृष्टोयतेः पुत्रोस्वपितृनाशने श्रुते । कृत्वातु वपनं स्नात्वा शुद्धात्मा यतिसत्क्रियाम् ६॥इति पितृमेध पद्धतिस्थस्मृतिवाक्ये पुत्रपदस्याधिकारिमात्रपरत्वात् ॥ अधिकार संपादकंकृच्छ्राचरणं वपनञ्च विधवायाः सधवायाःपरंकृच्छ्राचरण मेवेति शेषः ॥ असन्निकृष्टपुत्रादिविषये विशेषः पितृमेध पद्धतौ। असन्निकृष्टश्चेत् पुत्रःसिद्धिं वार्त्तां पितुस्तदा। श्रुत्वेति शेषः। स्नात्वा वपन पूर्व्वञ्च शुक्लायान्तुतदन्तरा। दशम्यामेव कुर्य्यात्तु नारायणवलिंसुतः१०॥ अस्यार्थः। देशान्तरगतः पुत्रोब्रह्मीभूतस्य पितुः सिद्धिवार्त्तां श्रुत्वा वपनपूर्व्वकं स्नात्वाचारप्राप्तं पूजनादि दशाहान्त मविकृतं कृत्वा एकादशाहे पार्व्वणादि सन्निकृष्टवदविकृतं कुर्य्यात् ॥ इदञ्च कृष्णपक्षमृतिश्रवणे शुक्ले पक्षे तत्कृच्छ्रवणे वपनस्नान भोजनाद्य विकृतं । तत्र द्वितीयादिनमारभ्य नारायणवलि कालादर्व्वाग् यदि शुक्ल दशम्यापातस्तदा तत्रैव नारायणवलिं कृत्वा एकादशेऽन्हि पार्व्वणं द्वादशेऽहन्याराधन मिति॥ इदन्तु पुत्रस्यैव न भ्रात्रादेः। तद्वाक्ये पुनः सुत ग्रहणात्। मुख्याधिकारित्वमेतस्यापि भवति॥ पुत्रपदस्याधिकारि मात्रोपलक्षकत्वादिति सुधीभि रूह्यं एवं कुर्व्वतः फलं पूर्व्वमेवोक्त मश्वमेध सहस्रस्ये त्यादिना॥

तथा नाशौचं न च शोकश्च गोत्रिणान्तु यतौमृते गृहेपूजादिकं कार्य्यं पुरुषार्थमभीप्सुभिः ११॥ द्वादशाह मनध्यायः शिष्यः कुर्य्यात् समाहितः। खननं वहनं स्पर्शं संस्कुर्व्वन् शुद्धिमृच्छति १२॥ असंस्कृतं विशीर्य्येत यस्मिन् देशे कलेवरम्। धर्म्मलोपो भवेत्तत्र दुर्भिक्षंमरणंध्रुवम् ॥ दिवंगते गुरौ शिष्यै स्तदाकार्य्य मुपोषणम्। स्नात्वा सचैलं यतिभि रेषधर्म्मः सनातनः१३॥ नस्नानमाचरेद्भिक्षुः पुत्रादिनिधने श्रुते। पितृमातृक्षयं श्रुत्वास्नानाच्छुध्यति सांवरः १४॥ इति प्रतिष्ठानं नारायणावलि पार्व्वण श्राद्धादि संस्कार प्रकाशे यतिसंस्कारे पुरवासीतराद्युपयोगिनिर्णयः समाप्तः ॥ अथाचार्य्यपरं परामाह ॥ तत्पूर्ण सच्चिदानन्दाद्वय समस्त ब्रह्मादिकाचार्य्यप्रसादा द्ब्रह्मादय आचार्य्याः। तत्र प्रथमाचार्य्यो ब्रह्मा। द्वितीयाचार्य्यो विष्णुः। तृतीयाचार्य्योरुद्रः। चतुर्थाचार्य्यो वसिष्ठः। पञ्चमाचार्य्यःशक्तिः षष्ठाचार्य्यः पराशरः। सप्तमाचार्य्यः व्यासः। अष्टमाचार्य्यः शुकः। नवमाचार्य्योगौड़ः। दशमाचार्य्यो गोविन्दः। एकादशाचार्य्यः शङ्करः। इत्येते पूर्व्वाचार्य्याः। एतेषां मध्ये कृतयुगवर्त्तिनस्त्रय आचार्य्या ब्रह्मा विष्णुः रुद्रश्चेति ॥ त्रेतायुग वार्त्तिनस्त्रय आचार्य्या वसिष्ठः शक्तिः पराशरश्चेति॥ द्वापरयुग वर्त्तिनौद्वौ आचार्य्यौ व्यासः शुकश्चेति ॥ कलियुग वर्त्ती एक एव शङ्कराचार्य्य इति तस्य शिष्याश्चत्वारो विश्वरूपाचार्य्यः। पद्मपादाचार्य्यः। त्रोटकाचार्य्यः। हस्तामलका चार्य्यश्च अथवा। पृथ्वीधराचार्य्यश्चतुर्थः ॥ इति ॥ तेषांनामानि ॥

॥ ॐ नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्या संप्रदाय कर्तृभ्यो वंश ऋषिभ्यो नमो गुरुभ्यः इत्याचार्य्य परं परा नामानिच ॥ आचार्य्य लक्षणं तत् कार्य्यञ्च ॥ आचिनोति च शास्त्रार्थमाचरे स्थापय त्यपि । स्वयमाचरते यस्मादा चार्य्यस्तेन चोच्यते ॥१॥ परिपक्कमलानेतानुत्सादन हेतु शक्ति पातेन ॥२॥ योजयति परेतत्त्वे स दीक्षयाचार्य्य मूर्त्तिस्थः ॥ अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै सद्गुरवे नमः ॥ ३ ॥ श्रीशंकराचार्य्य जन्म वत्सरादिचतुर्भिःसह । शिष्यैस्तु शंकरो वक्तरिष्णति

॥ वायुपुराणे । पुराणान्तरेपि ॥

कलौयुगेतु संप्राप्ते जम्बूद्वीपे महेश्वरि । खण्डे भरत संज्ञेतु श्रीशैलगिरि गह्वरे ॥४ परिधावि वत्सरेतुसप्तम्यांशनिवासरे । उद्दण्ड वर्षातीतेतु दिने नित्योदये शिवे॥५॥ मकरोदय वेलायां मध्यान्हे शंकरीगृहे । बौद्धोत्सादन कार्य्यार्थं शंकरो नित्यरूपधृक् ॥६॥ अवतीर्णो महेशानि पञ्चप्रेत समन्वितः॥ इति पुराण वचनानि । तत् कृत साधनानि च । कामंवस्तु विचारतोच्छिनदयं पारुष्य हिंसाक्रुधः । क्षान्त्यादैन्य परिग्रहानृत कथालोभांस्तु सन्तोषतः । मात्सर्य्यन्त्वनसूययामद महामानौ चिरं भावित स्वान्योत्कर्षगुणेनतृप्ति गुणतस्तृष्णापिशाचीमपि ॥अथ मठाम्नायः॥

शारीर ब्रह्ममीमांसा भाष्यकर्त्ताहि सद्गुरुः ।
मुनिः श्रीशङ्कराचार्य्यो लोकोपकरणाय वै ॥१
चतुर्दिक्षु प्रदेशेषु प्रसिद्ध्यर्थं स्वनामतः ।

चतुष्टयमठान् कृत्वा शिष्यान्संस्थापयद् विभुः ॥२
चकार संज्ञामाचार्य्यश्चतुर्णां नामभेदतः ।
क्षेत्रञ्च देवताञ्चैव शक्तिं तीर्थं पृथक् पृथक् ॥३
संप्रदायांश्च नाम्नाञ्च भेदञ्च ब्रह्मचारिणाम् ।
चतुष्टयं मठानाञ्च शिष्यान् देवान् व्यवस्थया ॥४
एवं प्रकल्पयामास लोकोपकरणाय वै ।
पश्चिमे शारदा पीठं द्वारका क्षेत्रमुच्यते ॥५
कीटवारः संप्रदाय स्तीर्थाश्रमपदेचते ।
देवः सिद्धेश्वरः शक्ति र्भद्रकालीच विश्रुता ॥६
स्वरूपब्रह्म चारीति आचार्य्यः पद्मपादकः ।
विख्यात गोमती तीर्थं सामवेदमथोच्यते ॥७
तत्त्वमसीति वाक्यञ्च जीवात्म परमात्मनोः ।
एकीभावं विनिर्दिश्य नामान्युक्तान्यनुक्रमात् ॥८
इति प्रथममठउक्तः ॥ द्वितीयमठमाह ॥
द्वितीयः पूर्व्वदिग्भागे गोवर्द्धनमठः स्मृतः ।
भोगवारः संप्रदायो वनारण्यपदे तथा ॥१
तस्मिन् देवोजगन्नाथः पुरुषोत्तमसंज्ञकः ।
क्षेत्रञ्च सर्व्वलोकेषु तन्नाम्नैव च विश्रुतम् ॥२
प्रकाशब्रह्मचारीति हस्तामलकसंज्ञकः ।
आचार्य्यः कथितस्तत्र नाम्नाभेदः पृथक् पृथक् ॥३
स्नानं महोदधौतीर्थे ऋग्वेदः समुदाहृतः ।
महावाक्यञ्च तत्रोक्तं प्रज्ञानं ब्रह्मसंज्ञकम् ॥४
तृतीयं उत्तर दिशायांमठमाह ।

उतरेश्रीमठः क्षेत्रंख्यातो बद्दरिकाश्रमः ।
देवो नारायणो देवीशक्तिः पूर्णागिरीति च ॥५
संप्रदायो नन्दवारस्तीर्थञ्चालकनन्दिका ।
आनन्दब्रह्मचारीति गिरिपर्व्वतसागराः ॥६
नामानित्रोटकाचार्य्यो वेदोऽथर्व्वणसंज्ञकः ।
महावाक्यञ्च कथितमयमात्मा ब्रह्मेति च ॥७

चतुर्थं दक्षिणे शृङ्गेरीमठमाह ॥

दिग्भागे दक्षिणेरम्यः शृङ्गेरी मठ उच्यते ।
वराहोदेवता तत्र रामक्षेत्र मुदाहृतम् ॥८
तीर्थन्तु तुङ्गभद्राख्यं शक्तिः सा शारदेतिच ।
चैतन्य ब्रह्मचारीति आचार्य्यो विश्वरूपकः ॥९
सरस्वतीति नामानि भारती च पुरीति च ।
सम्प्रदायो भूरिवारो यजुर्व्वेद उदाहृतः ॥१०
माहावाक्यञ्च कथितमहं ब्रह्मास्मि नामतः ।
चतुर्णाश्चमठानाञ्च वेदा देवा श्च शक्तयः ॥११
महावाक्यानि आचार्य्या उक्तातीर्थाश्रमादय; ।
आचार्य्य शिष्यश्चत्वारः सर्व्वलोकेषु विश्रुताः १२
पद्मपादःसुरेशश्च हस्तामलक त्रोटकौ ।
शंकराचार्य्यं वर्यस्यशिष्या भाष्यकृतःस्मृताः। १३
कीटवारो भोगवार आनन्दवार एवच ।
भूरिवारश्चचत्वारःसंप्रदायाःप्रकीर्त्तिताः। इति॥ १४

अस्यव्याख्यारूपश्लोकाः ॥

कीटं पातकमित्युक्तं वार्य्यतेयेन जीविनाम्

ंप्रदायो यतीनाञ्च कीटवारः स उच्यते ॥१८
ोगो विषय इत्युक्तो वार्य्यते येन जीविनाम् ।
ंप्रदायो यतीनाञ्च भोगवारः स उच्यते ॥१६
ूरिशब्देन सौवर्णं वार्य्यते येन जीविनाम् ।
ंप्रदायो यतीनाञ्च भूरिवारः स उच्यते ॥१७
ानन्दोऽतिविलासो यो वार्य्यते येन जीविनाम् ॥
ंप्रदायो यतीनाञ्चानन्दवारः स उच्यते ॥१८
सिष्ठो भार्गवश्चैव काश्यपस्तदनन्तरम् ।
ारद्वाजश्च चत्वारि गोत्राणि कथितानि वै ॥१६
काश्चत्वार आम्नाया यतीनान्तु पृथक् पृथक् ।
प्रणोर्द्धशेषे गौणाये तेऽपि ज्ञानेन सिद्धिदाः ॥२०
ञ्चमस्तूर्द्ध्व आम्नायः सुमेरुमठउत्तमः ।
प्रदायोथ काशीस्यात् पदं नामाभिधं स्मृतम् ॥२१
लासः क्षेत्रमित्युक्तं देवतास्य निरञ्जनः ।
ीमाया तथाचार्य्य ईश्वरः परिकीर्त्तितः ॥२२
र्थं सुमानसं प्रोक्तं त्रैलोक्यशरणं महत् ।
 संहारमार्गेण संन्यासं महदाश्रयेत् ॥२२
ात्वात्मनि चाम्नाये परमात्मा मठोमहान् ।
 सन्तोषः संप्रदायः पदं योगमनुस्मरन् ॥२४
 सरोवरं प्रोक्तं परहंसोस्य देवता ।
ास्यान्मानसीमायाप्याचार्य्यश्वेतनादयः ॥२५
मे निष्कलाम्नाये शुद्धशास्त्रार्थजंमठम् ।
दायोऽस्य तत्त्वसत्वं श्रीगुरोः पादुके पदे ॥२६

तत्रानुभूतिः क्षेत्रं स्याद्विश्वरूपोऽस्य देवता ।
देवी चैतन्यशक्तिः स्यादाचार्य्यः सद्गुरुस्ततः ॥२७
सच्छास्त्रश्रवणंतीर्थं जन्ममृत्युविनाशनम् ।
पूर्णानन्दक्रमेणैव संन्यासं तत्रचाश्रयेत् ॥२८
तीर्थाश्रमवनारण्यगिरिपर्व्वतसागराः ।
सरस्वती भारतीच पुरीनामानिवै दश इति ॥२९

अस्य व्याख्यारूप श्लोकाः ।

त्रिवेणी सङ्गमे तीर्थे तत्त्वमस्येव लक्षणे ।
स्नायात्तत्त्वार्थभावी यस्तीर्थनामा स उच्यते ॥३०
आश्रमग्रहणे प्रौढमायापाशविवर्ज्जितम् ।
यातायातविनिर्मुक्तमेतदाश्रमलक्षणम् ॥३१
सुरम्ये निर्जने स्थाने वनवासं करोति यः ।
आशाबन्धविनिर्म्मुक्तो वननामा स उच्यते ॥३२
अरण्ये सुस्थितो नित्यमानन्दनन्दने वने ।
त्यक्त्वावैरं सर्व्वमिदमरण्याख्य स उच्यते ॥३३
वासो गिरिवरे नित्यं गीताध्ययनतत्परः ।
गम्भीराचलबुद्धिश्च गिरिनामा स उच्यते ॥३४
वासः पर्व्वतमूलेषु प्रौढा या ज्ञानधारणा ।
सारासरं विजानाति पर्व्वतश्च प्रकीर्त्तितः ॥३५
यस्तुसागरगम्भीरो ज्ञानरत्नपरिग्रहः ।
मर्य्यादां नैव लङ्घेत सागरः स प्रकीर्त्तितः ॥३६
स्वरज्ञानरतो नित्यं स्वरवादी कवीश्वरः ।
संसारसागरे सारे सोऽभिधानः सरस्वती ॥३७

येयाभारेण संपूर्णः सर्व्वभारं परित्यजेत् ।
खभारं न जानाति भारती स प्रकीर्त्तितः ॥३८
तिदशनामाभिधानान्युक्तानि । श्रीशङ्कराचार्य्य पथे मठा
ायः ॥ पूर्व्वोक्त तीर्थाश्रमादीनां मध्ये केषाञ्चिन्नाम्नां
स्व शीलाचारमत्ता भिमानेन जाता संप्रदायास्तत्तन्नाम
ाश्च । तीर्थसंप्रदायभेदो चिदम्बरो वेति जगन्नाथी
सर्व्वतीर्थ संप्रदायो महातीर्थ संप्रदाय इति ॥
ाश्रम संप्रदाय भेदो मठी करवटी चेति ॥
रती संप्रदायार्द्ध भेदौ प्रभावः प्रतापश्चेति ।
रस्वती संप्रदाय भेदौ आनन्द सरस्वती इन्द्र सरस्वती
ति । तत्रानन्द सरस्वती भेदाश्चत्वारः माधवी कोलूर
भकोणी पुरी चेति ॥ इन्द्र भेद एकैव इति मठाम्नाय
द्भेदाश्च इति । अथ ब्राह्मणभेदाः तद्यथा ।
र्णाटका द्राविड़ाश्च महाराष्ट्रान्ध्र गुर्जराः।
विड़ाःपञ्च विख्याता विन्ध्यदक्षिणवासिनः ॥३९
रस्वताः कान्यकुब्जागौड़ा उत्कलमैथिलाः ॥
गौड़ा इति ख्याता विन्धस्योत्तरवासिनः ॥४०
ो संन्यासाधिकारि दशविधब्राह्मणाः ॥
न केचिदाह ॥ अग्निहोत्रं गवालम्भंसन्न्यासंपलपैतृकम्
रेण सुतोत्पत्तिं कलौपञ्च विवर्जयेत् ॥४१
त्सर्गापवादकेन ॥ चत्वार्य्यब्द सहस्राणि चत्वार्य्यब्द-
ानिच । कलेर्यदागमिष्यन्ति तदाएव परिग्रहः ॥४२॥
ासश्च न कर्त्तव्यो ब्राह्मणेन विजानतेति वैष्णव-

वचनेन नियममितकालस्यातीतत्वादधुनाकालेऽग्निहोत्रमे
सन्न्यासं च न कुर्वीत इत्याहुः। तन्न। चत्वार्य्यब्देति वैष्णवास
वचनेन नियमित मुख्य कालस्यातीतत्वेऽपि तदुत्तरकालस्य
गौणकालत्वात्। स्वकालादुत्तरः कालो गौणकालस्य
कीर्त्तित इति तद्वचनात्॥ यावद्वर्ण विभागोऽस्ति
यावद्वेदः प्रवर्त्तते। अग्निहोत्रञ्च संन्यासं तावत् कुर्यात्
कलौयुगे ॥६॥ इत्यादिस्मृतिवचनेन विशेषतः प्रकृते गौणव
कालाभ्यनुज्ञानात्। गौणो ऽप्यत्रेदृशो भवेदिति सामान्यतः
कर्म्ममात्रे गौण गौण कालस्याभ्यनुज्ञानाच्च। गौ
ऽपि काल इदृशमुख्यकाल शब्दसः। अतएव शिष्टाः स
ऽपि प्रातरादि मुख्य कालातिक्रमेपि सन्ध्याहोमादि
गौणकालेऽप्यनुतिष्ठन्ति। यावद्वेदः प्रवर्त्तते इत्यस्यायमर्थः
मन्त्र ब्राह्मणोभयात्मक वेदस्य प्रवृत्तिरध्ययनाध्याप
तदर्थज्ञानरूपा यस्य स एवाग्निहोत्रादिकमनुतिष्ठेत्। अ
न्यथा काचिन्निषादी तनयं प्रसूते कामाय पानं कुरुते नि
इति न्यायतः स्यात् इति। वस्तुतस्तु शिष्टाचारोऽ
धुना समयेऽग्निहोत्र संन्यासयोः क्रिया नियामकः। स्मृ
वादाचारस्यापि प्रमाणतया तान्त्रिकैर्व्यवस्थापनात्
एतेन अग्निहोत्रं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकमितिवा
सामान्यत्वादुत्सर्गः। यावद्वर्ण विभागोऽस्ति याव
प्रवर्त्तते इति विशेषत्वात्तस्यापवादः। चत्वार्य्यब्द सहस्राणि
चत्वार्य्यब्द शतानिच इत्यस्यापवादः। अपवादापवादे
सर्गस्थितिरिति न्यायेन चतुःशताधिक चतुरब्द सहस्रा

क्रमेसति कलौनाग्निहोत्राद्यनुष्ठानमितिकस्यचित्प्रलपितम-
पास्तं ॥ इति ॥

अथेदानींभिक्षुकैर्निवृत्तिनिष्ठायामेवादरःकार्य्योनतु प्रवृत्तिनि-
ष्ठायामित्याह तत्र निवृत्तिनिष्ठानाम अद्वैताभिनिवेशः प्रवृत्ति
निष्ठानान्तु द्वैताभि निवेश इत्युक्तञ्च ॥ अद्वैतभावमाश्रित्य
ताचारेण वर्त्तते । रुदन्तिपितरस्तस्यहाकष्टं पतितःपुनः॥१
अवश्यं भाविनोप्यर्थाः स्वधर्म्मफलहेतवः ।
न सन्तोनुशोचन्ति शास्त्रतत्वार्थवेदिनः ॥२
यदभावि न तद्भावि भाविचेन्नतदन्यथा ।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयं बोधोभ्रमनिवर्त्तकः ॥३
यस्ययद्दैवविहितं स तेन सुखदुःखयोः ।
आत्मानं तोषयेद्देही तमसः पारमृच्छति ॥४
येव यद्यथा पूर्व्वं कृतं कर्म्म शुभाशुभम् ।
एवतत्तथा भुङ्क्ते दुःखं वा यदि वा सुखम् ॥५
यस्ययस्य यथा कर्म्म तस्यतस्य तथा मतिः ।
पुण्यपापाश्रितो भावो जायते प्राणिनां प्रिये ॥६
देवत्वमथमानुष्यं पशुत्वं पक्षितां तथा ।
तिर्यक्त्वं स्थावरत्वञ्च याति जन्तुः स्वकर्म्मभिः ॥७
यथा चिन्तिताह्यर्था नरैराशापरायणैः ।
तथैव हि गच्छन्ति दैवादिति मतिर्मम ॥८
दायादवांल्लोकः कर्म्मसम्बन्धिबान्धवाः ।
कर्माणि चोदयन्तीह पुरुषं सुखदुःखयोः ॥९
यावद्याद्दशं येन कृतं कर्म्म शुभाशुभम् ।

तत्तावत्तादृशं तस्य फलमीशः प्रयच्छति ॥१०
यस्यां यस्यामवस्थायां यद्यत् कर्म्म पुराकृतम् ।
तस्यां तस्यामवस्थायांतत्तत् फलमुपाश्नुते ॥११
जन्म जन्म यदभ्यस्तं दानमध्ययनं तपः ।
तेनैवाभ्यास योगेन तच्चैवाभ्यसते पुनः ॥ इति ॥१२
यमान् सेवेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः ।
यमान् पतत् प्रकुर्व्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥१
शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि ।
श्रमस्तस्य श्रमफलोह्यधेनुमिव रक्षतः ॥१४
वाचंयच्छ मनोयच्छ प्राणं यच्छेन्द्रियाण्यपि ।
आत्मानमात्मना यच्छन् भूयाय कल्पसेध्वने ॥१५
यो वै वाङ्मनसी सम्यगसंयच्छन्धियायतिः ।
तस्यवृत्तं तपोज्ञानं श्रवत्याम्बुघटाम्बुवत् ॥१६
निवृत्तं कर्म्मसेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ।
जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत् कर्म्म चोदनाम् ॥१७
याग एवहि सर्व्वेषां मोक्षसाधन मुत्तमम् ।
त्यजतैवहिततज्ज्ञेयं त्यक्तुः प्रत्यक्परं पदम् ॥१८
नात्यक्त्वा सुखमाप्नोति नात्यक्त्वा विन्दते परम् ।
नात्यक्त्वा निर्भयः शेते सर्व्वंत्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥१६
यतो यतो निवर्त्तेत ततस्ततो विमुच्यते ।
निवर्त्तनाद्धि सर्व्वत्र सुखमक्षयमश्नुते ॥२०
त्यजतः सञ्चयान् सर्व्वान् यन्ति नाशमुपद्रवाः ।

नहि सञ्चयवान् कश्चिद्दृश्यते निरुपद्रवः ॥२१
नातः सुखतरं किञ्चित् त्रिषुलोकेषु विद्यते ।
वीततृष्णस्य कामेभ्यो मुक्तसङ्गस्य यत् सुखम् ॥२२
नान्यत्रविद्या तपसो नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ।
नान्यत्र सर्व्वसंत्यागात्तं मोक्षं विन्दते पूमान् ॥२३
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मैव भूय एवाभिवर्द्धते ॥२४
सर्व्वत्र संपदस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम् ।
उपानद्गूढपादस्य ननुचर्म्मास्तृतैव भूः ॥२५
अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः ।
मयिसन्तुष्टमनसः सर्व्वाः सुखमयादिशः ॥२६
दानमिज्यातपः शौचं तीर्थं वेदाःश्रुतं तथा ।
अशान्तमनसः पुंसः सर्व्वमेतदपार्थकम् ॥२७
सामर्थ्ये सर्व्वशास्त्राणि विहितानि मनीषिभिः ।
तस्मात् सर्व्वत्रशास्त्रज्ञो यस्य शान्तं मनः सदा ॥२८
चीरवासाजटीवापि त्रिदण्डी मुण्ड एवच ।
वृथाक्लेशाय विप्रेन्द्र यस्य शान्तं न मानसम् ॥२९
यदि यासि महीरन्ध्रं ब्रह्मलोकमथापि वा ।
तन्न निवृत्तिमाप्नोषि विनैवोपशमामृतम् ॥३०
यत्कृतं नविरागाय न धर्म्माय न शान्तये ।
सुषूक्तमपि शक्तेन काकवासितमेव तत् ॥३१
ब्रह्मचारी गृहस्थोवा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।
सर्व्व एव शमेनैव प्राप्नुवान्ति परां गतिम् ॥३२

किञ्चिदेव ममत्वेन दया भवति कल्पितम् ॥
तद्भवेत् परितापाय सर्व्वं संपद्यते तदा ॥३३
नातिस्नेहप्रसङ्गो वा कर्त्तव्यः क्वापि केनचित् ।
कुर्व्वन् विन्देत संतापं कपोतइवदीनधीः ॥३४
निर्वाणस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः ।
मनस्त्यजति दौरात्म्यं चिन्तनस्यानुचिन्तया ॥३५
निर्व्वेद आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः ।
नह्यङ्गाजातनिर्व्वेदो देहवन्धं जिहासति ॥३६
अदर्शनमनाघ्राणमस्पर्शाश्रवणे तथा ।
पुरुषो नियमैश्चैतैः श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥३७
सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्ते वहून्यपि ।
संच्छेत्तारः संशयानां लोभग्रस्ताः पतन्त्यधः ॥३८
सर्व्वभूतेष्वविश्वस्तः सर्व्वभूतेषु निर्द्दयः ।
सर्व्वभूतेषु जिह्मश्च लोभाद्भवति भारत ॥३९
लोभक्षये क्षयं यान्ति सर्व्वपापानि भारत ।
लोभवृद्धौच वर्द्धन्ते नृपते नात्र संशयः ॥ ४०
लोभात्क्रोधःप्रभवति लोभाद्द्रोहःप्रवर्त्तते ।
लोभान् मोहश्च मायाच मानस्तत् सर्व्व एवच ॥४१
सर्व्वसङ्गपरित्यागः सर्व्वद्वन्द्वसहिष्णुता ॥
सर्व्वभूतसमत्वञ्च मोक्षस्य विद्धि पुत्रक ४२
जीवितं यस्य धर्म्मार्थं धर्म्मोज्ञानार्थमेवच ।
ज्ञानञ्च ध्यानयोगार्थं सोऽचिरान्मुच्यते नरः ॥४३
निगृहीतेन्द्रियग्रामे यत्रयत्र वसेद्बुधः ।

तत्र तत्र कुरुक्षेत्रप्रयागपुष्कराणि च ॥ ४४
यत्र रागादिरहिता वासुदेवपरायणाः ।
तत्र सन्निहितो विष्णुर्यतस्तीर्थमयो हि सः ॥ ४५
किं तस्य बहुभिस्तीर्थैः स्नानहोमजपव्रतैः ।
येनेन्द्रियगणो घोरो निर्ज्जितोऽन्यैर्दुरासदः ॥४६
जितेन्द्रियः समः शान्तः सर्व्वभूतहितेरतः ।
वासुदेवपरोनित्यं न क्लेशं कर्त्तुमर्हति ॥४
इदं तीर्थमिदंनेति ये नरा भेददर्शिनः ।
तेषां विधीयते तीर्थगमनं तत्फलानि च ॥ ४८
सर्व्वं ब्रह्मेति योवेत्ति न तीर्थैस्तस्य किञ्चन ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषु ब्रह्मण्येव स वर्त्तते ॥ ४९
स्वयोनौ च वियोनौ च निजे कर्म्मणि यः शुचिः ।
तस्य कृच्छ्रगतस्यापि न पापे रमते मतिः ॥ ५०
अकर्त्तव्यं न कर्त्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥५१
किं विद्यया किंतपसा किंत्यागेन श्रुतेन वा ।
किं विविक्तेन मानेन स्त्रीभिर्यस्य मनोहृतम् ॥ ५२
कदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि ।
स्पृशन् करीव वध्येत करिण्या अङ्गसंगतः ॥ ५३
दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः ।
प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतङ्गवत् ॥ ५४
ग्राम्यगीतं न श्रृणुयाद्यतिर्वनचरः क्वचित् ।
शिक्षेत हरिणाद्बद्धान्मृगयोर्गीतमोहितात् ॥ ५५

सुखमैन्द्रियकं राजन् स्वर्गे नरक एव च ।
देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद्बुधः ॥ ५६
जिह्वया तिप्रमाथिन्या जनोरसविमोहितः ।
मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धि मींनस्तु वड़िशैर्यथा ॥ ५७
तावज्जितेन्द्रियो न स्याद्विजितान्येन्द्रियः पुमान् ।
न जयेद्रसनां यावज्जितं सर्व्वं जितरसे ॥ ५८
योषिद्धिरण्याभरणांवरेषु द्रव्येषुमायारचितेषु मूढः ।
प्रलोभितात्माह्युपभोगबुद्ध्या पतङ्गवन्नश्यतिनष्टदृष्टिः ॥५९
सायन्तनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षितम् ।
पाणिपात्रोदरामात्रो मक्षिकेव न संग्रही ॥ ६०
सायन्तनं मक्षियुषं गृह्णन् सह विनश्यति ।
अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलोनरः ॥६१
सर्व्वतः सारमादद्यात् पुष्पेभ्य इवषट्पदः ।
तदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्यं स्थूणं त्वचारोमनखैः पिनद्धं ॥
क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्विण्मूत्रपूर्णंयदुपैति कन्या ॥ ६२
न संभाषेत् स्त्रियं काञ्चित् पूर्व्वदृष्टाञ्च न स्मरेत् ।
कथां वा वर्ज्जयेत्तासां न पश्येल्लिखितामपि ॥ ६३
माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा च माद्यति ।
तस्माद्दृष्टिमदां नारीं दूरतः परिवर्ज्जयेत् ॥ ६४
संभाषणं सह स्त्रीभिरालापप्रेक्षणे तथा ।
नृत्यं गानं सभासेवा परिवादांश्च वर्ज्जयेत् ॥ ६५
सुजीर्णोऽपि सुजीर्णासु विद्वान् स्त्रीषु न विश्वसेत् ।
सुजीर्णास्वपि कंथासु सज्जते जीर्णमम्बरम् ॥ ६६

अग्निकुण्डसमानारी घृतकुम्भसमोनरः ।
परस्वभावकर्म्माणि न प्रशंसेन्नगर्हयेत् ॥ ६७
विश्वमेकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण तु ।
परस्वभावकर्म्माणि यः प्रशंसति निन्दति ॥ ६८
स आशुभ्रश्यते स्वार्थादसत्याभिनिवेशतः ।
न स्तुवीत न निन्देत कुर्व्वतः साध्वसाधु वा ॥ ६९
वदतो गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ्मुनिः ।
न कुर्य्यान्न स्तुवेत् किञ्चिन्नध्यायेत् साध्वसाधुवा ॥ ७०
आत्मरामोऽनयावृत्या विचरेज्जडवन्मुनिः ।
दोषदर्शी भवेत्तत्र यत्र रागः प्रवर्त्तते ॥ ७१
अनिष्टं वर्द्धितं पश्येत्तथा क्षिप्रं विरज्यते ।
यदा न कुरुते भावं सर्व्वभूतेषु पापकम् ॥ ७२
समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्व्वाः सुखमयादिशः ।
यथा न पीड्यते कामो नैवान्तकवशं व्रजेत् ॥ ७३
तथा धर्म्मञ्चरेद्भिक्षुः पश्यन् वै शास्त्रचक्षुषा ।
नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्नचान्यायेन पृच्छतः ॥ ७४
विजानन्नपि मेधावी जड़वल्लोकमाचरेत् ।
एकाकी निस्पृह स्तिष्ठेन्नकेनापि सहायवान् ॥ ७५
दद्यान्नारायणेत्येवं प्रतिवाक्यं सदायतिः ।
वासे वहूनां कलहो भवेद्वार्त्ता द्वयोरपि ॥ ७६
एक एव चरेत्तस्मात् कुमार्य्या इव कङ्कणम् ।
इष्टानिष्टेषु मार्गेषु व्यसनाभ्युदयेषु च ॥ ७७
उपशान्तां वदेद्वाचमपि वार्णेहतो भृशम्

यथा मूको यथामूढो यथा वधिर एववा ॥७८
तथा वर्त्तेत लोकेषु स्वसामर्थ्यस्य गुप्तये ।
एक एव चरेन्नित्यमनग्निरनिकेतनः ॥७९
सिद्ध्यर्थमसहायः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ।
असम्मानात्तपोवृद्धिः सम्मानात्तपसः क्षयः ॥ ८०
अर्च्चितः पूजितो विप्रोदुग्धागौरिव गच्छति ।
मानापमानौ द्वावेतौ प्रीत्युद्वेगकरौ नृणाम् ॥ ८१
तावेव विपरीतार्थौ योगिनः सिद्धिकारकौ ।
न सुखं देवराजस्य न सुखं चक्रवर्त्तिनः ।
यादृशं वीतरागस्य मुनेरेकान्तवासिनः ।
रथ्यायां वहुवस्त्राणि भिक्षा सर्व्वत्र लभ्यते ॥ ८३
भूमिशय्या सुविस्तीर्णा यतयः केन दुःखिताः ।
नासमानसहायेषु निवसेद्योगवित् क्वचित् ॥८४
वसेत् समानशीलेषु सुशीलेषु तपस्विषु ।
बुधोवालकवत् क्रीड़ेत् कुशलो जड़वच्चरेत् ॥८५
वदेदुन्मत्तवद्विद्वान् गोचर्य्यां नैगमश्चरेत् ।
वेदवादरतो न स्यात् न पाषण्डी न हैतुकः ॥८६
शुष्कवादविवादेन न किञ्चित् पक्षमाश्रयेत् ।
आत्मवत् सर्व्वभूतानि पश्यन् भिक्षुश्चरन्महीम् ॥८७
अन्धवत् कुब्जवच्चापि वधिरोन्मत्तमूकवत् ।
एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान् ॥८८
सिद्धिमेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते ।
नाभिनंदति मरणं नाभिनन्दति जीवितम् ॥८९

कालमेव प्रतीक्षेत निदेशं भृतको यथा ।
गूढधर्म्माश्रितो विद्वानज्ञानचरितश्चरेत् ॥९०
संदिग्धः सर्व्वभूतानां वर्णाश्रमविवर्ज्जितः ।
ब्रह्मचर्य्यमहिंसाच सत्यमस्तेयमार्ज्जवम् ॥९१
वेदान्तश्रवणं ध्यानं भिक्षोः कर्म्माणि नित्यशः ।
भिक्षाटनं जपोध्यानं स्नानं शौचं सुरार्च्चनम् ॥९२
कर्त्तव्यानि षड़ेतानि यतीनां नृपदण्डवत् ।
मौनं योगासनं योग स्तितिक्षैकान्तशीलता ॥९३
निःस्पृहत्वं समत्वञ्च सप्तैतान्येकदण्डिनाम् ।
लोकयात्रां प्रयत्नेन वर्ज्जयेदात्मचिन्तकः ॥९४
न्यायोपनिषदं विद्यामभ्यसेन्मुक्तिहैतुकीम् ।
अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ॥९५
नचेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्व्वीत केनचित् ।
द्रव्यस्त्रीमांस संपर्कान्मधुमक्षिकलेहनात् ॥९६
विचारस्य परित्यागाद्यतिः पतनमृच्छति ।
क्रोधलोभपरोनित्यं निद्रालस्यपरस्तथा ॥९७
विषादीर्षापरश्चैव श्रेयसो भ्रश्यते द्विजः ।
आरूढपतितोहन्ति दशपूर्व्वान् दशापरान् ॥९८
निस्तारयति तानेव यदिसम्यग्व्यवस्थितः ।
देशकाल सुहृन्मित्र पिण्ड प्राणमनोधियाम् ॥९९
पूर्व्वं पूर्व्वं त्यजेत् पश्चात् परमानन्दमाविशेत् ।
यः प्रव्रज्य गृहात् पूर्व्वं त्रिवर्गावपनात् पुनः ॥१००
यदिसेवेत तान् भिक्षुः स वै वान्ताश्यपत्रपः ।

यैः स्वदेहः स्मृतोनात्मा मर्त्यो विट्कृमिभस्मवान् ॥१०१
त एनमात्मसात् कृत्वा श्लाघयन्ति ह्यसत्तमाः ।
नाध्येतव्यं नवक्तव्यं न श्रोतव्यं कदाचन ॥१०२
एभिर्गुणैश्च संपन्नो यतिर्भवति नेतरः ।
नैवधर्म्मी न चाधर्म्मी न चापीह शुभाशुभी ॥१०३
भिक्षाशी सर्व्ववर्णेषु तुल्यनिन्दास्तुतिः क्षमी ।
निस्तरङ्गवदम्भोधि स्थितधीः सर्व्वदात्मवान् ॥१०४
समः सर्व्वेषु भूतेषु परहंसः स उच्यते ।
प्राणा यथात्मनोभीष्टा भूतानामपि ते तथा ॥१०५
आत्मौपम्येन सर्व्वत्र दयां कुर्व्वीत मानवः ।
मनस श्चेन्द्रियाणाञ्च ऐकाग्र्यं परमन्तपः ॥१०६
तज्ज्यायान् सर्व्वधर्म्मेभ्यः सधर्म्मः परउच्यते ।
इज्याचारदमोहिंसाजपस्वाध्यायकर्म्मणाम् ॥१०७
अयन्तु परमो धर्म्मोयद्योगेनात्मदर्शनम् ।
सत्यमस्तेयमक्रोधो ह्रीः शौचं धी धृतिर्दमः ॥ १०८
संयतेन्द्रियता विद्या धर्म्मः सर्व्व उदाहृतः ।
द्वावेतौ न विराजेते विपरीतेन कर्म्मणा १०९
निरारम्भो गृहस्थश्च कार्य्यवांश्चैव भिक्षुकः ।
कर्म्मणावध्यते जन्तु र्विद्यया च विमुच्यते ॥ ११०
तस्मात् कर्म्म न कुर्व्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य्यं तपः शमः ॥ १११
क्षमादया च सन्तोषो व्रतान्यस्य विशेषतः ।
येनकेनचिदाच्छन्नो येन केनचिदाशितः ॥ ११२

यत्र क्वचनशायी स्यात्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।
कन्थाकौपीनवासाश्च दण्डधृक् ध्यानतत्परः ॥ ११३
एकाकीरमते नित्यं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।
स्वप्नेऽपि चिन्मयंपश्येत् जाग्रतीव विशेषतः ॥ ११४
ईदृक्चेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो वरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम् ।
सर्व्वमन्यत् परित्यज्य बुद्ध्यातन्निष्ठतां गतः ॥११५
उपविष्टो व्रजं स्तिष्ठं स्तन्मयः स्यात् समाहितः
ब्रह्मनिष्ठो भवेन्नित्यं यः परिव्राड़तन्द्रितः ॥ ११६
स ब्रह्मपरमभ्येति न चेह जायते पुनः ।
सर्व्वकर्म्माणि संन्यस्य भिक्षाशी निःपरिग्रहः ॥ ११७
प्राप्नोति मम सायुज्यं गुह्यमेतन्मयोदितम् ।
सम्यक्दर्शनसंपन्नः कर्म्मणा न स वध्यते ॥ ११८
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ।
यदा सर्व्वे प्रमुच्यन्ते कामायेस्य हृदिश्रिताः ॥ ११९
अथ मर्त्योमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ।
अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ॥ १२०
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचतीति ॥ १२१
श्रीभगवद्गीतायां ॥ प्रजहाति यदा कामानिति ॥ आत्मन्ये
वात्मना तुष्ट इति। दुःखेष्वन्विति ॥ यः सर्व्वत्र ।इत्यादि च ।
तमेवधीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्व्वीत ब्राह्मणः ।
नानुध्यायाद् बहून्शब्दान् वाचो विग्लापनं हितत् ॥ १
यदेतमनुपश्यत्यात्मानं देवमञ्जसा ।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥ २

वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि ।
एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्यते ॥ ३
त्यक्त्वा लोकांश्च वेदांश्च विषयानिन्द्रियाणि च ।
आत्मन्येव स्थितो यस्तु प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ४
कुटुम्बपुत्रदारांश्च वेदाङ्गानि च सर्व्वशः ।
यज्ञं यज्ञोपवीतञ्च त्यक्त्वागूढश्चरेन्मुनिः ॥ ५
त्यजधर्म्ममधर्म्मञ्च उभे सत्यानृतेत्यज ।
उभेसत्यानृतेत्यक्त्वा येन त्यजसि तत्त्यज ॥ ६
यावतः कुरुते जन्तुः संबन्धान्मनसः प्रियान् ।
तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदयेशोकशंकवः ॥ ७
कर्म्मणां परिणामित्वादाविरिञ्चादमङ्गलम् ।
विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ ८
त्वन्तु सर्व्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनवन्धुषु ।
मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृग्विचरस्व गाम् ॥ ९
यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः ।
नश्वरं गृह्यमाणञ्च विद्धि मायामनोमयम् ।१०
सर्व्वभूतसुहृच्छान्तो ज्ञानविज्ञाननिश्चयः ।
पश्यन् मदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ॥ ११
अल्पान्नाभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च ।
ह्रियमाणानि विषयै रिन्द्रियाणि निरोधयेत् १२
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेन च ।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ १३
नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं यथैकता समता सत्यता च ।

शीलं स्थितिं दण्डनिधान मार्ज्जवं ततस्ततश्चोपरमः क्रियाभ्यः
अर्थस्यमूलं निकृतिः क्षमाच कामस्य रूपञ्च वयोवपुश्च ।
धर्म्मस्य यागादि दया दमश्च मोक्षस्य सर्व्वोपरमः क्रि-
याभ्यः ॥ १५ ॥ अरण्यनिष्ठस्य जितेन्द्रियस्य सर्व्वेन्द्रि-
य प्रीतिनिवर्त्तकस्य । अध्यात्मचिन्तागतमानसस्य ध्रुवा
ह्यनावृत्ति रुपेक्षकस्य ॥ १६ विनष्टलोभा विषयेषु निस्पृहाः
प्रशान्तचित्ताः परिहीनमत्सराः । व्रजन्ति विष्णोः पर-
मेव तत् पदं सनातनं यत् प्रवदन्ति सन्तः ॥ १७ अहिं-
सकाःक्षान्तिपरायणा शुभे सुखेषु दुःखेषु समानबुद्धयः ॥
ऋजुस्वभावाविषयेषु निस्पृहा स्तरन्ति संसारसमुद्रम-
श्रमं ॥ १८ निःसङ्गता मुक्तिपदं यतीनां सङ्गादशेषाः प्रभ-
वन्ति दोषाः। आरूढयोगोऽपि निपात्यतेधः सङ्गेन योगी
किमुताल्पसिद्धिः ॥ १९ मन्येकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादा-
म्बुजोपासनमत्र नित्यम्। उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद् विश्वा-
त्मना यत्र निवर्त्ततेभीः ॥ २० न कामकर्म्मवीजानां यस्य
चेतसि सम्भवः । वासुदेवैकनिलयः सवैभागवतोत्तमः ॥२१
न यस्य जन्मकर्म्मभ्यां नवर्णाश्रमजातिभिः । सज्जते
स्मिन्नहं भावो देहेवै स हरेः प्रियः ॥ २२ न यस्य स्वः
पर इति चित्ते स्वात्मनि वा भिदा । सर्वभूतसमः शान्तः
सवै भागवतोत्तमः ॥ २३ त्रिभुवन विभव हेतवे ऽप्यकुण्ठ-
स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ॥ न चलति भगवत्
पदारविन्दा ल्लवनिमिषार्द्धमपि स वैष्णवाग्र्यः ॥ २४
भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशाखा नखमणि चन्द्रिकया निर-

स्ततापे ॥ हृदिकथमुपसीदतां पुनः स प्रभवति चन्द्र इवो
दितेऽर्कतापः ॥ २५ विसृजति हृदयं न यस्य साक्षात् ।
हरिरवशाभिहितो प्यघौघनाशः ॥ २६ प्रणयरशनयाधृता-
ङ्घ्रिपद्मःसभवति भागवतप्रधानउक्तः ॥ कृष्णाङ्घ्रिपद्मम-
धुलिट्नपुनर्विसृष्टमायागुणेषु रमते वृजिनावहेषु ॥ २७
अन्यच्चकामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टुमीहेत कर्म्मयत एव
रजः पुनःस्यात्॥विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनेत्रपादारविन्द
विमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठं । मन्ये तदर्पितमनो वचनो हिनाथ
प्राणं पुनाति सकुलं नतु भूरिमानः ॥ २८॥ यत्पादपङ्कज-
पलाश विलाश लक्ष्म्या कर्म्माशयं ग्रथित मुद्ग्रथयन्ति
सन्तः । तद्वन्नरिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्ध श्रवो गुण
स्तमरणं भज वासुदेवम्॥२९ घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्व्वधर्म्म
विवर्ज्जिते । वासुदेवपरा राजन् कृतार्थास्तेन संशयः॥ ३० ॥

अथेदानीं ध्यानप्रशंसा ॥

ध्यानं नाम आत्मप्रत्ययैकता ज्ञानसन्ततानुवृत्तिः । तस्याः
आदरनैरन्तर्य्यदीर्घकालाभ्यासोपपत्तेः तदुक्तं ॥ अखण्ड-
दण्डायमान सच्चित् सुखाद्वयब्रह्मैककारान्तःकरणवृत्तिर्ध्या-
नमिति । तच्चाद्विविधं । ध्यानन्तु द्विविधं प्रोक्तं सगुणं नि-
र्गुणं तथा । सगुणं वर्णभेदेन निर्गुणं केवलं स्मृतम् ॥ १

ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः ।
संयास्यत्याशुनिर्व्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः ॥ २
विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विसर्ज्जते ।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥ ३

यत्र यत्र मनोदेही धारयेत् सकलं धिया ।
स्नेहाद् द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्स्वरूपताम् ॥ ४
क्षणं ब्रह्माहमस्मीति यः कुर्य्यादात्मचिन्तनम् ।
स सर्व्वपातकं हन्ति तमः सूर्य्योदये यथा ॥ ५
अहमेव परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम् ।
इति स्यान्निश्चितोमुक्तो वद्ध एवान्यथा भवेत् ॥ ६
आदिमध्यान्तमुक्तोहं न वद्धोऽहं कदाचन ।
स्वभावनिर्म्मलः शुद्ध इति मे निश्चितामतिः ॥ ७
यो नित्यमध्यात्ममयो नित्यमन्तर्मुखः सुखी ।
नित्यं चिदनुसन्धानो न स शोकेन वध्यते ॥ ८
भ्रमस्य जागतस्यास्य जातस्याकाशवर्णवत् ।
अपुनः स्मरणं साधो मन्ये विस्मरणं वरम् ॥ ९
यत् किञ्चिदपि सकल्पान्नरोदुःखे निमज्जति ।
न किञ्चिदपि संकल्प्य सुखमक्षयमश्नुते ॥ १०
यदा न भाव्यते किञ्चित् हेयोपादेयरूपि यत् ।
स्थीयते सकलं त्यक्त्का तदा चित्तं न जायते ॥ ११
एतज्ज्ञानं परं प्रोक्तं पूजैषैव परा स्मृता ।
यदनारतमन्तःस्थं शुद्धचिन्मात्रवेदनम् ॥ १२
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्म्मसु ।
युक्तस्वप्नाववोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १३
स हि सर्व्वैर्विजिज्ञास्य आत्मैवाश्रमवर्त्तिभिः ।
श्रोतव्यस्त्वथमन्तव्यो द्रष्टव्यश्च प्रयत्नतः ॥ १४
आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्तच्चयोगादृते नहि ।

सच योगश्चिरं कालमभ्यासादेव सिध्यति ॥ १५
नारण्यसंश्रयाद्योगो न नानाग्रन्थभेदनात् ।
न दानैर्नैव्रतैर्वापि न तपोभिर्नवामखैः ॥ १६
न च पद्मासनाद्योगो न च नासाग्रवीक्षणात् ।
न शौचेन नमौनेन न मन्त्राराधनैरपि ॥ १७
अभियोगात् सदाभ्यासात् तत्रैव च विनिश्चयात् ।
पुनः पुनरनिर्व्वेदात् सिध्येद्योगो न चान्यथा ॥ १८
आत्मक्रीड़स्य सततं सदात्ममिथुनस्य च ।
आत्मनैव सुतृप्तस्य योगसिद्धिर्नदूरतः ॥ १९
आलोक्य सर्व्वशास्त्राणि विचार्य्य च पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥ २०
एतज्ज्ञानं परं प्रोक्तं योगश्चैव परःस्मृतः ।
सदा नारायणध्यानं सर्व्वशास्त्रप्रयोजनम् ॥ २१

ध्यानादिकारणमाह ॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्म्मसु ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रत्याहृत्य मनश्चलम् ॥ २२
प्रत्यगात्मनि संस्थाप्य ध्यानं कुर्य्याद्यतिः सदा ।
त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥ २३
पिधायबुद्धयाद्वाराणि मनो ध्याने निवेशयेत् ।
शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वनेषु च ॥ २४
नित्ययुक्तः सदायोगी ध्यानं सम्यगुपक्रमेत् ।
भयं क्रोधमथालस्यमतिस्वप्नाति जागरम् ॥ २
अत्याहारमनाहारं नित्यं योगी विवर्ज्जयेत् ।

ध्यानात् पापानि नश्यन्ति ध्यानान् मोक्षञ्च विन्दति ॥ २६
ध्यानात् प्रसीदति हरिर्ध्यानं सर्व्वार्थसाधनम् ॥
क्षणं ब्रह्माहमस्मीति यः कुर्य्यादात्मचिन्तनम् ।
तन्महापातकं हन्ति तमः सूर्य्योदये यथा ॥ २७
यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं योजनान् वहून् ।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्योभेदः कदाचन ॥ २८
नित्यमभ्याससंयुक्तो हृदये यदि भावयेत् ।
तन्मयत्वमवाप्नोति कोशाङ्गानीव कीटकः ॥ २९
सर्व्वपापप्रसक्तोऽपि ध्यायन्निमिषमच्युतम् ।
द्विजस्तपस्वी भवति पंक्तिपावनपावनः ॥३०
ध्यानेन सदृशं नास्ति शोधनं पापकर्म्मणाम् ।
श्वपाकेष्वपि भुञ्जानोध्यानेनैव न लिप्यते ॥३१
कृष्णानुस्मरणादेव प्रायश्चित्तानि भारत ।
शृण्वन्नपि स्तुवन्नित्यं स्मरन्नपि युधिष्ठिर ॥ ३२
महापातकजान् मर्त्त्योमुच्यते सर्व्वकिल्विषात् ।
यथाग्निरुद्धताशिखः कक्षं दहति सानिलः ॥ ३३
तथा चित्तस्थितो विष्णुर्नराणां सर्व्वकिल्विषम् ।
यद्वाल्ये यच्च कौमारे यत् पापं यौवने कृतम् ॥ ३४
तत् पापमखिलं क्षिप्रं स्मृते विष्णौ प्रणश्यति ।
ब्रह्महत्यासहस्राणि अगम्यागमनानि च ।
एकेन ध्यानयोगेन नश्यन्त्यन्यानि तत्क्षणात् ॥३५
अपिचेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ॥३६
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ।

अश्वमेधसहस्त्रैस्तु वाजपेयशतैरपि ॥ ३७
यत् पापं विलयं याति स्मृते नश्यति तद्धरौ ।
गङ्गास्नानसहस्त्रैस्तु पुष्करस्नानकोटिभिः ॥ ३८
यत् पापं विलयं किञ्चिद्योगी कुर्य्यात् प्रमादतः ।
योगमेव निषेवेत नान्यं यत्नं कदाचन ॥ ३९
उपपातकसर्व्वेषु पातकेषु महत्सुच ।
प्रविश्यरजनीपादं ब्रह्मस्नानं समाचरेत् ॥ ४०
प्रायश्चित्तेषु सर्व्वेषुयतेर्ध्यानं विशिष्यते ।
प्रणवस्य जपोवाथ मूलमन्त्रस्य संस्मृतः ॥ ४१
जपध्यानतपोध्यानान्नान्यद्धित्तोर्हि साधनम् ।
तस्मात्तानि सदा कुर्य्याद्यतिः शुद्ध्यर्थमात्मनः ॥ ४२
प्रपञ्चमखिलं यस्तुज्ञानाग्नौ जुहुयाद्यतिः ।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य सोऽग्निहोत्री न चेतरः ॥ ४३
यस्मिन् शान्तिः समः शौचं सत्यं सन्तोषमार्ज्जवम् ।
अकिञ्चनोह्यदम्भश्च स कैवल्याश्रमं वसेत् ॥४४
अतीतान् न स्मरेद्भोगान्नतथानागतानपि ।
बन्धमोक्षविभागज्ञो बद्धश्चेन्मोक्षणेच्छया ॥ ४५
उपायान्वेषणे युक्तः कोन मुच्येत बन्धनात् ॥

तत्रसन्यासे कृतार्थतामाह ।

ये च सन्तानजादोषा इत्यादि पूर्व्वमुक्तं । तत्तात्पर्य्यमाह ॥ अथ केवलेन संन्यासेन न मुक्तिर्नापि केवलेन ज्ञानेन । यदि केवलेन ज्ञानेन मुक्तिस्तर्हि याज्ञवल्क्य श्वेतकेतु प्रभृतीनां ज्ञानिनामपि संन्यासग्रहणानुप-

पत्तिः स्यात् । दृश्यते च तस्मात् संन्यासज्ञानाभ्यां मुक्तिरित्ये-
तदाह ॥अत्रिः॥ न तावन्मुच्यते दुःखाज्जन्म संसार बन्धनात्
यावन्नधारयेद्विप्रो वैष्णवं लिङ्गधारणम् ॥ १
प्रत्यगूध्वान्तसमुच्छेदि ज्ञानमैकात्म्यनिष्ठता ।
संन्यास साधनं प्रोक्त ममृतत्वैकसाधनम् ॥ २
आत्मज्ञानश्च सन्यासो मोक्षायेत्यागमात् श्रुतेः ।
निःशेषकर्म्मसंन्यासं विद्यायाः साधनं श्रुतम् ॥ ३
संन्याससाधनं ज्ञानं निर्वर्त्त्यत्रापि च श्रुतिः ।
योगाभ्यासरतः शान्तो निर्धूताशेषकल्मषः ॥ ४
ब्रह्मविद्ब्रह्म भवति परिव्राडेव नेतरः ।
सर्व्वात्मनापि सर्व्वेभ्यो विषयेभ्यो निवर्त्तनम् ॥ ५
ब्रह्मविद्यासमायुक्तयतित्वं मुक्ति साधनम् ।
यतित्वव्यतिरेकेण यो यतेत् सचमूढधीः ॥
दुःखात्यन्त निवृत्तौ च विना वा ब्रह्मविद्यया । ६
॥ श्रुतिरपि ॥ वेदान्त विज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यास योगा-
यतयः शुद्धसत्वाः । ते ब्रह्मलोकेषुपरान्तकाले परामृतात्
परिमुच्यन्ति सर्व्वे ॥ ७ ॥ (अथेदानीं श्रवणादौ संन्यास्ये-
वाधिकारी नान्यइति ।) तद्दर्शयन्नाह ॥
त्यक्ताशेषक्रियस्यैव संसारं प्राजिहासतः ।
जिज्ञासोरेव चैकात्म्यं त्रय्यन्तेष्वधिकारिता ॥ १
सर्व्वसङ्गविनिर्म्मुक्तो मोक्षमात्रप्रयोजनः ।
अतोऽधिक्रियते प्रत्यक् ज्ञानोत्पत्तौ न रागवान् ॥ २
नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।

नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ ३
आब्रह्मणोऽस्मात् संसाराच्छुद्धधीर्न विरज्यते ।
यावत्तावन्न विद्याया अधिकारी भवेन्नरः ॥ ४
न निवर्त्तयितुं शक्तं रागाद्व्याकुलचेतसः ।
शास्त्रं विरक्तचित्तत्वान्न प्रवर्त्तयितुं क्षमः ॥ ५
यथा तथा परा ह्यत्र श्रुतयः सन्ति कोटिशः ।
ज्ञाननिरोधिनी यद्वत् प्रवृत्तिः सर्व्वकर्म्मणाम् ॥ ६
सर्व्वकर्म्माशयतस्त्यक्त्वा प्रत्यक्प्रणवबुद्धयः ।
मोहं भित्वात्मसंबोधाद्ययुः कैवल्यमुत्तमम् ॥ ७
जिज्ञासुरपि वै तस्य यथोक्तस्यात्मवस्तुनः ।
सर्व्वेषणानिवृत्त्यैव तज्ज्ञानं समवाप्नुयात् ॥ ८
अथेदानीं यतिभिः श्रवणादावेवादरः कार्य्यः
नत्वन्यत्र इति कथयन् श्रवणादि व्यतिरिक्तानुष्ठाने दोषानाह॥
त्वं पदार्थविवेकाय संन्यासः सर्व्वकर्म्मणाम् ।
श्रुत्या विधीयते तस्मात्त्यागी पतितो भवेत् ॥ ९
शिखासूत्रपरित्यागी वेदान्तश्रवणं विना ।
विद्यमानेऽपि सन्न्यासे पतत्येव न संशयः ॥ १०
प्रमादिनो वहिश्चित्ताः पिशुनाः कलहोत्सुकाः ।
सन्यासिनोऽपि दृश्यन्ते दैवसन्दूषिताशयाः ॥ ११
कारकस्य करणेन तत्क्षणाद्भिक्षुरेव पतितो यथा भवेत् ।
व्यञ्जकस्य परिवर्ज्जनात्तथा सद्यएव पतितो यथा भवेत् ॥
अन्तरङ्गमपवर्गसाधनं कार्य्यमेव यतिभिः प्रयत्नतः ।
त्याज्यमेव वहिरङ्गसाधनं यत्नतः पतनभीरुभिर्भवेत् ॥ १२

यच्छ्रुतं विविदिषोदयाय तत् सर्व्वमेव बहिरङ्गसाधनम् ।
अन्तरङ्गमवगच्छतत् पुनर्यत् परावगतिसाधनंश्रुतम् ॥१४॥
यद्विकारकतयावगम्यते दूरतस्तदिह साधनं धियः ।
अन्तरङ्ग मखिलन्तुतत् पुनर्व्यञ्जकं भवति यत् परात्मनः ॥१५॥
तस्मात् कर्म्मसमस्तमेव तु भवेदिच्छाजनेः साधनम् ।
शास्त्रेणोक्तमतः समस्तमपि तद्यत्नेन हेयं यतेः ॥ १६
द्रष्टव्यत्वमनूद्य साधनतया यत्तत् प्रतीचः श्रुतं वेदान्त श्र-
वणादिकं भवति तत् कर्त्तव्यमावश्यकं ॥ १७ ॥
अथ संन्यासिनां महावाक्य विचारणमेव मुख्योधर्म्म
इत्याह ॥ परिपूर्णचिद्रसघनः सततं स्वे महिम्नि
तिष्ठत्यमले न तथापि तत्त्वमसिवाक्यकृतां मतिमन्तरेण
तवकेवलता । पदार्थबोधं परिहत्यवाक्यं न शक्तमात्मानु-
भवावसानं ॥१८॥ धियं समानेतुमपेक्षितत्वादतः प्रयत्नेन
निरूपितोभूत् । स्वाध्याय धर्म्म पठितं निजवेदशाखा वेदान्त-
भूमिगतमादर पालितञ्च ॥१९॥ संन्यासिनां परदृशा गुरुणोप-
दिष्टं साक्षान् महावचनमेव विमुक्तिहेतुः वेदान्तवाक्यमिह
कारणमात्मबोधे हेत्वन्तराणि परिपन्थिनिवर्हणानि ॥२०
यज्ञादिकानि दुरितं क्षपयन्ति बुद्धे स्तत्त्वं पदार्थविषयंतम
उत्तराणि नित्यबोधपरिपीडितं जगद्विभ्रमन्नुदतिवा-
क्यजा मतिः ॥ २१ वासुदेवनिहतं धनञ्जयो हन्ति कौ-
रवकुलं यथा पुनः । अनाद्यविद्यापटनेत्रवन्धनं प्रसज्य
वेदान्त निवन्धनामतिः ॥ २२ स्वजन्ममात्रेण दृढात्मगो-
चरा समूलदाहं दहतीति हि श्रुतिः । वेदान्तवाक्यजनि-

ता मतिवृत्तिरेव मुत्पत्तितः सकलमेवभवार्णवाम्भः ॥२३॥
पीत्वा स्वयञ्च खलु शाम्यति दग्धलोहा पीतं यथाम्बुचितिमेव
तु शोषयित्वा।पदार्थबोधेन कृतार्थता न ते मतिःपरोक्षाहिपदार्थ-
गोचरा॥२४॥अतोमहावाक्यनिबन्धनैवधीरबोधविच्छेदकरी
भविष्यति । वाक्योत्थापितबुद्धिवृत्तिरमलायज्ञादिभिर्नि-
श्चला वेदान्तश्रवणादिभिः स्फटिकवत् स्वच्छासतीतार-
कम् रूपंदर्पणवद्विभाति परमं विष्णोःपदं सन्नि-
धेरेतस्मादिह कारणादथभवेत् संसारबीजक्षयः।श्रवणादिकं
शमदमादिपरः परमात्मनः परमभागवतः । कुरुतावता-
परममेव पदं परमात्मनस्त्वमवलोकयसि ॥ २६ ॥

संसारदोषमवधारयतोयथावद्वैराग्यमुद्भवति चेत-
सिनिःप्रकंपंवैराग्यजन्मनि दृढे च सति प्रवृत्तिस्त-
त्वं पदार्थपरिशोधन कर्म्मणि स्यात् । तत्त्वमस्यादिवा-
क्योत्थं यत् । जन्मान्तरेषु यदिसाधनज्ञानमासीत् सं-
न्यास पूर्व्वकमिदं श्रवणादिरूपं विद्यामवाप्स्यसि ततः
सकलोऽपि यत्र तत्राश्रमादिषु वसन्न निवारयामः॥ २७॥
अपिच परमहंस स्त्यक्तसर्व्वैषणः सन् अनुभवफलं विद्या-
साधनैर्यद्यवाप्य।कथमिव पुनरस्य प्राप्तिरस्ति क्रियायां भ-
वतु तदपवर्गोविश्रयैवैकयास्य सम्यक्ज्ञानध्वस्तसर्व्वप्र-
पञ्चः स्वीये रूपे निर्गुणे निर्व्विशेषे पूर्णैं श्वर्य्यैस्वप्रकाशस्वरूपे
स्वेराज्येऽस्मिन् स स्वराडेव तिष्ठेत् ॥ २८ ॥ तवरूपमेव
तवदुःखकरं यदि तन्न पश्यसि वहिर्मुखधीः ।
तव रूपमेव तव तृप्तिकरं यदि तत् प्रपश्यसि निवर्त्यतमः २९

विधयश्च कर्म्मविषयाः स्वतमःपटलावृतेत्वयि वहिर्मनसि कृत एव सम्यगववोधहृते तमसिप्रवृत्तिरिहसम्भवति ॥ ३० अज्ञान तज्ज्ञमतिहीनतया सुषुप्तेशुद्धः परोऽसि भगवानसि नित्यमुक्तः ॥ ३१ ॥ कामश्चकर्म्मसकलश्च तदा कुतस्त्वं चितूसागरेनवसरे त्वयि तापमाने । तवगाढ मूढतमसारचितं जगदीश जीववपुषासकलं ॥ ३२ ॥

प्रतिभाति तावद्दृढं दृढवत् समुदेति यावदववोधरविः । पश्यामिविचित्रामिव सर्व्वमिदं द्वितीयं तिष्ठामि निष्कलचिदेकरसं वपुस्ते ॥ ३३ ॥ आत्मानमद्वयमनन्तसुखैकरूपं पश्यामिदग्धरशनामिव च प्रपञ्चं । नित्यः शुद्धोवुद्धमुक्तस्वभावः सत्यः सूक्ष्मः सद्विभुश्चाद्वितीयः ॥ ३४ आनन्दाद्धिर्यः परः सोऽहमस्मि प्रत्यक्ध्यातुर्नात्रसंभातिरस्ति॥३५॥ अथेदानीं श्रवणादि प्रशंसामाह ॥ किं तीर्थैः किं प्रदानैर्वा किं यज्ञैः किमुपोषितैः । अहन्यहनितंदेवं तन्मयत्वेन शृणवताम् ॥ ३६ वैष्णवं चरितं पुण्यमायुरारोग्यपुष्टिदम् । पठतः शृणवतोवापि सर्व्वपापं व्यपोहति ॥ ३७

श्रवणान्मननाच्चैव निदिध्यासनतस्तथा ।
आराध्यं सर्व्वदा ब्रह्म पुरुषेण हितैषिणा ॥ ३८
मत्कथावाचकं नित्यं मत्कथाश्रवणेरतम् ।
मत्कथाप्रीतिमनसं नाहं त्यक्ष्यामि तं नरम् ॥ ३९
नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये रवौ ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥ ४०
दद्यान्नावसरं किञ्चित् कामादीनांमनागपि ।

आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदान्तचिन्तयेति ॥ ४१

अथ श्रवणमर्य्यादाकालमाह ॥

यावद्देवात्मविज्ञानमातदाभासवर्जितम् ।
सुनिश्चितंभवेत्तावच्छ्रवणादिव्रतोभवेत् ॥४३
अहंब्रह्मेति वाक्यार्थवोधो यावद्दृढो भवेत् ।
शमादिसहितस्तावदभ्यसेच्छ्रवणादिकम् ॥४४
तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रवोधनम् ।
एतदेकपरत्वञ्च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः ॥४५
यस्यनास्ति स्वयं प्रज्ञाशास्त्रं तस्य करोतिकिम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥४६
रागोलिङ्गमवोधस्य चित्तव्यायामभूमिषु ।
कुतः शाद्वलतातस्य यस्याग्निः कोटरेतरोः ॥४७
रागाक्रान्तेकुतः स्वान्ते ब्रह्मविद्यालवाङ्कुरः ।
स्फीतानिलाकुलेदेशे क्व दीपकलिकोदयः ॥४८
ब्राह्मणाद्यात्मकेदेहे नात्मन्यात्मेति भावना ।
श्रुतेः किंकरतामेति वाङ्मनःकायकर्म्मसु ॥४९
दग्धाखिलाधिकारश्चेद्ब्रह्मज्ञानाग्निना मुनिः ।
वर्त्तमानः श्रुतेर्मूर्ध्नि नैवस्याद्विधिकिंकरः ॥५०
द्वैतभावोहिदुःखाय सुखायाद्वैतभावना ।
भारायान्नं पृथक्भूतं भुक्तमन्नं सुखावहम् ॥५१
तेनाधीतं श्रुतं पृष्टं तेन सर्व्वमनुष्ठितम् ।
येनाशां पृष्ठतः कृत्वा वैराग्यमवलंवितमिति ॥५२

॥ अथेदानीं महावाक्यार्थविचारानन्तर

परिणतान्तःकरणानां जीवन्मुक्तानां लक्षणमाह ॥
ज्ञातज्ञेयस्य मनसोनूनमेतद्धिलक्षणम् ।
न स्पन्दन्ते समग्राणि भोगवृन्दानि यत् पुनः ॥५३
उत्पन्नात्मावबोधस्य अद्वेष्टृत्वादयोगुणाः ।
अयत्नतोभवन्त्यस्यनतु साधनरूपिणः ॥५४
दोषबुद्धया भयातीतो निषेधान्न निवर्त्तते ।
गुणबुद्धयाच विहितं न करोति यथार्भकः ॥५५
ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ।
नचास्ति किञ्चित् कर्त्तव्यमस्ति चेन्न सतत्त्ववित् ॥५६
सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम् ।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावतामिति ॥५७
गीतायां ॥ यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येवचसंतुष्टस्तस्य कार्य्यं न विद्यते ॥५८
नैवतस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
नचास्य सर्व्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ ९
न प्रहृष्येत् प्रियंप्राप्यनोद्विजेत् प्राप्यचाप्रियम्
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥६०
यतेन्द्रियमनोबुद्धि र्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदामुक्त एवसः ॥६१
यानिशासर्व्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६२
प्रजहाति यदाकामान् सर्व्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मनातुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥६३ इति

(वृहदारण्यके)आत्मानञ्चेद्विजानीयादयमस्मीति पुरुषः।
किमिच्छन् कस्यकामाय शरीरमनुसञ्जरेत् ॥१
यत्रत्वस्य सर्व्वमात्मैवाभूत्तत् केन कं पश्येत् ।
त्यक्तैषणात्रयमत्रेक्षित मोक्षमार्गा भिक्षामृतेन परिकल्पित-
देहयात्राः।ज्योतिःपरात् परतरं परमात्मसंज्ञं धन्याद्विजा रह-
सिहृद्यवलोकयन्ति २ किंकृत्यं किमकृत्यं किंकरणीयं किमप्य-
करणीयम्।किंचिन्त्यं किमचिन्त्यं।निखिलमिदं स्वं विजानतां
विदुषां।एतावदेव खलु लिङ्गमलिङ्गमूर्त्तेः संशान्तसंसृति चिर-
भ्रम निर्वृतस्य ।३। तज्ज्ञस्ययन्मदनकोपविषादमोहलोभा-
पदामनुदिनंनिपुणं तनुत्वं। नप्रीति र्विषयेष्वस्ति प्रेयानात्मेति
जानतां॥४॥ कुतोरोगः कुतोदोषः प्रातिकूल्यमपश्यतः।
दर्शनादर्शने हित्वास्वयं केवलरूपतः ॥५
यस्तिष्ठति स तु ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवित्स्वयम् ॥
नैष्कर्म्म्येण न तस्यार्थो न तस्यार्थोऽस्ति कर्म्मभिः॥६
नसन्ध्या न जपाभ्यासो यस्य निर्व्वासनं मनः।
आत्मासङ्गस्ततोन्यत् स्यादिन्द्रजालमिदं जगत् ॥७
इत्यचञ्चलनिर्णीतेः कुतोमनसिवासना।
न सुखानि न दुःखानि न मित्राणि न शत्रवः ॥८
न जीवितं नमरणं वन्धाय ज्ञस्य चेतसः।
यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतो पिच ॥९
अस्तंगतंस्थितंव्योम स जीवन्मुक्त उच्यते।
नोदेति नास्तमायाति सुखे दुःखे मुखप्रभा ॥१०
यथाप्राप्तस्थितेर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते।

यो जागर्त्ति सुषुप्तस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते ॥
यस्य निर्व्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥११
यथा विपणिगा लोका विहरन्तोऽप्यसत् समाः ।
असम्बन्धात्तस्य चैव ग्रामोऽपि विपिनोपमः ॥१२
अन्तर्मुखमना नित्यं सुप्तो बुद्धो व्रजन् पठन् ।
पुरञ्जनपदं ग्राममरण्यमिव पश्यति ॥१३
न विस्मरति सर्व्वत्र यथा सततगो गतिम् ।
न विस्मरत्यविरतं चिन्मात्रं प्राज्ञधीस्तथा ॥१४
आत्मवानिह सर्व्वस्मादतीतो विगतैषणः ।
आत्मन्येव हि संतुष्टो न करोति न चेहते ॥१५
येकेचन जगद्भावास्तानविद्यामयान् विदुः ।
कथं तेषु किलात्मज्ञस्त्यक्ताविद्यो निमज्जति ॥१६
यो हि यत्र विरक्तः स्यान्नासौ तस्मिन् प्रवर्त्तते ।
लोकत्रयाद्विरक्तत्वान्मुमुक्षुः किमितीहते ॥१७
अप्रमोत्थं प्रमोत्थेन ज्ञानं ज्ञानेन बाध्यते ।
अहिरज्ज्वादिवद्बाधो देहाद्यात्ममितेस्तथा ॥१८
ऐकात्म्यमात्रकूटस्थप्रबोधावसिते कुतः ।
मातृमानक्रियामेयव्यवहारस्य संभवः ॥१९
आप्ताशेषपुमर्थस्य प्रत्यगूपान्धात्मबोधतः ।
दग्धात्मतमसः पुंसो नैषणापेक्षतेष्यते ॥२०
क्षीरात् सर्पिर्यथोद्धृत्य क्षिप्तं तस्मिन्न पूर्व्ववत् ।
बुद्ध्यादेर्ज्ञस्तथा सत्वान्नदेही पूर्व्ववद्भवेत् ॥२१
द्रष्टृदर्शनदृश्यादे भेदोऽविद्याप्रकल्पितः ।

यतोमोहस्य विहतौद्रष्टृदृश्यादि नेक्ष्यते ॥ इति ॥२२
ज्ञानिनां लक्षणमुक्त्वा तज्ज्ञानं कथंस्यादित्याकाङ्क्षायामाह ।
अमानित्वादिनिष्ठोयो यश्चाद्वेष्ट्रादिसाधनः ।
ज्ञानमुत्पद्यते तस्यन वहिर्मुखचेतसः ॥२३
सिद्धिंप्राप्तो यथा ब्रह्म नाचिरेणाधिगच्छति ।
श्रद्धावान्लभतेज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ॥२४
ज्ञानंलब्ध्वा परांशान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्व्वत्रसमबुद्धयः ॥२५
ते प्राप्नुवन्तिमामेव सर्व्वभूतहितेरताः ॥ इति
निःशेषकर्म्मसंन्यासं विद्यायाः साधनं स्मृतम् ॥२६
सन्न्याससाधनं ज्ञानं निर्वर्त्यत्रापिच श्रुतिः ।
जिज्ञासुरपि चैतस्य यथोक्तस्यापि वस्तुनः ॥२७
सर्व्वैषणानिवृत्यैव सतज्ज्ञानमवाप्नुयात् ।
आब्रह्मणोस्मात् संसाराच्छुद्धधीर्न विरज्यते ॥२८
यावत्तावन्नविद्याया अधिकारीभवेन्नरः ।
आशाचैवास्य विवशे चित्तेसन्तोषवर्ज्जिते ॥२९
म्लानेवक्त्रमिवादर्शे न ज्ञानं प्रतिविम्बति ।
कोऽहंकथमिदं चेति यावन्न प्रविचारितम् ॥३०
संसाराडम्वरं तावदन्धकारोपमं स्थितम् ।
आत्मानमितरञ्चैवदृशा नित्यावभिन्नया ॥३१
सर्व्वंवै ज्योतिरेवेतियः पश्यति स पश्यति ।
कृशोतिदुःखीवद्धोऽहं हस्तपादादिमानहम् ॥३२
इति भावानुरूपेण व्यवहारेण वध्यते ।

नाहं दुःखी न मे देहो बन्धः कोऽस्यात्मनः स्थितः ॥ ३३
इतिभावानुरूपेण व्यवहारेण मुच्यते ।
नाहं ब्रह्मेति संकल्पात् सुदृढाद्बध्यते जनः ॥ ३४
सर्व्वं ब्रह्मेति संकल्पात् सुदृढान्मुच्यते नरः ।
अध्यासमात्रमेवेदं चिन्मात्रकमिदं जगत् ॥ ३५
इत्यन्यकलनात्यागः सम्यगालोकनं विदुः ।
सर्व्वं ब्रह्मेति यस्यान्तर्भावना सा विविक्तिदा ॥ ३६
भेदबुद्धिरविद्येयं सर्व्वथा तां परित्यज ।
यद्रूपज्ज्ञेयमहंतत्त्वं नेति संत्यज्य युक्तिभिः ॥ ३७
प्राप्यावशिष्टं चिन्मात्रं तदेवास्मीति भावयेत् ।
नाहं नचान्यदस्त्विति ब्रह्मैवास्मि निरामयम् ॥ ३८
आनन्दरूपं सर्व्वञ्चेत्यनुद्वेगादुपास्यताम् ।
अनन्ते चित्घनानन्दे निर्विकल्पैकरूपिणि ॥ ३९
स्थिते द्वितीयस्याभावात् को बद्धः कश्च मुच्यते ।
न जायते म्रियते वा क्वचित् किञ्चित् कदाचन ॥ ४०
जगद्विवर्त्तरूपेण केवलं ब्रह्म जृम्भते ।
सर्व्वमेवमिदं शान्तमादिमध्यान्तवर्ज्जितम् ॥ ४१
भावाभावविनिर्मुक्तमितिमत्वा सुखी भव ।
परिज्ञानेन सर्पत्वं चित्रसर्पस्य नश्यति ॥ ४२
यथा तथैव संसारः स्थित एवोपशाम्यति ।
भोगवासनया बन्धो यातिर्दार्ढ्यमवस्तुतः ॥ ४३
तयोपशान्तया याति बन्धो जगतितानवम् ।
परमं पौरुषं यत्नमादायादाय सूक्ष्मम् ॥ ४४

यथाशास्त्रमनुद्वेगमाचरन् कोन सिद्धिभाक् ।
यथागाधनिधेर्लब्धौ नोपायः खननं विना ॥ ४५
तल्लाभोऽपि तथास्वात्मचिन्तायुक्तो न चापरः ।
इदंरम्यमिदं नेति वीजन्ते दुःखसन्ततेः ॥ ४६
तस्मिन् साम्याग्निनादग्धे दुःखस्यावसरः कुतः ।
एतावदेव विद्यात्वं नेदं ब्रह्मेति निश्चयः ॥ ४७
शास्त्रार्थगुरुचेतोभि स्तावत्तावद्विचारयेत् ।
सर्व्वदृश्यत्तयाभ्यासाद् यावद्वासाद्यते परम् ॥ ४८
देहाद्यात्मत्वविभ्रान्तो जाग्रत्यां न हठात् पुमान् ।
ब्रह्मात्मत्वेन विज्ञातुं क्षमते मन्दधीस्त्वितः ॥ ४९
अनात्मार्थप्रधानोऽयं यावदात्मा समीच्यते ।
ब्रह्मास्मीति न तावद्धीर्जायते सान्तरायतः ॥ ५०
नारायणं सदाध्यायेन्निराकारं निरञ्जनम् ।
अहं ब्रह्म विजानीयात्तेन मुच्येत वन्धनात् ॥ ५१
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिप्रपञ्चं यत् प्रकाशते ।
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्व्ववन्धैः प्रमुच्यते ॥ ५२
योऽयं स्थाणुः पुमानेष पुंधिया स्थाणुधीरिव ।
ब्रह्मास्मीति धियाशेषा ह्यहं बुद्धिर्निवर्त्तते ॥ ५३
सर्व्वमेवचिदाकाशं ब्रह्मेति घननिश्चये ।
स्थितिं याते समं याति जीवो निःस्नेहदीपवत् ॥ ५४
समस्तमेव ब्रह्मेति भाविते ब्रह्म वै पुमान् ।
पीतेऽमृतेऽ मृतमयः को नाम न भवेदिह ॥ ५५
आकाशसदृशं सर्व्वं कल्पनामात्रजृम्भितम् ।

जगत् पश्य महाबुद्धे सुदीर्घं स्वप्नमुत्थितम् ॥ ५६
न वन्धोऽस्ति न मोक्षोऽस्ति ब्रह्मैवास्मि निरामयम् ।
नैक्यमस्ति न च द्वित्वं संविदेव विजृम्भते ॥ ५७
एष एव मनोनाशस्त्वविद्यानाश एव च ।
यद्यत् संवेद्यते किञ्चित्तत्रास्थापरिवर्ज्जनम् ॥ ५८
अहं परं ब्रह्म विनिश्चयात्मदृक् न जायते भूय इति श्रुतेर्वचः । न चैव वीजेत्वसति प्रजायतेफलं नजन्मास्ति ततोह्यमोहता ॥५९ न रक्तमुल्बणंवासोननीलञ्च प्रशस्यते ।
मलाक्तञ्चदशाहीनं वर्जयेदंवरं यतिः ॥ ६०
विन्यस्ताखिलकर्म्मापि पितुर्वन्द्यो हि मस्करी ।
सर्व्ववन्द्येन यतिना प्रसूर्वन्द्या प्रयत्नतः ॥ ६१
श्रद्धाहीना नास्तिकाश्च यत्रलोका वसन्ति हि ।
भिक्षुणा तत्र नस्थेयं क्षणमात्रं कदाचनेति ॥ ६२

मुण्डकोपनिषदि॥ नायमात्मा वलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसोवाथ लिङ्गात् । एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्माविशते ब्रह्मधाम ॥ १ ॥ सम्प्राप्यैनमृषयोज्ञानतृप्ताः कृतात्मनोवीतरागाः प्रशान्ताः । ते सर्व्वगं सर्व्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्व्वमेवाविशन्ति ॥ २ ॥

वेदान्तविज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः । ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्व्वे ॥ ३ ॥ गताः कलाः पञ्चदशप्रतिष्ठा देवाश्च सर्व्वे प्रतिदेवतासु । कर्म्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेव्ययें सर्व्वएकीभवन्ति ॥ ४ ॥ यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे

ऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय । तथा विद्वान्नामरूपाद्वि-
मुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यं ॥ ५ ॥

स यो ह वै तत् परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति नास्या ब्रह्म-
वित् कुले भवति ॥ ६ ॥ तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहा-
ग्रन्थिभ्यो विमुक्तो ऽमृतो भवति ॥ ७ ॥ तदेतदृचाभ्युक्तं
क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं जुह्वते एकर्षिंश्रद्धय-
न्तः । तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु
चीर्णं तदेतत् सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच नैनदचीर्णव्रतो
धीते॥८॥ नमः परमऋषिभ्यो नमः परम ऋषिभ्यः॥ इति॥
गरुड़पुराणे त्रयोदशाध्याये तत्त्वज्ञानोपायमाह ॥ १३
गरुड़ उवाच ॥ श्रुतामयादयासिंधो ह्यज्ञानाज्जीवसंसृतिः ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि मोक्षोपायं सनातनम् ॥ १ श्रीभग-
वानुवाच ॥ शृणुतार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
यस्य श्रवणमात्रेण संसारान्मुच्यते नरः ॥२॥ अस्तिदेवः
परब्रह्मस्वरूपीनिष्कलः शिवः । सर्व्वज्ञः सर्व्वकर्त्ता च सर्व्वे-
शोनिर्म्मलाद्वयः ॥३॥ स्वयंज्योतिरनाद्यंतोनिर्व्विकारः परात्
परः । निर्गुणः सच्चिदानन्द स्तदंशाज्जीवसंज्ञकः ॥ ४ ॥
अनाद्यविद्योपहितादूयथाग्नौ विस्फुलिंगकाः । देहाद्युपाधि
संभिन्नास्तेकर्म्मभिरनादिभिः ॥ ५ ॥ सुखदुःखप्रदैः पुण्य-
पापरूपै र्नियंत्रिताः । तत्तज्जातियुतं देहमायु र्भोगं च कर्म्म
जम् ॥६॥ प्रतिजन्म प्रपद्यंते तेषामपि परं पुनः । स सूक्ष्म-
लिंगशरीर मामोक्षादक्षरं खग ॥ ७ ॥ चतुर्विधशरीराणि-
धृत्वामुक्त्वासहस्रशः । सुकृतान्मानवो भूत्वाज्ञानी चेन्मोक्ष-

माप्नुयात् ॥ ८ ॥ चतुरशीतिलक्षेषु शरीरेषु शरीरिणाम्।
न मानुषं विनान्यत्र तत्त्वज्ञानं तु लभ्यते ॥९॥ अत्रजन्म-
सहस्राणाम् सहस्रैरपि कोटिभिः। कदाचिल्लभतेजंतुर्मानु-
ष्यं पुण्यसंचयात् ॥ १० ॥ सोपानभूतं मोक्षस्यमानुष्यं
प्राप्यदुर्लभम्। य स्तारयति नात्मानं तस्मात् पापतरोत्रकः
विनादेहेन कस्यापि पुरुषार्थो न विद्यते।तस्माद्देहं धनं रक्षेत्
पुण्यकर्म्माणिसाधयेत् ॥१२॥ रक्षयेत् सर्व्वदात्मानमात्मा
सर्व्वस्य भाजनम्। रक्षणे यत्नमातिष्ठेज्जीवन् भद्राणि
पश्यति ॥ १३ ॥ पुनर्ग्रामः पुनः क्षेत्रं पुनर्वित्तं पुनर्गृहम्।
पुनः शुभाशुभं कर्म्म न शरीरं पुनः पुनः ॥१४॥ शरीररक्ष-
णोपायाः क्रियन्ते सर्व्वदाबुधैः। नेच्छन्ति च पुनस्त्याग-
मपिकुष्ठादिरोगिणः१५॥ तद्गोपितं स्याद्धर्म्मार्थं धर्म्मोज्ञा-
नार्थ मेवच। ज्ञानंतुध्यानयोगार्थमाचिरात् प्रविमुच्यते ॥१६
आत्मैवयादि नात्मानमहितेभ्यो निवारयेत्। कोन्योहित-
करस्तस्मादात्मानं तारयिष्यति ॥१७॥ इहैव नरकव्याधे
श्चिकित्सां न करोतियः। गत्वा निरौषधं देशं व्याधिस्थः किं
करिष्यति ॥ १८ यावन्नाश्रयते दुःखं यावन्नायान्तिचापदः
यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावत् श्रेयः समभ्यसेत् ॥ १९ ॥ याव-
त्तिष्ठति देहोऽयं तावत्तत्वं समभ्यसेत्। संदीप्तकोणभवने
कूपं खनति दुर्म्मतिः ॥२०॥ तोयफेनसमेदेहे जीवेनाक्रम्य
संस्थिते। अनित्यप्रियसंवासे कथं तिष्ठाति निर्भयः ॥ २१
अहिते हितसंज्ञःस्यादध्रुवे ध्रुव संज्ञकः। अनर्थेचार्थविज्ञानः
स्वमर्थं यो न वेत्ति सः ॥२२॥ पश्यन्नपि प्रस्खलति शृण्वन्न-

पि न बुध्यतिपठन्नपि न जानाति देवमायाविमोहितः ॥
तन्निमज्जज्जगदिदं गम्भीरे कालसागरे । मृत्युरोगजरा-
ग्राहै र्न कश्चिदपि बुध्यते ॥२४॥ श्वःकार्य्यमद्यकुर्व्वीतपूर्व्वा-
ह्णेचापराह्णिकम्। न हि मृत्युःप्रतीक्षेत कृतंवाप्यथवाकृतम्॥२५
दुःखमूलंहि संसारःस यस्यास्ति स दुःखितः।तस्यत्यागःकृतोये-
न स सुखी नापरः क्वचित् ॥२६ प्रभवं सर्व्वदुःखानामालयं
सकलापदाम् । आश्रयं सर्व्वपापानां संसारंवर्जयेत् क्षणात्
लोहदारुमयैः पाशैः पुमान् बद्धो विमुच्यते । पुत्रदारमयैः
पाशैर्मुच्यते न कदाचन ॥२८॥ स्वस्ववर्णाश्रमाचार निरताः
सर्व्वमानवाः । न जानन्ति परं धर्म्मं वृथा नश्यन्ति दाम्भि-
काः ॥ ३० ॥ क्रियायासपराः केचिद्व्रतचर्य्यादिसंयुताः ।
अज्ञानसंवृतात्मानः संसरन्ति प्रचारकाः ३१ ॥ नाममात्रे-
णासंतुष्टाः कर्म्मकाण्डरता नराः । मन्त्रोच्चारणहोमाद्यै
र्भ्रामिताः क्रतुविस्तरैः ॥ ३२ ॥ एकभुक्तोपवासाद्यै र्नियमैः
कायशोषणैः । मूढाः परोक्षमिच्छन्ति मम मायाविमोहिताः
३३ ॥ देहदण्डनमात्रेण का मुक्तिर विवेकिनाम् । वल्मीक-
ताड़नादेव मृतः कुत्रमहोरगः ॥ ३४ ॥ जटाभाराजिनैर्युक्ता
दाम्भिका वेषधारिणः । भ्रमन्तिज्ञानिवल्लोके भ्रामयन्तिज-
नानपि ॥३५॥ संसारजसुखासक्तं ब्रह्मज्ञोऽस्मीति वादिनम्।
कर्म्मब्रह्मोभयभ्रष्टं तं त्यजेदंत्यजंयथा ॥ गृहारण्यसमालो-
के गतव्रीड़ादिगंवराः। चरन्ति गर्दभाद्याश्च विरक्ता स्ते भव-
न्तिकिम् ॥ ७॥ मृद्भस्मोद्धूलनादेवमुक्ता स्युर्यदिमानवाः।
मृद्भस्मवासी नित्यंश्वा स किंमुक्तो भविष्यति॥३८॥ तृण-

पर्णोदकाहाराः सततं वनवासिनः।जम्बूकाखुमृगाद्याश्च ता-
पसा स्तेभवन्तिकिम् ॥३६॥ आजन्ममरणान्तञ्चगंगादित-
टिनी स्थिताः। मण्डूकमत्स्यप्रमुखायोगिन स्तेभवन्तिकिम्
॥ ४० ॥ पारावताः शिलाहाराः कदाचिदपि चातकाः । न
पिवन्तिमहीतोयं व्रतिन स्तेभवन्तिकिम् ॥४१॥ तस्मादित्या-
दिकं कर्म्म लोकरञ्जनकारकम् । मोक्षस्य कारणं साक्षात्त-
त्वज्ञानं खगेश्वर ॥ ४२ ॥ षट्दर्शनमहाकूपे पतिताःपशवः
खग । परमार्थं न जानन्ति पशुपाशनियंत्रिताः ॥ ४३ वेद-
शास्त्रार्णवेघोरे उह्यमानाइतस्ततः। षडूर्म्मि निग्रहग्रस्ता स्ति-
ष्ठन्तिहि कुतार्किकाः ॥ ४४॥ वेदागमपुराणज्ञः परमार्थं न
वेत्ति यः। विडम्बकस्य तस्यैवतत् सर्व्वं काकभाषितम् ॥ ४५
इदंज्ञानमिदंज्ञेयमिति चिन्तासमकुलाः। पठन्त्यहर्निशंशास्त्रं
परतत्त्वपरांमुखाः ॥ ६ वाक्यच्छन्दोनिवन्धेन काव्यालंकार-
शोभिताः। चिन्तयादुःखितामूढा स्तिष्ठन्ति व्याकुलेन्द्रियाः॥
४७॥ अन्यथापरमं तत्त्वंजनाः क्लिश्यन्तिचान्यथा। अन्य-
था शास्त्रसद्भावोव्याख्यांकुर्व्वन्ति चान्यथा ॥४८॥ कथय-
न्त्युन्मनीभावंस्वयं नानुभवन्ति च। अहंकाररताःकेचिदुपदे-
शादिवर्जिताः ॥१६॥ पठन्ति वेदशास्त्राणि वोधयन्तिपरस्प-
रम् । । न जानन्ति परंतत्त्वंदर्व्वी पाकरसंयथा॥५१॥ शिरो
वहति पुष्पाणि गंधज्ञानानिनासिका । पठन्तिवेदशास्त्राणि
दुर्लभो भाववोधकः ॥५१॥तत्त्वमात्मस्थ मज्ञात्वामूढःशास्त्रे-
षुमुह्यति । गोपः कुक्षिगतेछागे कूपेपश्यति दुर्मतिः ॥५२॥
संसारमोहनाशाय शब्दवोधोन हिक्षमः। न निवर्त्तततिमि-

रंकदाचिद्दीपवार्त्तया ५३॥ प्रज्ञाहीनस्य पठनं यथान्धस्य च दर्पणम् । अतः प्रज्ञावतां शास्त्रंतत्त्वज्ञानस्यलक्षणम् ॥५४॥ इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयं सर्व्वं तच्छ्रोतुमिच्छति । दिव्यवर्ष सहस्त्रायुः शास्त्रान्तं नैव गच्छति ॥५५॥ अनेकानिच शास्त्राणि स्वल्पायुर्विघ्नकोटयः । तस्मात् सारं विजानीयात्क्षीरंहंस इवाम्भसि ॥५६॥ अभ्यस्य वेदशास्त्राणि तत्त्वंज्ञात्वाथ बुद्धिमान् । पलालमिवधान्यार्थी सर्व्वशास्त्राणि संत्यजेत्॥५७॥ यथा मृतेन तृप्तस्य नाहारेणप्रयोजनम् । तत्वज्ञस्य तथा तार्दय न शास्त्रेण प्रयोजनम् ॥५८॥ नवेदाध्ययनान्मुक्ति र्नशास्त्रपठनादपि । ज्ञानादेवहि कैवल्यं नान्यथा विनतात्मज ॥५९॥ नाश्रमः कारणंमुक्तेर्दर्शनानि न कारणम्। तथैव सर्व्वकर्म्माणि ज्ञानमेवहिकारणम् ॥ ६० ॥ मुक्तिदागुरुवागेकाविद्यासर्व्वा विडम्वका । काष्ठभारसहस्त्रेषु ह्येकं संजीवनं परम् ॥६१ ॥ अद्वैतंहि शिवं प्रोक्तं क्रियायासविवर्ज्जितम् । गुरुवक्रेणलभ्येत नाधीतागमकोटिभिः ॥६२॥ आगमोक्तं विवेकोत्थं द्विधा ज्ञानं प्रचक्षते । शब्दब्रह्मागममयं परब्रह्म विवेकजम् ॥ ६३ ॥ अद्वैतं केचिदिच्छन्तिद्वैतमिच्छन्ति चापरे। समं तत्त्वं नजानन्ति द्वैताद्वैत विवर्ज्जितम् ॥ ६४ द्वे पदेवन्धमोक्षाय न ममेति ममेति च। ममेतिवध्यतेजन्तुर्न ममेति प्रमुच्यते॥ तत्कर्म्म यन्नवन्धाय सा विद्याया विमुक्तिदा । आयासायापरंकर्म्म विद्यान्य शिल्पनैपुणम् ॥ ६५ ॥ यावत् कर्म्माणि दीयन्तेयाव संसारवासना । यावदिन्द्रिय चापल्यं तावत्तत्त्व कथाकुतः॥

प्रज्ञाहीनस्य पठनं यथान्धस्य च दर्पणम् । अतः प्रज्ञावतां शास्त्रंतत्त्वज्ञानस्य लक्षणम् ॥ ६८ ॥ यावद्देहाभिमानश्च ममता यावदेवहि । यावत् प्रयत्नवेगोऽस्ति यावत् संकल्प-कल्पना ॥ ६९ ॥ यावन्नो मनसः स्थैर्यं न यावच्छास्त्र-चिन्तनम् । यावन्नगुरुकारुण्यं तावत्तत्त्वकथा कुतः ॥७०॥ तावत्तपो व्रतं तीर्थं जपहोमार्च्चनादिकम् । वेदशास्त्रागम-कथा यावत्तत्त्वं न विन्दति ॥ ७१ ॥ तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन सर्व्वावस्थासु सर्व्वदा । तत्त्वनिष्ठो भवेत्तावद्यदीच्छेन्मो-क्षमात्मनः॥७२॥ धर्म्मज्ञानप्रसूनस्य स्वर्गमोक्षफलस्य च । तापत्रयादिसंतप्तश्छायांमोक्षतरोः श्रयेत् ॥ ७३ ॥ तस्माज्ज्ञानेनात्मतत्त्वं विज्ञेयं श्रीगुरोर्मुखात् । सुखेनमुच्यते जन्तुर्घोरसंसारबन्धनात् ॥७४॥ तत्त्वज्ञस्यान्तिमंकृत्यं शृणु वक्ष्यामि तेऽधुना । येनमोक्षमवाप्नोति ब्रह्मनिर्वाणसंज्ञ-कम् ॥ ७५ ॥ अन्तकाले तु पुरुषमागतेगतसाध्वसः । छिन्द्यादसंगशस्त्रेण स्पृहांदेहेनुयेचतम् ॥ ७६ ॥ गृहात्-प्रव्रजितोधीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः । शुचौविविक्तआसीनो विधिवत् कल्पितासने ॥ ७७ ॥ अभ्यस्येन्मनसाशुद्धंत्रि-वृद्ब्रह्माक्षरं परम् । मनोयच्छेज्जितश्वासोब्रह्मवीजमविस्म-रन् ॥ ७८ ॥ नियच्छेद्विषयेभ्योक्षान्मनसाबुद्धिसारथिः । मनः कर्म्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया ॥ ७९ ॥ अहं ब्रह्मपरंधाम ब्रह्माहं परमं पदम् । एवं समीक्ष्य चात्मान-मात्मन्याधाय निष्कले ॥ ८० ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्या-हरन्मामनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन्देहं सयातिपरमां

गतिम् ॥८१॥ न यत्रदाम्भिका यान्ति ज्ञानवैराग्यवर्जिताः सुधियस्तांगतिंयन्ति तानहंकथयामिते ॥ ८२ ॥ निर्म्मोणा मोहाजितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः । द्वंद्वै-र्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छंत्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥८३॥ ज्ञानह्रदेसत्यजलेरागद्वेषमलापहे । यः स्नाति मानसेतीर्थे स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥८४॥ प्रौढ़वैराग्यमास्थाय भजते मामनन्यभाक् । पूर्णदृष्टिः प्रसन्नात्मा स वै मोक्षमवाप्नु-यात् ॥८५ त्यक्त्वागृहं च य स्तीर्थेनिवसेन्मरणोत्सुकः । म्रियते मुक्तिक्षेत्रेषु सवैमोक्षमवाप्नुयात् ॥८६॥ अयोध्या मथुरा मायाकाशी कांची अवन्तिका । पुरीद्वारवतीज्ञेया सप्तैतामोक्षदायकाः ॥ ८७ ॥ इतिते कथितं तार्क्ष्यमोक्ष-धर्म्मसनातनम् । ज्ञानवैराग्यसहितं श्रुत्वामोक्षमवाप्नुयात् ॥ ८८ ॥ इति मोक्ष धर्म्म उक्तः ॥

अथ माहावाक्यार्थ प्रबोध प्रकारं व्याख्यास्यामः ॥

तत्वमसीति सौम्य महावाक्यमिति ।

प्रथमं शिष्यं प्रतिज्ञापयेत् गुरुः तेन तत्त्वं असीति अस्मिन् वाक्ये त्रीणिपदानि भवन्ति । तत्त्वं असीति तत् पदस्यद्वावर्थौ वाच्यो लक्ष्यश्चेति मायाशवलं ब्रह्म वाच्यार्थः। तदेव मायाविनिर्मुक्तं सत्यज्ञानानन्दानन्ताद्वयस्वरूपं ब्रह्म लक्ष्यार्थः ॥ २ ॥ त्वं पदस्यापि द्वावर्थौ वाच्यो लक्ष्य श्चेति स्थूल सूक्ष्म शरीर द्वय परिवेष्टितं चैतन्यं वाच्यार्थः। स्थूल सूक्ष्म शरीर द्वय विनिर्मुक्तं प्रत्यक् चैतन्यं लक्ष्यार्थः। तत् त्वमसि किमहं भवामि तत्वमसीति असिपदेन द्वयो-

लक्षणयोरैक्ये वोधिते सति संसार्य्यसंसारिणोः कथमैक्यमिति विरोध स्फुरणं भवेत् ॥ ४ ॥ ततो जहदजहल्लक्षणया सोऽयं देवदत्त इत्यत्रवाक्ये यथा तद्देशैतत्कालपरित्यागेनोभयत्र देवदत्तस्वरूपमात्रं लक्ष्यते ॥ ५ ॥ तद्वदुभयत्र परित्यागेन द्वयोर्लक्ष्ययोरैक्यमखण्डं कथमित्युच्यते ॥ ६ ॥ विजातीय सजातीय स्वगत भेदरहितत्वात् । अखण्डं विजातीयभेदरहितमिति। निष्प्रपञ्चं सजातीय भेदरहितमित्यात्मभेदोनास्ति ॥ ७ ॥ स्वगतभेदरहितमित्येकरसं सैन्धवघनवद्विज्ञानघनं किन्तु नित्य शुद्ध मुक्त सत्य स्वभावं निर्गुणं निरवयवं सर्व्वगतमवस्थात्रयविनिर्मुक्तं असंगं सच्चिदानन्दानन्ताद्वयं परं ब्रह्मैवाहमस्मि अहं ब्रह्मास्मीत्यभेदेनावस्थानं समाधिः ॥ एवं महावाक्यार्थं सदा स्मरतो मुक्ति ध्रुवा भवेत् तरति शोकमात्मवित् । ब्रह्मविदाप्नोति परंब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति तद्धैतत् पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदे अहं मनुरभवं सूर्य्यश्चेति शुको मुक्तो वामदेवो मुक्तः ॥ ॥ अयमात्मा ब्रह्म इत्यादि श्रुतिभ्यः ॥ ८ ॥

॥ इति महावाक्यार्थविचारः समाप्तः ॥ ❀ ॥

श्रीमत्शंकराचार्य्यविरचितं पञ्चीकरणमहावाक्यार्थमाह ॥

अहमेव परं ब्रह्मवासुदेवाख्यमव्ययम् ।
इतिस्यान्निश्चितो मुक्तोवद्धएवान्यथा भवेत् ॥ १
अहमेव परं ब्रह्म न चाहं ब्रह्मणः पृथक् ।
इत्येवं समुपासीत ब्राह्मणो ब्रह्मणि स्थितः ॥ २ ॥
अहमेव परंब्रह्म निश्चितं चित्तचिन्तितम् ।

चिद्रूपत्वादसङ्गत्वादबाह्यत्वात् प्रयत्नतः ॥ ३ ॥
सर्व्वोपाधिविनिर्म्मुक्तं चैतन्यञ्च निरन्तरम् ।
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा कथं वर्णाश्रमी भवेत् ॥ ४ ॥
अहंब्रह्मास्मि योवेद स सर्व्वं भवति त्विदम् ।
नाभूत्वाचेशते देवा आत्मा ह्येषां भवेद्विसः ॥ ५
अन्योऽसावहमन्योऽस्मीत्युपास्ते यो हि देवताम् ।
न स वेद नरो ब्रह्म सदेवानां यथा पशुः ॥ ६
अहमात्मा न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान् ॥ ७
आत्मानं सततं ब्रह्म संभाव्यं विहरन्ति ये ।
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद्दुष्कृतोत्थानचापदः ॥ ८
आत्मानं सततं ब्रह्म संभाव्यं विहरेत् सुखम् ः
यदाभ्यासेन तद्भावो भवेद्भ्रमरकीटवत् । ९
क्षणं ब्रह्माहमस्मीति यः कुर्य्यादात्मचिन्तनम् ।
तन्महापातकं हन्ति तमः सूर्य्योदये यथा ॥ १०
अज्ञानाद् ब्रह्मणो जातमाकाशं बुद्बुदोपमम् ।
आकाशाद् वायुरुत्पन्नो वायो स्तेजस्ततःपयः ११
पृथिव्यप्सु पयोवन्हौ वन्हिर्वायौ नभस्यसौ ।
नभोऽप्यव्याकृते तच्च शुद्धे शुद्धोऽस्म्यहं हरिः ॥ १२
अहं विष्णुरहं विष्णुरहं विष्णुरहं हरिः ।
कर्तृभोक्त्रादिकं सर्व्वं तदविद्योत्थमेव च ॥ १३
अच्युतोहमनन्तोहं गोविन्दोऽहमहं हरिः ।
आनन्दोऽहमशेषोहमजोहममृतोऽस्म्यहम् ॥ १४

नित्योहं निर्व्विकल्पोहं निराकारोऽहमव्ययः ।
सच्चिदानन्दरूपोहं पञ्चकोषातिगोस्म्यहम् ॥ १५
अकर्त्ताहमभोक्ताहमसङ्गः परमेश्वरः ।
सदामत्सन्निधानेन चेष्टते सर्व्वमिन्द्रियम् ॥१६
आदिमध्यान्तमुक्तोहं न वद्धोहं कदाचन ।
स्वभावनिर्म्मलः शुद्धः स एवाहं न संशयः ॥ १७
ब्रह्मैवाहं न संसारी मुक्तोहमिति भावयेत् ।
अशक्नुवन् भावयितुं वाक्यमेतत् सदाभ्यसेत् ॥ १८
ध्यानयोगेन मासैकात् बूह्महत्यां व्यपोहति ।
संवत्सरं सदाभ्यासात् सिद्धयष्टकमवाप्नुयात् ॥ १९
यावज्जीवं सदाभ्यासाज्जीवन्मुक्तोभवेद्यतिः ।
नाहं देहो न च प्राणो नेन्द्रियाणि तथैव च ॥ २०
न मनोऽहं न बुद्धिश्च नैव चित्तमहंकृतिः ।
नाहं पृथ्वी न सलिलं न च वन्हिस्तथानिलः ॥
न चाकाशो न शब्दश्च न च स्पर्शस्तथारसः ॥
नाहं गन्धोनरूपञ्च न मायाहं न संसृतिः २२
सदासाक्षिस्वरूपत्वाच्छिव एवास्मि केवलः ।
मय्येव सकलं जातं मयि सर्व्वं प्रतिष्ठितम् ॥२२
मयि सर्व्वंलयं याति तद्ब्रह्मास्म्यहमद्वयम् ।
सर्व्वज्ञोऽहमनन्तोहं सर्व्वेशः सर्व्वशक्तिमान् ॥२४
आनन्दः सत्यवोधोहमिति बूह्मानुचिन्तनम् ।
अयं प्रपञ्चो मिथ्यैव सत्यं बूह्माहमव्ययम् ॥ २५
अत्र प्रमाणं वेदान्तो गुरवोऽनुभवस्तथा ।

ब्रह्मैवाहं न संसारी न चाहं ब्रह्मणः पृथक् ॥ २६
नाहं देहोनमेदेहः केवलोहं सनातनः ।
अभयं वै भवेद्ब्रह्मब्रह्मैवाहं न संशयः ।
एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मनेह नानाऽस्ति किञ्चनेति श्रुतेः ॥
इति श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य्य
श्रीमच्छङ्कराचार्य्य विरचितं पञ्चीकरण

महावाक्यर्थविवरणं सम्पूर्णं ॥

अथसायन्तनविधिं दर्शयति पूर्ववत् साथमनुष्ठानविधिमाह। रात्रौशयनकालेषट् प्राणायामान् कृत्वा षडङ्गन्यासं विधाय यथावकाशं मनसा प्रणवं प्रजप्य श्लोकान् पठेत् ॥

जगत् प्रतिष्ठादेवर्षे पृथिव्यप्सु प्रलीयते ।
ज्योतिष्यापः प्रलीयन्ते ज्योतिर्वायौ प्रलीयते ॥ १ ॥
वायुश्चलीयते व्योम्नि तच्चाव्यक्ते प्रलीयते ।
अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मन्निष्कले संप्रलीयते ॥ २ ॥

पुरुषान्न परं किञ्चित् साकाष्ठा सापरागतिः । अहं शेषशायी स्वयंमाधवोहं विरिञ्चपादिदेवैरुपास्योऽखिलात्मा ॥ यतिश्चिन्तयन्नित्थमादौ विलाध्य स्वयं सच्चिदानन्दमात्रः शयीत ॥ इति ॥

विष्णुपुराणेऽपि ॥

प्राच्यां दिशि शिरः शस्तं याम्यायामथवानृप ।
सदैव स्वपतः पुंसो विपरीतन्तु रोगदम् ॥ ४ ॥
तत्रावस्थाविचारोलयविचारश्च ।
निद्रादौ जागरस्यान्ते योभाव उपजायते ।

तं भावं भावयेन्नित्यं मुच्यते नेतरो यतिः ॥ ५ ॥
निद्रादौ जागरस्यान्ते निद्रान्ते जागरोदये ।
लयो भवति चित्तस्य कार्य्यं तत्रात्मचिन्तनम् ॥ ६ ॥
यद्भावानुभवः स्यात्तु निद्रादौ जागरस्यान्ते ।
अन्तः सचेत् स्थिरः स्यात्तदाश्नुते ह्यद्वयानन्दम् ॥ ७ ॥
मोहेन विस्मृते दृश्ये सुषुप्तिरनुभूयते ।
बोधेन विस्मृते दृश्ये तुरीयमनुभूयते ॥ ८ ॥
न सन्ति यस्यां निद्रायां जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तयः ।
अवस्थात्रयरूपिण्यः सर्व्वद्वन्द्वविसर्ज्जनात् ॥ ९ ॥
गुणातीततया तत्र तमोलेशो न विद्यते ।
स्वयंप्रकाशरूपत्वादप्रकाशोऽपि नास्तिहि ॥ १० ॥
यत्प्राप्तये महापुण्यास्तपस्यन्ति तपस्विनः
विचारयन्ति विद्वांसो वेदान्तवचनानि च ॥ ११ ॥
न प्रयोजकता तत्र महदेतत् प्रयोजनम् ।
पुरुषार्थस्वरूपत्वान्न कालक्षेपरूपिणी ॥ १२ ॥
सुलभा शुद्धबोधानां दुर्लभा विषयात्मनाम् ।
सहजा माधवादीनां सा निद्रा सुखदायिनी ॥ १३ ॥
वेदान्तसम्प्रदायेन निदिध्यासनदार्ढ्यतः ।
परमात्मनि चित्तस्य लयस्तत्तुर्य्यमुच्यते ॥ १४ ॥
जाग्रत्स्वरूप एवायं पश्यन् स्वप्नमयं जगत् ।
सुषुप्त इवचिद्रूपे मुनेस्तुर्य्यस्थतामता ॥ १५ ॥
यतो मानानि सिध्यन्ति जाग्रदादित्रयं तथा ।
भावाभावविभागश्च स ब्रह्मास्मीति बोध्यते ॥ १६ ॥

सर्व्वास्ववस्थास्वकृतप्रयत्नो निश्चिन्तभावामृतवत्स तिष्ठन्।
कल्लोलहीनांबुधिवन्निवात प्रदीपवत्तत्त्व मयः सुखीस्यात्॥१७
सर्व्वेन्द्रियगुणारहिता रूपातीता निरञ्जना शान्ताः।
भावाभावबिदूरा सहजावस्थेति सा कथिता ॥ १८ ॥
जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिश्च तुरीयञ्च तथैव च।
तुर्य्यातीतश्च सहजं न किञ्चिच्चिन्तयेत्ततः ॥ १९ ॥
दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभंतत्त्वदर्शनम् ।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां बिना ॥ २० ॥
उत्तमा सहजावस्था मध्यमा मानसा तथा ।
अधमामानवी पूजा तीर्थयात्रा धमाधमा । इति ॥ ११
(गीतयां) यानिशासर्व्व भूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सानिशा पश्यतो मुनेः ॥ १
(योगवासिष्ठे) द्वौक्रमौचित्तनाशाय योगो ज्ञानञ्चराघव।
योगो वृत्तिनिरोधोहि ज्ञानं सम्यगव बेषणाम् ॥ २
वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञे परमात्मनि ।
एकीकृत्य विमुच्यन्ते योगोऽयं मुख्य उच्यते ॥ ३
इति सायन्तनविधिः। इतितीर्थस्वामिनःप्रातःकृत्यादि शयन-
विध्यन्तमान्हिकं समाप्तम् ॥—

॥ अथ देव ब्राह्मण संप्रदानक मठादि ग्रहण दोषमाह ॥

(मनुः) देवस्वं ब्राह्मणांस्वं वा लोभेनोपाहिनास्ति यः ।
स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥ १
अस्यार्थः प्रतिमादि देवार्थं बूाह्मणार्थं वोत्सृष्टं धनं देवस्वं
बूाह्मणस्वञ्चेति ।

ब्रह्मघोषो भवेद्यत्र यत्र ब्रह्माश्रमिस्थितिः ।
देवप्रदानकं वेश्म मठ इत्यभिधीयते॥२इतिब्रह्मपुराणोक्तेः ।
अत्र लल्लुवः ॥ यतेर्धनं न गृह्णीयात् प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
प्रमादाद्यदि गृह्णीयाद् दहेदासप्तमं कुलम् ॥ ३ इति
विश्वेश्वर्य्यञ्च ॥ यतिहस्तगतं द्रव्यंगृह्णीयाज्ज्ञानतोयदि ।
अधः सन्नीयते मूढः कुलानामेकविंशतिमिति ॥ ४
यज्ञशीलानां ब्राह्मणानां यद्धनं तदपि देवस्वं तद्धनग्रहणे
राज्ञांनाधिकारः । यथामनुः ॥ यद्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं
तद्विदुर्बुधाः । अयज्वनान्तु यद्वित्तमासुरस्वं तदुच्यते ॥ ५
इति । अत्रदायभागः । ब्राह्मणधनवर्ज्जं राजागृह्णीयात् ।
तदाह मनुः॥ अहार्य्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञानित्यमितिस्थितिः।
इतरेषान्तु वर्णानां सर्व्वाभावे हरेन्नृपः ॥ ६
इति ॥ सर्व्व शब्देन ब्राह्मणपर्य्यन्तस्योपादानं ॥
वानप्रस्थ यति ब्रह्मचारिणां धनं धर्म्मभ्रातृ सच्छिष्याचार्य्या
गृह्णीयुः । तदभावे एकतिर्थी एकाश्रमी वा गृह्णीयात् । तदाह
याज्ञवल्क्यः ॥ वानप्रस्थ यति ब्रह्मचारिणामृक्थभागिनः ।
क्रमेणाचार्य्य सच्छिष्य धर्म्मभ्रात्रेकतीर्थिनः ॥ ७
प्रतिलोमक्रमेण यथासम्भवं धनं ज्ञेयं ब्रह्मचारी नैष्ठिको
ऽभिमतः पित्रादिपरित्यागेन यावज्जीवमाचार्य्य कुलनिवास-
परिचर्य्यानिष्ठायाः तेन कृतत्वादुपकुर्व्वाणस्य तु धनं
पित्रादिभिरेव ग्राह्यमिति ॥ तत्र सच्छिष्योपादानं यतेरप-
रतेज्येष्ठयतिशिष्यस्याधिकारप्रदर्शनार्थं अन्यथा एक-
तीर्थीतिपदस्य वैयर्थ्यापत्तेः । अतएव यतेर्धने यतिशिष्य-

स्याधिकारो नान्येषामिति ॥ ॐ तत् सत्

श्रोत्रियश्च सदाचारं प्रत्याख्यायेत् न कर्हिचित् ।
प्रत्याख्यानेऽसद्वृत्तस्य प्रत्यवायो न विद्यते ॥ ८ ॥

आचार्यवान् पुरुषोवेदतस्य तावदेवचिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये ॥ इति छान्दोग्योपनिषत् । ॐ हरिः ॥ अथो-त्तरशान्तिः । ब्रह्माञ्जलिः पठेत् ।

ॐ शन्नोमित्रः शंवरुणः शन्नो भवत्वर्यमा शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॐ नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायोत्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषं ऋतमवादिषं सत्यमवादिषं तन्मामावीत्तद्वक्तारं आवीत् आवीन्मामावीद्वक्तारं । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ अन्यत् सर्व्वं पूर्व्ववत् पठेत् ॥ अथ मङ्गलं ।

ॐ अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसन्ततिम् स्मृतिमात्रेण यत् पुंसां ब्रह्म तन्मङ्गलं परं । अतिकल्याणरूपत्वात् नित्य-कल्याण संश्रयात् ।स्मर्तॄणां वरदत्वाच्च ब्रह्मतन्मङ्गलं शुभम् । ॐकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा । कण्ठं भित्वा विनिर्जातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ ॐ अथ ॐ अथ ॐ अथ । ॐ परमात्मने नमः ॥ इति उक्तयुक्त्यात्मज्ञानात् कृतकृत्य-तासंपन्नेति ग्रन्थमुपसंहरति । इतिशब्दो ग्रन्थसमाप्तौ । इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्यश्रीमहादेवानन्दतीर्थ-स्वामिपूज्यपादशिष्य परमानन्देन संप्रार्थिते यति धर्म्म-निर्णये संन्यासधर्म्मदर्पणात्मक निवृत्ति धर्म्मानुष्ठानाचार संपूर्णः ॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

शुद्धाशुद्धपत्रं

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठं	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठं	पंक्तिः
याव	यावा	३	६	रित्या	रित्य	१३	६
तीर	तीरे	,,	११	मणु	मण्ड	,,	,,
तस्यै	तस्ये	४	१८	निष्य	निष्प	,,	८
लपु	लसू	५	१२	कृत	कृत्यो	,,	१४
निमु	निर्म्मु	,,	१९	लिन्यो	लिन्याः	१४	५
पण्ड	पण्ड	६	१६	स्त्रियः	स्त्रियाः	,,	,,
पण्ड	षण्ड	,,	२१	त्नाना	त्नानां	,,	२०
बरान्	बन्न	७	८	सम	समं	,,	२१
पशे	पश्ये	,,	,,	गायी	गाय	१६	८
माया	मायां	,,	९	ञ्चनः	ञ्चनम्	१७	२
निष्य	र्निष्य	,,	१९	च्चित्तं	श्चित्तं	,,	१९
त्तिक्य	त्तिकः	८	३	देना	देनां	१८	१९
नया	नीया	,,	१३	रन्नै	रन्ने	१९	११
दग्नि	ध्रग्नि	,,	१४	तास्तु	तांस्तु	२०	२३
रंन्त	न्तरं	,,	१७	याङ्ग	याङ्गं	२३	१
ठिवधे	र्विधे	,,	१८	ध्यानं	ध्यान	,,	१०
धर्म्मे	धर्म्मं	,,	२३	जय	जाय	,,	१२
नादि	न्नादि	९	४	कण्ठ	कण्ठं	,,	१५
तदी	तवी	,,	१५	स्थितः	स्थितम्	,,	१६
यैव	पव	,,	१६	कर्मं	कर्म्मं	२४	१३
सामा	साम	१०	३	मारा	मारो	,,	२२
पुर्व्वे	पूर्व्वे	१०	७	शिष्यं	शिष्ये	,,	,,
याऽऽध	याऽध	,,	,,	संज्ञिं	संज्ञं	२५	३
नाऽऽपः	नाऽपः	,,	९	न्याहू	न्याहु	,,	१०
मुस्वा	मुखा	,,	२३	नैव	न।धै	२७	२
वकलां	वकल	११	२	प्राधान्यं	प्रधानं	,,	८
घब्जि	त्तृजि	,,	९	तुष्टीं	तुष्णीं	२८	१६
वीती	वीता	,,	१२	तेभ्य ततः	तेभ्योमतः	,,	२०
नादि	नादे	,,	,,	तुष्टीं	तष्णीं	,,	२१
भिधा	भिर्धा	१२	८	हुती	हुति	२९	११
वीति	वीती	,,	९	दाहा	दाह	,,	२२

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पंक्तिः
जल	ज्वाल	,,	२३	ध्यान्नि	द्ध्यात्तन्नि	,,	२२
इत्या	रित्या	३०	२	सीना	सीता	६०	५
न्यग्नीं	न्यग्निं	,,	,,	युञ्जा	युञ्ज्या	,,	९
मतः	मतम्	३०	४	शास्यः	शास्य	६२	१
तव्य	तव्यम्	३१	२१	बुद्धे	बुद्धिः	,,	३
बाहूं	बाहुः	३२	१८	क्षेपः	क्षेपं	,,	४
ताम्ब्रं	ताम्र	३३	१५	लतवातु	लतातु	,,	६
भुमौ	भूमौ	,,	१९	न्यन्यु	न्यग्न्यु	६३	१
युष	जुष	३४	६	श्चोत	श्चोत्त	६४	२०
जप्ता	जप्त्वा	,,	११	रितं	रितां	६५	७
त्यक	त्यक्त	३५	२२	पाठ्च	पाट्च	७२	१३
स्त्याग	स्ताग	३६	७	साख्य	साख्यः	७३	२
पितृ	पितॄ	,,	१८	नित्यो	नित्यं	,,	७
त्यर्थः	त्यर्थः	३७	१०	गुरुं	गुरु	,,	१८
भ्रूव	भ्रुव	,,	२३	मेत	मेतद्	७४	१९
क्षश	क्षशधा	३८	१८	शोष	शेष	७६	१५
तीना	तीनां	३९	१६	क्षस्य	क्षस्व	७७	५
म्मेष्वा	स्मेष्व	,,	२०	श्रय	श्रूय	,,	९
हिंसा	हिंसां	४०	१	हेतुः	हेतु	,,	१०
निन्द	निन्दि	४३	१६	संस्य	सस्य	,,	१३
कृत	कृतं	४६	१९	दत्स्य	दात्स्य	,,	२१
लब्धं	लब्ध	४७	७	क्यस्य	क्यस्थ	७८	११
हिंसां	हिंसा	४८	७	काशं	काश	८०	४
सन्या	संन्या	,,	१८	सुखं	सुखः	८१	१
बुध्या	बुद्ध्या	,,	१९	द्धहु	छह्नू	,,	२१
दोषे	दोषो	५३	१६	लिख्य	लिख्यं	८५	१६
मनु	मनुः	५४	१	ऋतु	क्रतु	८६	६
सते	त्तत	,,	१९	मात्रा	मात्राः	८९	१४
भुंषि	भूषि	५५	४	षरं	परं	९०	३
भ्रुव	ध्रुव	५६	८	मात्रा	मत्रा	९१	४
दृद	दृढ	,,	१९	विध	विधः	९२	३
रधी	रधीः	५७	३	ताव	माव	९३	१३
रुचना	रुचनाः	,,	१०	तद्ध	तद्ध्	९५	१५
चित्तं	चित्ते	५८	६	कं । न्थं	क । न्थ	९८	३

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पंक्तिः
भास्व	भास्थ	१००	१८	ह्वित्वा	ह्वितत्वा	,,	२०
चाम्य	चम्य	१०४	१०	धारणा	ध्यानेन	१५५	४
ञ्जंन । पुं	ञ्जि । पू	१०७	१२	नापा	नोपा	,,	८
फियाः	क्रियाः	१०९	१४	अंग	अंगु	,,	११
वोप	वौंप	११०	७	शङ्खय	शङ्ख	,,	१९
पीनं	पीनों	,,	११	णीसी	णीयसी	१५६	२
विट्र	विट्	,,	१६	तर्थैः	तीर्थैः	१५७	७
षट्र	षट्	,,	१९	भस्क	भास्व	,,	२१
लोघ्र	लोध्र	१११	२०	जे द्धी	जनूधी	१५८	९
भ्यङ्गे	भ्यंगो	११४	१७	तल	तले	,,	११
कृतं	कृत्यं	११९	२२	दुप	दभि	१५९	१७
रंग	रंगु	१२१	३	वज्जि	वर्ज्जि	१६०	२
नेके	नैके	१२३	३	वुद्धं	वुद्ध	,,	२३
तर्प्पं	तर्पं	१२५	१३	पर्व्वं	पूर्व्वं	१६१	१८
मुद्र	मुद्र	१२४	२३	नाला	नाल	१६२	९
भुता	भूता	१३८	१३	वोवि	ईश	१६२	२१
उनमः	उं नमः	१३९	१५	तमै	तमे	१६३	५
कराङ्गन्या	करन्या	,,	१९	कृत	कृत्य	,,	८
न्यासअंग	रांगन्या	१४१	२	रणये	रणर्य	,,	१२
गंन्ध	गन्धं	१४२	१३	था इत्यादि	था गौ	,,	,,
करा	कर	,,	२२	व्दार्थैं	द्धार्थे	१६४	१
ये भू	तेभू	१४३	५	य स	यं मे	१६४	१९
पृथ्वीं	पृथ्वि	,,	८	चणा	च्चणा	,,	२२
दिव्यं	दिव्य	,,	१६	लभि	लमि	१६६	६
सर्व्वे	सर्व्वे	१४४	४	देशः	देश	..	,,
मक	मका	,	१९	तति	तीते	..	१५
मात्त्र	मात्र	१४७	११	हरा	हारा	१६७	५
सम्भा	सम्भ	१४८	८	कव्य	कर्त्तव्य	,,	,,
स्वाधा	स्वाध्या	१४९	६	यस्तु	यद	,,	२०
औ	औं	,,	२२	ऽचमी	ऽचर्मी	१६८	४
पुर्णा	पूर्णा	१५१	२	संकट	संलक्ृ	,,	७
माहुः	माहुः	१५३	२०	धुर्क	धुकरं	,,	२३
त्रिंषट्र	त्रिंषट्	१५४	९	पृजि	पूर्जि	,,	२३
साख्यं	साख्यो	,,	१३	तास्रा	ताम	१७०	१३

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पंक्तिः
रेजं	रज	१७२	३
वाद्ध	वाद्धु	,,	४
प्तापां	प्तायां	१७६	२६
न्यन्नं	न्यन्न	,,	१९
र्घयां	र्ध्वर्षयां	१७७	१
पघा	पघा	,,	५
स्रान	स्राना	,,	७
त्यज्य	त्याज्य	१७८	१३
प्तव्यो	त्तव्यौ	१७९	८
रासो	राशो	१७९	७
श्राका	श्रका	१८०	१२
गृही	गहि	१८१	१६
धुनूव	धून वा	,,	४
स्थितो	स्थितौ	१८२	२१
हातू	हान्	१८३	७
निन्द्रि	न्येन्द्रि	१८७	२३
श्ररु	श्ररू	,,	२
मृगा	मृग	,,	१६
स्कृतम्	ष्कृतम्	१८९	१८
ह्येते	ह्येते	१९०	१२
र्य्यायाः	र्य्यांच	,,	४
वर्ज्जे	वर्ज्जे	,,	१६
भत्वे	भेतु	१९१	१३
रयाम	रयाम	१९४	१
सज्ये	सज्जे	१९५	१
माह	माहि	,,	१६
सज्ये	सज्जे	१९६	७
ग्रच	ग्रंच	१९७	१७
तिष्ट	निष्टे	१९९	६
स्यताम्	स्यतम्	,,	१०
निर्द्धि	निर्द्दि	२०२	८
ध्रुतीः	ध्रुतीः	२०३	७
रः पु	रपू	,,	१५
ज्ञा	ज्ञानि	२०४	७

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पंक्तिः
ल्यानि	ल्या	,,	,,
भुक्तिं	भुक्ति	२०५	१३
प्रियेः	प्रियः	२०८	१९
ध्यर्थे	द्धचर्थे	२०९	३
भातृ	भ्रातृ	२११	४
भक्ति	भुक्ति	२१३	१
हस्त	हस्ते	,,	३
श्चान्त्यो	श्चान्त्या	२१६	१०
व्यञ्ज	व्यञ्ज	२१८	१९
श्य्या	शय्या	२२०	८
तित	तिते	,,	१३
तथै	स्तथै	२२१	१७
चगु	चगाम्	२२२	१२
स्नान	स्नाना	२२४	१२
ताञ्च	तन्चा	२२७	१३
वच्च	वच्चे	२३०	१९
यंद्य	यद्य	२३१	३२
रद्य	रद्दय	,,	४
रेंग	रेन	२३५	१७
मातृस्य	मातृस्ये	२३६	२१
हत	हित	,,	,,
तालमां	तात्मनां	२३८	१३
जुटै	जूटे	,,	२०
वासि	वसि	२४२	१९
साप्त	साष्ता	२४३	६
जरा	जर	,,	१९
चौर	चौर	२५०	१६
द्राया	द्रयां	२५१	४
स्माथे	स्मार्थे	२५२	२
साखानि	नखा	,,	२२
तिंका	त्तिका	२५७	७
चार्य्यंया	चार्य्या	२५९	८
भवति पञ्च स्यवधि	यावद्भव तपञ्चमी	२६१	५

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पंक्तिः
तरे	त्तरे	२६२	२०
सुम	सुस	२६३	१२
ञ्चमी	ञ्चर्मी	२६४	५
ग्रहे	गृहे	,,	१९
मन	मत	२६५	२३
मित्य	मित्ति	२६६	१२
मत्स	मत्स्य	,,	१९
विता	विदिता	२७७	१
बोध	बोधि	२७८	१
कारू	करु	२८५	११
सेव्य	सेव	२८६	११
तृषु	तृसु	२८७	१४
सर्व्वा	सर्व्वाः	,,	२१
दिषू	दिषु	२८४	१९
श्चिदो	श्चिदूदो	,,	२०
रुग्नो	रुग्णो	२९२	४
त्यज्ये	त्यजे	२९२	४
गृहः	ग्रहः	२९३	१३
श्रूपा	श्रुपा	२९८	२१
त्तन्	त्तान्	२९९	१०
शुद्धच	शुध्य	,,	१७
शुद्धच	शुध्य	,,	१८
त्रीन्स्त्रि	त्रंस्त्री	३००	१०
मूखं	मूख	३०१	३
अश्रू	अश्रु	३०३	१९
अमा	अममा	३०६	१६
श्वशु	श्वशू	३०७	२०
गाय	गाया	,,	२१
प्रगा	प्रागा	३०८	११
शिखाः	शिखः	३०९	२२
ध्याना	ध्याह्वा	३१०	२२
नेश्य	नश्य	३११	२२
नेश्य	नश्य	,,	१२
मुक्तिश्चे	मुक्तिचे	३१३	१
मैत्र	मैत्रो	३१४	२
मेगा	मेन	३१६	९
कुच्छ्रै	कृच्छ्रै	३१७	६
शिष्ठा	शिष्टा	३१८	१८
ऽष्ठौ	ऽष्टौ	३१९	१
त्रय	त्रयं	,,	,,
चितैः	चित्तैः	,,	६
तेषु	त्तेषु	,,	७
शिष्य	शिष्य	,,	८
स्तप्त	सप्त	,,	२३
तुपृ	तुष्ट	३२०	१
दुष्ठा	दुष्टा	३२२	१२
भूभूक्त्वा	भुभुक्त्वा	३२३	३
भ्यच्चर्य	म्यच्चर्य	,,	६
शति	शतिम्	३२५	२१
पुर	पूर	३२६	३
सः	स	,,	१४
गत्र	गत्त्र	३२७	९
मुद्दि	मुदि	३२८	१४
दूर्वृ	दुर्वृ	३३२	९
दूर्वृ	दुर्वृ	,,	१६
मुहु	मुहू	३३३	३
थिर्क	र्थिक	३३४	१
युना	युणा	३३८	१
वध्दा	वद्ध्वा	,,	१४
भूशं	भृशं	,,	१३
स्मतेः	स्मृतेः	३३९	१०
ईाति	इति	३३९	२३

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पंक्तिः
हृपि	हृषी	३४१	२०	माच	माचा	३८२	४
न्ध्येऽपि	न्योऽपि	३४२	१४	उत	उत्त	३८३	२३
येयू	येयु	३४४	१९	उत	उत्त	३८३	२३
हुदो	हृदको	३४८	९	क्षाती	क्षास्ती	„	१६
मुणा	मुक्ष्णा	„	२३	शिष्य	शिष्या	„	१७
मुमु	मुमू	३५०	२	श्रुद्ध	शुद्ध	३८५	२२
इरि	ईरि	„	१२	त्रिन्ध	विन्ध्य	३८७	१७
ह्रींमि	ह्रीमि	३५३	७	शद्दसः	सद्दशः	३८८	१०
मजी	मज्जी	„	१६	वादा	वदा	„	१८
च्त्रर्थ्यं	च्त्रर्य्यं	„	२३	पूमा	पुमा	३९१	५
नर्घ्या	नघर्या	३५४	३	ग्रोषि	ग्रोति	„	१९
नार्घ्य	नार्घ्या	„	१४	घुम	घुमा	३९७	१४
घप	धूप	„	१५	कुष्णा	कृष्णा	४०२	४
मुत्यु	मृत्यु	३५८	३	लाश	लास	„	१०
मन्त्रै	मन्त्रै	„	२०	बुद्धयया	बुद्ध्या	४०४	१९
नांदै	नादै	„	२३	सन्या	संन्या	४०६	४१
ऋ:च	ऋचः	३६०	१८	शसा	शमा	४१२	६
र्ज्जनः	र्ज्जनं	„	„	बुध्या	बुद्धया	४१५	१४
वष्य	वेष्य	३६५	१	तात्म	तात्मा	४१६	१७
हूत्वा	हुत्वा	३६६	१७	त्रयो	षड्श	४२०	१०
ऋषी	हृषी	३६७	९	स्मोद्धृ	स्माद्धू	४२२	२२
मभ्योः	मभ्यो	३६९	६	वक्रे	वक्रे	४२४	१५
र्य्यस	र्य्यास	„	१८	भाव्यं	भाव्य	४२८	१०
च्छिष्ठ	च्छिष्ट	३७०	२०	भाव्यं	भाव्य	„	११
वेत्त	वेक्ष्य	३७२	२०	क्यर्थ	क्यार्थ	४३०	७
श्राद्धं	श्राद्ध	३७६	२३	शान्ताः	शान्ता	४३२	३
श्राद्ध	श्राद्धं	३७७	१५	सुपु	सुष्टु	„	५
पुत्रो	पुत्रः	३८०	५	सांस्त्रं	शास्त्रं	„	२०
				स्यार्थः	स्यार्थः	„	२२

उत्तर भागस्य शुद्धाशुद्धपत्रं समाप्तं ।



क्योंकि सतकर्म में की गई एक क्षण मात्र व देरी हो जाने पर कितने जन्मों में अन्तर होती है।

रेदात्यनात्यानं नात्यानभव सादयेव।
मैव ह्मात्यनो वन्धुशत्मैव रिपुरात्मन ।।

ति—अपने द्वारा संसार समुद्र से उद्धार करे ने को अद्योगति में न डाले क्योंकि यह आप ही तो अपना मित्र है और आप ही शत्रु हैं।

व्यापी परमेश्वर भी न किसी के पापकर्म को और न किसी के शुभ कर्म को ही ग्रहण करता है किन्तु अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है उसी से अज्ञानी मनुष्य मोहित हो रहे है।

वे अपने आपको और मानने वाले घमण्डी पुरुष धन और मान के मद से युक्त होकर केवल नाम मात्र यज्ञों द्वारा पाखण्ड से शास्त्रविहित रहित याजन कर रहे है।

इससे तेरे लिए इस कर्तव्य और अकतर्व्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर तू शास्त्र विधि से नियतकर्म करने योग्य है।





